क्षेमेन्द्र और उनका समाज

डा. मोती चन्द्र

हिन्दी समिति प्रभाग ग्रन्थमाला—२६०

क्षेमेन्द्र और उनका समाज

[साथ में क्षेमेन्द्र कृत कलाविलास, समयमातृका, देशोपदेश तथा नर्ममाला का अनुवाद]

डॉ० मोतीचन्द्र
सम्पादन : ज्ञानचन्द जैन

उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान
(हिन्दी समिति प्रभाग)
राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन हिन्दी भवन
महात्मा गांधी मार्ग, लखनऊ

प्रकाशक
निदेशक
उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान

प्रथम संस्करण
१९८४

मूल्य : २२.०० (बाइस रुपये मात्र)

मुद्रक
सम्मेलन मुद्रणालय
प्रयाग

समर्पण

प्रिय भाई अशोक जी की स्नेह स्मृति में,
जिनकी प्रेरणा से यह संकलन किया गया।

शान्ति मोतीचन्द्र
बम्बई, ५-१०-७९

प्रकाशकीय

हिन्दी संस्थान द्वारा 'क्षेमेन्द्र और उनका समाज' का प्रकाशन एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है। प्रकारान्तर से यह डॉ० मोतीचन्द्र जैसे वाङ्मय के अनन्य साधक के अथक अध्ययन और अध्यवसाय का प्रतिफल है। संस्कृत साहित्य में क्षेमेन्द्र विषय-विस्तार और वैविध्य की दृष्टि से अद्वितीय माने जाते हैं। 'दशावतार चरित' जैसे महाकाव्य के रससिद्ध सर्जक के अतिरिक्त उन्होंने नीति, शिक्षा तथा लोक-व्यवहार के ग्रन्थों का भी प्रणयन किया। अपने समाज की कुरीतियों, अंधविश्वासों, धार्मिक पाखण्डों, राज-दरबारों के षडयंत्रों और वीभत्स यौनाचारों का उन्होंने खुलकर पर्दाफाश किया। उनकी औचित्य विचार-चर्चा साहित्य और काव्य के साथ-साथ सामाजिक सम्बन्धों पर भी लागू होती है। वे पूर्वाग्रह से रहित और साम्प्रदायिक संकीर्णता से परे मुक्त विचारक थे। जन्मना शैव होते हुए भी, सोम भागवत के प्रभाव से उन्होंने वैष्णव धर्म के तत्त्वों को ग्रहण किया और बौद्ध धर्म के प्रति भी अपनी आस्था व्यक्त की। डॉ० मोतीचन्द्र क्षेमेन्द्र के निर्भय एवं उन्मुक्त विचारक स्वरूप से इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने उनकी चार परिहास तथा व्यंग्यपूर्ण रचनाओं—'कला-विलास', 'समयमातृका', 'देशोपदेश' तथा 'नर्ममाला' का अनुवाद करने के साथ-साथ 'क्षेमेन्द्र और उनके समाज' पर एक विस्तृत शोध निबन्ध भी लिख डाला था। यह बहुमूल्य सामग्री डॉ० मोतीचन्द्र के देहावसान के पश्चात् विलुप्त हो गयी होती, यदि समिति की कार्यकारिणी के तत्कालीन सदस्य अशोक जी की जागरूक दृष्टि उस पर न पड़ी होती। उनकी तथा समिति के तत्कालीन अध्यक्ष श्री अमृतलाल नागर की पहल पर डॉ० मोतीचन्द्र की बहुमूल्य पाण्डुलिपियाँ हिन्दी समिति को प्रकाशनार्थ प्राप्त हो गयीं। यह भी एक सुखद संयोग ही कहा जायगा कि इन पाण्डुलिपियों के निरीक्षण, सम्पादन तथा उनको पुस्तकाकार रूप देने का समस्त भार श्री ज्ञानचन्द जैन जैसे प्रबुद्ध विद्वान को सौंपा गया, जो उस समय तक दैनिक 'भारत' और 'नवजीवन' के सहयोगी सम्पादक के रूप में प्रतिष्ठित और प्रसिद्ध हो चुके थे। वर्तमान स्वरूप में यह ग्रन्थ श्री ज्ञानचन्द जैन की निष्ठा और अध्यवसाय का ही प्रतिफल

है। डॉ० मोतीचन्द्र जी जैसे क्रान्तदर्शी विद्वान द्वारा क्षेमेन्द्र के विचार मंथन का यह नवनीत प्राप्त कर हिन्दी संस्थान स्वयं को सौभाग्यशाली समझता है। सम्प्रति इस पुस्तक के प्रकाशन का अधिकार हिन्दी संस्थान को प्रदान करने हेतु हम श्रीमती शान्ति मोतीचन्द्र के विशेष आभारी हैं। डॉ० मोतीचन्द्र से भाई अमृतलाल नागर के स्नेह-सौहार्द्र और अशोक जी से उनकी अन्तरंगता का यह प्रसाद कहा जा सकता है। आशा है, राष्ट्र की सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक और ऐतिहासिक स्थिति का यह वस्तुगत विवेचन समाजशास्त्रीय विचारकों एवं चिन्तकों के भावी अन्वेषणों और स्थापनाओं का पथ प्रशस्त कर सकेगा।

२८-५-८४

—शिवमंगल सिंह 'सुमन'
उपाध्यक्ष

दो शब्द

स्व० मोतीचन्द्र के विषय में लिखने से पूर्व मुझे उस कुल से अपना संबंध बताना आवश्यक है। भारतेन्दु मेरे पिता के ममेरे भाई थे। पर उन लोगों में सहोदर से भी बढ़कर प्रीति थी। वहीं से मुझमें साहित्यिक अभिरुचि विरासत में मिली––कला-प्रेम तो मेरे कुल में चला ही आ रहा था।

मोतीचन्द्र ने १९३०-३१ में इंग्लैंड जाकर उच्च अध्ययन का विचार किया। वे काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से तुर्क-पठान-मुगल काल के इतिहास में एम० ए० कर चुके थे। अब वे उच्च अध्ययन के लिए किसी समुचित विषय की खोज में थे, मुझसे सलाह लेने आये। उनका विचार इतिहास में ही पी-एच० डी० करने का था। पर मैंने उन्हें कला संबंधी किसी विषय पर शोध करने की सलाह दी। उस समय उन्हें इसका तनिक भी अंदाज न था। उन्हें कुछ घबराहट-सी लगी। मैंने कहा, "आप तो बड़े कुल में पैदा हुए हैं। घर में एक-से-एक जवाहरात, मोती-हीरे-पन्ने देखते हैं। कैसे उनमें अच्छे-बुरे की पहचान करते हैं। उसी प्रकार कला में भी है।" यह बात उनके मन में बैठ गयी।

विलायत से लौटने पर उनके मन में कुछ करने की इच्छा हुई। अनेक विचार आते। एक फिल्म बनाने का भी विचार कर रहे थे, जिसमें मुगल जीवन का सजीव चित्रण हो। प्राचीन मूर्तिकला में, साँची-भरहुत आदि में, लौकिक जीवन के दृश्यों पर भी काम कर रहे थे। इनमें से कई विषय बाद में पुस्तकाकार अथवा लेखाकार प्रकाशित हुए।

संगीत के प्रतिपालक थे, यहाँ बड़े धूम-धाम से अखिल भारतीय संगीत सम्मेलन कराया। उदय शंकर आदि के कार्यक्रम कराये।

वे बड़े अध्ययनशील थे। बहुत अधिक और तेज़ी से पढ़ते। उनकी धारणा-शक्ति अपूर्व थी। इसके साथ-साथ वे तुरन्त किसी भी चीज की तह तक पहुँच जाते। उन्हीं दिनों कला भवन में भी वे मेरे सहकर्मी थे। वस्तुतः यहीं उनकी पुस्तकस्थ विद्या को व्यावहारिक रूप मिला। फिर वे प्रिन्स ऑफ वेल्स म्यूजियम, बम्बई चले गये। उनके लम्बे कार्यकाल में प्रिन्स आफ वेल्स म्यूज़ियम का कला-संग्रह कहाँ-से-कहाँ पहुँच गया।

वह शोध-केन्द्र बन गया। स्वयं उन्होंने एक-से-एक महत्त्वपूर्ण लेखन किये। जैन ग्रन्थों में जो अटूट सांस्कृतिक सामग्री अप्रकाशित पड़ी थी, उसमें से छान-छानकर कितनी ही सूचनाएँ उनके लेखों में आयीं। महाभारत के सभापर्व के अंतर्गत 'उपायन पर्व' की सामग्री द्वारा भारतीय व्यापार के मार्ग और आने-जाने वाली वस्तुओं, भारतीय प्रसाधन और वेशभूषा का इतिहास, सचित्र जैन ग्रन्थों में चित्रों का क्रमबद्ध इतिहास, १५वीं-१६वीं शती के अनेक अप्रकाशित चित्रित ग्रन्थ, प्राचीन हाथीदाँत की कारीगरी, मध्यकालीन ग्रन्थों में वस्त्रों के उल्लेख, चतुर्भाणी में सांस्कृतिक सामग्री, क्षेमेन्द्र की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि (प्रकाश्य), मुगल काल के बेगड़ी, दकनी चित्रकला तथा अनेक लेख और ग्रन्थ तैयार हुए। कई योजनाएँ पूरी न हो सकीं। एक बार मुझसे कहते थे, "अब की बार मैं आपके पास बैठूँ तो संगीत पर एक ग्रन्थ तैयार कर डालूँ।" उनमें काम करने की अद्भुत क्षमता थी। एक बार मेरे यहाँ टिके थे। काशी का इतिहास एक स्थानीय प्रेस में छप रहा था। सुबह पाँच बजे प्रूफ देखने बैठ जाते सो एक-एक बैठकी में पाँच-सात घण्टे बैठे रहते—प्रूफ खतम करके ही चैन लेते।

उसी बार परीक्षा की कुछ कापियाँ आ गयीं। एक विश्वविद्यालय का उन्हें प्रश्न-पत्र भी तैयार करना था। इस संबंध में विश्वविद्यालय वालों ने एक प्रपत्र भरने को भेजा था। उसमें परीक्षा क्या, परीक्षक के पिता तक का शैक्षणिक विवरण माँगा था। बस मोतीचन्द्र जी का क्रोध देखने लायक था—उसी समय प्रपत्र को फाड़कर चिथड़े कर डाले। हम लोगों ने कहा, "उत्तर तो दे दीजिए।" पर कौन सुनता है।

वे अजातशत्रु थे। भीड़-भाड़ से बचते थे। कहीं विवाद होता हो तो दूर हट जाते थे। यों किसी समाज में बैठते तो अपनी छाप छोड़ देते। पर उनके अंतरंगों की संख्या सीमित थी। उन्हीं लोगों के बीच वे खुलते थे। जहाँ बैठ जाते, कहकहों से वातावरण गूँज उठता। ऐसी-ऐसी अनोखी और मौलिक बातें करते कि मण्डली पर छा जाते। कभी-कभी मित्रों से इतनी हलकी-फुलकी बातें करते कि कोई अनजान आदमी कल्पना भी न कर सकता कि ये वही डॉ० मोतीचन्द्र हैं, जिनकी विद्वत्ता संसार-प्रसिद्ध है।

बहुत अच्छा भोजन करते, कभी-कभी मित्रों के आग्रह पर स्वयं भी पाक करते।

सब उनके साथ चला गया, सपना हो गया, बनारस की परम्परा की एक कड़ी टूट गयी।

स्व० मोतीचन्द्र ने कला-इतिहास के साथ-साथ प्राचीन भारतीय संस्कृति और समाज का भी संश्लिष्ट चित्र उपस्थित किया। भारतीय धर्म और दर्शन के विषय में तो काफी सामग्री मिली और खोज भी हुई पर संस्कृति के आधार अर्थात् समाज की क्या वास्तविक स्थिति थी, इसकी बहुत कम झलक मिली। पुरातत्त्व के उत्खनन से बहुत सीमित क्षेत्र में सामग्री प्राप्त हुई। प्राचीन साहित्य मानो एक आदर्श समाज का चित्रण करता है। उस समाज में सभी कुछ व्यवस्थाबद्ध है, सभी एक साँचे में ढला हुआ। यहाँ तक कि प्राचीन साहित्य या पुरातत्त्व से समाज के किसी तथा-कथित निम्न वर्ग का कहीं उल्लेख आया या चित्रण मिला भी तो वह एक आदर्श या काल्पनिक रूप है, जैसे वाल्मीकीय रामायण में निषादराज का अंकन, अथवा भवभूति के उत्तररामचरित में शूद्रक का। अतः इस ओर भी समाज का एकांगी चित्र ही प्राप्त होता है। परन्तु सभी युगों की अपनी-अपनी कमजोरियाँ थीं। आज हम घोर कलियुग मानते हैं। पर कलियुग के आगमन की भावना प्रायः सातवीं सदी से होने लगी। हमेशा धार्मिक नेता यही मानते थे कि पहले का समय तो सतजुगी था, अब सारा समाज रसातल को जा रहा है।

समाज में सदा से सभी वर्ग रहे हैं और रहेंगे। सभी प्रकार के दण्डनीय अपराध भी थे। सभी धर्मशास्त्रों में इनका उल्लेख है। बौद्ध विनय में इनकी विस्तृत चर्चा है। फिर भी जैसे प्राचीन साहित्यिक समाज की इन कमजोरियों को चित्रित करने से कतराते रहे। समाज के इन दृश्यों को जाने बिना, हमारे सामने उसका चित्र अधूरा ही रह जाता।

धार्मिक और सामाजिक जीवन भी क्रमशः जटिल और कुण्ठाग्रस्त होता जा रहा था। उत्तर-मध्यकाल आते-आते प्रत्येक क्षेत्र में कृतित्व का अर्थ था—पुरानी परम्पराओं का पल्लवन। यह स्थिति कभी-कभी तो सीमा को पार कर चुकी थी।

यदि हम गुप्त युग के बाद वाले धार्मिक साहित्य को देखें तो धार्मिक जटिलता का बड़ा व्यापक चित्र उपस्थित होता है। अपने देश में अनेक जातियाँ आ रही थीं। समाज उन्हें आत्मसात् करता जा रहा था—कभी एक प्रकार से, कभी दूसरे। सम्भव है, कभी हिन्दू समाज पर उनकी परम्पराओं के प्रभाव पड़ रहे थे, कभी उनसे बचने से कुण्ठाएँ बढ़ती जातीं। चारों ओर कर्मकाण्डों की जटिलता का विस्तार हो रहा था। एक प्रकार से उसकी परिणति गहड़वाल काल के लक्ष्मीधर भट्ट के ग्रन्थ, कृत्य-कल्पतरु में मिलती है। सामान्य हिन्दू जन को जितने व्रत-उपवास, दान-दक्षिणा, कर्मकाण्ड आदि करने की व्यवस्था है, उसके चलते तो व्यक्ति का जीवन ही दूभर हो

जाता होगा। बनारस से (अथवा आसपास के क्षेत्रों से) गहड़वालों के जो ताम्रपत्र आदि मिले हैं, उनमें भी पर्वों पर दान-दक्षिणा ही के उल्लेख मिलते हैं।

धार्मिक नेताओं की विलक्षण दशा थी। कृष्ण मिश्र ने ऊहात्मक रूप में अपनी अमर कृति, प्रबोध-चन्द्रोदय में पैने व्यंग्य से इन सभी धर्माचार्यों की खूब खबर ली है। जो अनाचार, पाखण्ड, असत्य, उच्छृंखलता, उद्दण्डता, असहिष्णुता आदि चल रहे थे, उनको नाटककार-कवि ने सुन्दर रूप में प्रस्तुत किया है। जैसे हम पहली बार इस प्रसंग से जीवन के इस पक्ष को झाँक कर देख सकते हैं। संयोगवश, इसकी क्रीड़ास्थली काशी ही है। काशी जैसे तीर्थस्थान ऐसे धर्माचार्यों के अड्डे थे, धर्म की ओट में, लोग मनमानी करते रहते। प्रायः सभी मतमतांतरों की यही दशा थी—कोई अपवाद न था। बाद में, इसी धार्मिक अराजकता के विरुद्ध रामानुज-से वैष्णव आचार्यों ने अपने सीधे-सादे मत का प्रतिपादन किया। मध्य युग की संत-वाणी में भी इसके विरोध का प्रखर स्वर है।

कर्मकाण्ड के इस जटिल वातावरण में जन-साधारण की बुद्धि भी भ्रमित हो गयी होगी। तात्त्विक विवेचन से हटकर, समाज का चिन्तन इसी कर्मकाण्ड के जाल में उलझता जा रहा था। ऐसी स्थिति हो गयी थी कि मुस्लिम आक्रमण के लिए, राजनीति के साथ-साथ, मानसिक दृष्टि से मार्ग प्रशस्त हो गया था। नियति का चक्र घूमा, मुहम्मद गोरी (मुहम्मद बिन साम) ने निमित्त रूप में, उत्तर भारत के हिन्दू साम्राज्यों को धराशायी कर दिया। इसके साथ-साथ सदैव के लिए राजपूतों का—राजस्थान को अपवादस्वरूप छोड़कर—उत्तर भारत से प्रभुत्व मिट गया, नये मुस्लिम वंशों ने भारत में अपने केन्द्र स्थापित किये। सबसे विलक्षण बात तो यह हुई कि परंपरागत हिन्दू अभिव्यक्ति को ही काठ मार गया। मुस्लिम विजय के तत्काल बाद, जहाँ मुसलमानों के एक-से-एक बढ़कर वास्तु बन रहे थे, हिन्दू परंपराओं ने एक भी उल्लेखनीय वास्तु या मूर्ति न प्रस्तुत किया। कुछ अपवादों को छोड़कर, कोई विशिष्ट संस्कृत नाटक या काव्य न बना। यों बाद में, इसी की फलश्रुति एक नये ढंग से हुई—देशी भाषाओं का उदय हुआ, नये संगीत काव्य, धार्मिक चिन्तन उभर कर सामने आये। पर मुस्लिम विजय ने तात्कालिक रूप से हिन्दू परंपराओं को झकझोर दिया, इसमें कोई संदेह नहीं।

इस बड़े तूफान के पहले एक ही स्वर सुनायी पड़ता है—क्षेमेन्द्र का। वे दूर से एक दृश्य के रूप में देख रहे थे, समाज किधर जा रहा था। उनका दृष्टिकोण नकारात्मक जान पड़ता है, किसी भग्न-हृदय का। परन्तु वह निराशावादी नहीं है। वे आज के उस लेखक से दूर नहीं हैं जो समाज का केवल प्रशस्ति गायक नहीं है। क्षेमेन्द्र

का बहुत बड़ा गुण यही न था कि उन्होंने अपनी बात व्यंग्यात्मक शैली में कही, प्रायः बड़ी अटपटी कहानियों की शैली में कही वरन् यह भी था कि समाज की कमजोरियों को उघाड़ दिया। ऐसी कहानियाँ लोक में प्रचलित रहा करती थीं। क्षेमेन्द्र ने कहाँ तक उनसे स्फूर्ति ग्रहण की, इसका भी पता नहीं। परन्तु ऐसी कहानियों में रुग्ण समाज का भी चित्रण हुआ करता था। सोमदेव के कथासरित्सागर में ऐसे दृश्य और पात्र मिलते रहते हैं। जान पड़ता है कि ऐसे कथाकारों (परवर्ती किस्सागो) के पास कुछ विषय-वस्तु थीं। वे जब कहानी कहने (या लिखने) लगते तो अपने समाज का चित्र उतार देते। उसमें बहुत-सी ऐसी बातें भी कह जाते जो समाज की दुर्बलता प्रकट करतीं, साथ-साथ उसमें हास्य का भी पुट होता कि कहानी में आकर्षण तत्त्व बढ़ता जाता। पिछली शती तक ऐसे किस्सागो चले आ रहे थे। संभवतः इसकी परंपरा कौटिल्य के काल के कुछ वर्गों तक जाती है। कौटिल्य अपने अर्थशास्त्र में वाग्जीवी वर्ग में इसी प्रकार के, या इससे मिलते-जुलते लोगों का उल्लेख करते हैं। इस वर्ग में कुशीलव, नर्तक, वादक आदि भी थे। कौटिल्य का कथन है कि राज्य को इनका पालन करना चाहिए। राज्य इनसे गुप्तचरी का काम भी लेता था। स्वयं अकबर के विषय में फारसी इतिहासकार कहते हैं कि किशोरावस्था में सम्राट् अमीर हम्जा की कहानी अंतःपुरिकाओं को ऐसे सरस ढंग से सुनाते कि मानो वे एक किस्सागो हों। बाद में स्वयं अकबर ने एक महापात्र (पात्र—स्टेज से संबंधित व्यक्ति) को बाद-फरोश की सम्मानित उपाधि दी थी; यह कौटिल्य के वाग्जीवी का ही रूपांतर होना चाहिए। कुछ समय पूर्व तक कत्थक जाति या वर्ग हुआ करता था। ये लोग अपने इतिहास के विषय में सूचित करते (अब संभवतः वे लोग भी इसे भूल गये हैं)। पहले यह वर्ग घूम-घूमकर इसी प्रकार की कथाएँ (कहानियाँ) कहा करता था।

पाठक मोतीचन्द्र के इस ग्रंथ में अनेक मनोरंजक सामग्री पायेंगे। आरेल स्टीन ने क्षेमेन्द्र के ग्रन्थों पर कुछ काम किया था। फिर भी अन्य सामग्रियों के साक्ष्य के आधार पर उनका विचार करना अपेक्षित था। यह अधूरा कार्य मोतीचन्द्र के ही बस का था। सरसरी तौर से देखने पर ही इसमें अनेक बातें सामने आती हैं। यदि मोतीचन्द्र का ध्यान इन बातों की ओर भी ले जाया जाता तो वे बहुत प्रसन्न होते। परन्तु दुर्भाग्यवश इसके प्रकाशन में प्रायः तीस वर्ष लग गये। इस बीच उनका हिन्दी लेखन बन्द-सा हो गया। यदि हिन्दी में वे लिखते रहते तो हिन्दी की प्रतिष्ठा बढ़ती। परन्तु उन्होंने (और भाई वासुदेवशरण ने) इस दिशा में हिन्दी लेखन का जो मार्ग प्रशस्त किया है, उसे कभी भूला नहीं जा सकता।

पाण्डुलिपि उलटते-पुलटते जिन दो-एक बातों की ओर ध्यान गया, उन्हें भी इंगित कर दूँ।

क्षेमेन्द्र के जिन चार ग्रन्थों का इस समय प्रकाशन हो रहा है, वे अपने आप में निराले हैं। साधारणतया संस्कृत ग्रन्थों में एक काल्पनिक और फलस्वरूप एक आकर्षक संसार दिखायी देता है। उत्तर-मध्यकालीन––प्राय: ८०० ई० से आज तक जो संस्कृत रचनाएँ हुईं उनमें तो यह प्रवृत्ति और भी बढ़कर है। परन्तु क्षेमेन्द्र ने अपने कला-विलास, समय-मातृका, देशोपदेश और नर्ममाला में जीवन के अनेक पहलुओं को लिया है। क्षेमेन्द्र का मौलिक उद्देश्य तो उस समाज की हँसी उड़ाना है, उन्होंने साथ-साथ उस व्यंग्य को सार्थक बनाने के लिए समाज की अनेक बुराइयों को भी उपस्थित किया है। कहीं-कहीं यह अतिरंजित हो सकता है। व्यंग्य में ऐसी अतिरंजना चलती है। अतएव बौद्ध संघ, भिक्षुणियों, कायस्थों, वणिकों आदि के जो चित्र इन ग्रन्थों में उभरते हैं, वे कितने अतिरंजित हैं, यह नहीं कहा जा सकता। परन्तु इनके मूल में तथ्य हैं ही। कायस्थ के विषय में इतना कहना आवश्यक है कि उस काल तक यह एक जाति का नाम न था, वरन् एक पेशे का नाम था। दूसरे शब्दों में प्रशासक वर्ग को कायस्थ कहा जाता था। भाई वासुदेवशरण ने इसकी ठीक ही व्युत्पत्ति की थी––काय (कार्यालय), स्थ (में रहने वाला)। मुगल-राजपूत काल तक के सोलहवीं-सत्रहवीं शती वाले (संभव है और भी परवर्ती काल तक) लिपिकारों ने अपने नाम के साथ कायस्थ शब्द का तथा पण्डित शब्द का प्रयोग किया है, उदाहरणार्थ पण्डित वेणीदास कायस्थ। संभवत: इनमें से कुछ लिपिकार ब्राह्मण थे। इन वेणीदास ने १५६७ ई० में जौनपुर में रहते हुए कल्पसूत्र की एक प्रतिलिपि की थी।

समाज में ऐसी बुराइयाँ सदैव रही हैं और संभवत: रहेंगी। परन्तु उत्तर-मध्यकालीन समाज बहुत रूढ़िग्रस्त हो गया था। कर्मकाण्ड छा गया था, कृत्यकल्पतरु जैसे ग्रन्थों को देखें तो जान पड़ता है कि हिन्दू समाज में आठ वार नौ त्यौहार क्या, आठ वार सैकड़ों त्यौहार थे। ऐसे समाज से और क्या आशा की जा सकती थी। दूसरी ओर गुह्य मतों की विचारधारा सभी संप्रदायों पर छा गयी थी। समाज एक कृत्रिम वातावरण में साँस ले रहा था। ऐसी ही स्थिति कृष्ण मिश्र के प्रबोध-चन्द्रोदय में मिलती है।

फिर हम यह पाते हैं कि क्षेमेन्द्र एक विशेष क्षेत्र की चर्चा कर रहे हैं। भारत के इस उत्तर-पश्चिमी भाग का विदेशी संस्कृतियों से बराबर सम्पर्क होता था। उन क्षेत्रों में ऐसी विदेशी जातियाँ आकर बसती रही थीं। अतएव आचार-विचार में भी

उनकी प्रवृत्तियों की छाप बराबर पड़ती रही। अतएव क्षेमेन्द्र ने कुछ परिस्थितियों में जिस समाज की चर्चा की है, वह भारतीय मूल धारा से कितना जुड़ा था, यह भी विचारणीय है।

मध्यदेश की संस्कृति से इस समाज का कितना वैपरीत्य था, इसका ठीक-ठीक पता नहीं। कला शैलियों की दृष्टि से तो पश्चिमोत्तर भाग में बहुत बाद तक रोमन और मध्य एशियाई प्रभाव--परम्परागत रूप में ही सही--चलते रहे। कम-से-कम रामायण-महाभारत के लेखन-काल से कहीं-कहीं पश्चिमोत्तर समाज के प्रति मध्य-देशीय समाज का एक विशिष्ट दृष्टिकोण रहा है। रामायण में कैकेयी का जो चरित्र प्रकट होता है, वह भारतीय समाज में साधारणतया बहुत स्वीकार्य नहीं है। महाभारत के कर्ण पर्व में कर्ण का शल्य के प्रति जो वचन है उसमें वाहीक देश (पश्चिमी पंजाब) के समाज का एक अनोखा ही चित्र मिलता है, उसे हम साधारणतया मध्यदेशीय जीवन से बहुत भिन्न पाते हैं।

दूसरी ओर क्षेमेन्द्र भी मध्यदेश अथवा पूर्वी भारत के समाज के प्रति निरपेक्ष न थे। कृष्ण मिश्र ने प्रबोधचन्द्रोदय में काशी जैसे तीर्थस्थान को रंगभूमि बनाकर इस क्षेत्र की कमजोरियों, विशेष रूप से गुरुडम की हँसी उड़ाई है। यह बहुत-कुछ तथ्यात्मक है। परन्तु क्षेमेन्द्र उस समाज से अपेक्षाकृत दूर होने के कारण निरपेक्ष दृष्टि से उसकी आलोचना करते हैं। कला-विलास के प्रथम सर्ग में दम्भ को लेकर उन्होंने गौड़देश के विद्यार्थियों का अच्छा खाका खींचा है। सामान्यतः आजकल गौड़ देश से बंगाल का तात्पर्य लिया जाता है। परन्तु क्षेमेन्द्र के काल तक इसका अर्थ मध्यदेश ही था। कश्मीर के वाक्पतिराज के गौड़वहो काव्य में कन्नौज के यशोवर्मन की चढ़ाई का वर्णन है। इस प्रकार कन्नौज को कवि ने गौड़देश माना है। यों भी समय-समय पर कन्नौज और कश्मीर के राजनीतिक और सांस्कृतिक संबंध मिलते हैं। कूर्म या मत्स्य पुराण में गोंडा क्षेत्र को गौड़देश कहा है —

श्रावस्ती नगरी येन गौड़देशे विनिर्मिता।

यह उक्ति इक्ष्वाकु वंश के श्रावस्त राजा के संबंध में है। श्रावस्ती नगर को आधुनिक सहेट महेट माना जाता है, जो बलरामपुर के निकट, बहराइच जिले में है। यह भी ध्यान देने योग्य है कि स्वयं क्षेमेन्द्र ने गौड़ देश की यही स्थिति प्रकारांतर से समय-मातृका के द्वितीय सर्ग में इंगित की है। यदि हम मानें कि उन्होंने क्रमानुसार पश्चिमोत्तर से दक्षिण-पूर्व की ओर के भूगोलीय क्षेत्र लिये हैं तो हमें मिलते हैं—कंबोज, तुर्क, चीनी (भारतीय चीनी प्रदेश), त्रिगर्त, गौड़, अंग और बंग। इस प्रकार गौड़ त्रिगर्त (काँगड़ा) और अंग (वर्तमान भागल-

पुर) के बीच का क्षेत्र हुआ। जौनपुर के शर्की सुलतानों को बंगाल का राजा कहा जाता था—मैंने यह संदर्भ कहीं देखा था, परन्तु इस समय वह ध्यान में नहीं आता, संभवतः कीर्तिलता में है।

इनके अतिरिक्त क्षेमेन्द्र के इन ग्रन्थों में कला-संस्कृति की दृष्टि से अनेक महत्त्व-पूर्ण सामग्री मिलती है। यदि स्व० मोतीचन्द्र से मेरी इन विषयों पर चर्चा होती तो वे बड़े प्रसन्न होते।

एक तो क्षेमेन्द्र ने जिन जातियों या वर्गों पर कटाक्ष किया है, उन्हें आज वाली संकीर्ण जातिवाद की दृष्टि से नहीं देखा जा सकता। यदि हम उसे एक जाति-विशेष के रूप में लें तो हम उसी एक-दूसरे छोर पर पहुँच जायँगे जिससे हमारा दृष्टिकोण आज भी संकुचित होता जा रहा है। यह समाज के लिए विघटनात्मक प्रवृत्तिमूलक है। अतः क्षेमेन्द्र के इन पात्रों या घटनाओं को टाइप के रूप में लेना चाहिए। प्राचीन कला में भी ऐसी ही अभिव्यक्तियाँ मिलती हैं। पंचतंत्र की कथाओं में पशु-पक्षियों पर ऐसी ही मनोवृत्तियाँ आरोपित कर दी गयी हैं, उनमें मानवीय समाज की ये दुर्बलताएँ बढ़ा-चढ़ाकर दिखलायी गयी हैं।

इसी प्रकार महाभारत में अराष्ट्रक जनपद (इसे भी पश्चिमी-उत्तरी पंजाब ही माना जाता है) में ऐसे अनोखे रीति-रिवाजों का हाल मिलता है जो मध्यदेशीय परंपराओं से भिन्न थे। इसी से महाभारत और रामायण दोनों ही ग्रन्थों में इस जनपद नामवाची अ-राष्ट्रक (राजा-विहीन) व्यवस्था को अराजकता का पर्यायवाची मान लिया गया। संभव है इन लोगों का संविधान ही ऐसा रहा हो जिसमें कोई राजा नहीं होता था। सिकन्दर के अभियान से संबंधित जो वृत्तांत बचे हैं, उनमें ऐसे अनेक राज्य-तंत्रों के विषय में सूचनाएँ हैं। सो, इसी अराष्ट्रक राजतंत्र को राजा-विहीन और परंपराभ्रष्ट मानकर महाभारत और रामायण के उन क्षेपकों में उनकी कठोर आलोचना मिलती है। वस्तुतः उस अराष्ट्रक समाज की अपनी परम्पराएँ क्या थीं, इसका पूरा पता ही नहीं है। यह अवश्य जान पड़ता है कि वह बहुत-कुछ स्वच्छन्द समाज था। क्षेमेन्द्रकृत कला-विलास (तृतीय सर्ग, श्लोक १६) में कवि कहता है—"अनेक युवकों के साथ मजे उड़ाने वाली वेश्या धन्य है, ऐसा अकेले में उसाँसें भरकर स्त्रियाँ कहती हैं।" अथवा—"महल में बैठी चपला, गली में देखती है, भद्दे गाने गाती है..." (वही, श्लोक १७)। यह सारे देश क्या, सारे समाज की भी स्थिति नहीं हो सकती।

क्षेमेन्द्र ने एक और विलक्षणता की सूचना दी है—कश्मीर में राजा ऐसे अधिकारियों की नियुक्ति करता जो मंदिरों को लूट लेते, मूर्तियाँ निकालकर गलवा

डालते। राजतरंगिणी के साक्ष्य पर मोतीचन्द्र ने इसकी चर्चा की है। इनको कभी-कभी देवोत्पाटन कहते। ये सभी हिन्दू राजा थे, यह कुकृत्य धनलिप्सा के कारण करते। मध्यदेश में इसकी कल्पना ही नहीं की जा सकती थी। मोतीचन्द्र ने सोमप्रभ सूरि के यशस्तिलक चम्पू का उल्लेख किया है। इसमें एक मंत्री की कहानी है जिसने एक मूर्ति गलवा दी थी, पर राजा ने उसे दण्डित किया। तत्कालीन मध्यदेशीय समाज में इस अपराध पर राजा आँख मूँद ही नहीं सकता था।

कुछ इतिहासकारों का यह मत है, जो विचारणीय है, कि मुस्लिम आक्रांताओं ने मंदिर जितने धार्मिक विद्वेष के कारण नहीं, उतने धन-लिप्सा के लिए तोड़े। संभवत: तत्कालीन भारत के उत्तर-पश्चिमी भाग के हिन्दू राजाओं और उनके अधिकारियों में यह दुष्प्रवृत्ति मुस्लिम प्रभाव से आयी।

क्षेमेन्द्र का स्त्रियों के विषय में संकुचित दृष्टिकोण जान पड़ता है। हम ऊपर कह आये हैं कि उन्होंने घर की स्त्रियों के चरित्र पर छींटाकशी की है। इसके अतिरिक्त उनके अनुसार, अनेक भेष में ऐसी स्त्रियाँ होती हैं जो भले घर की औरतों को कुमार्ग पर ले जाती हैं। इनमें वे भस्म रमाये हुई वेश्याओं, बूढ़ी बौद्ध भिक्षुणियों व गणकों की स्त्रियों को रखते हैं (कलाविलास, नौवाँ सर्ग, श्लोक २३)। ये सभी धार्मिक वर्ग की स्त्रियाँ हैं। परन्तु यहाँ बौद्ध भिक्षुणियों पर विचार करना अपेक्षित है। अनेक परंपराओं में इसकी अनुगूंज मिलती है। मूलत: बौद्ध धर्म में भिक्षुओं और भिक्षुणियों को कलाओं से दूर रहने का ही विधान था। परन्तु गुप्त काल में कालिदास के मालविकाग्निमित्र नाटक में नृत्य-संगीत की प्रमुख विशारदा ऐसी एक भिक्षुणी थी। अग्निमित्र के महल में भी उसकी पूछ थी, दो नाट्याचार्यों की प्रतिद्वन्द्विता के समय राजा ने उसी को निर्णायक बनाया। कथासरित्सागर में एक तापसी का उल्लेख मिलता है—भले ही वही किसी संप्रदाय की रही हो—जो चित्रों की ज्ञाता थी। यहाँ तक भी ठीक था। परन्तु क्षेमेन्द्र से ज्ञात होता है कम-से-कम उत्तर-पश्चिमी भारत में इस वर्ग का अध:पतन हो चुका था, यह उपर्युक्त उद्धरण से प्रतीत होता है। प्रबोधचन्द्रोदय में, जो प्राय: इसी काल का ग्रन्थ है, ऐसा ही चित्र उपस्थित होता है। अन्यत्र (समयमातृका, तृतीय समय) कंकाली के चरित्र से इसकी पुष्टि होती है। आज जो प्रचलित द्वंद्व समास है—रण्डीमुण्डी, उसमें मुण्डी शब्द का मूल मुण्डिता (मूड़ मुड़ाई हुई, साधुनी) स्त्री हो सकता है।

क्षेमेन्द्र गायकों से रुष्ट जान पड़ते हैं। परन्तु दूसरी ओर जनसाधारण में संगीत के प्रति बहुत आकर्षण ज्ञात होता है। कहने को क्षेमेन्द्र यहाँ तक कह गये कि राजा को इन गायकों को राज्य में घुसने तक न देना चाहिए। स्वयं गायकों की उत्पत्ति

को लेकर उन्होने विलक्षण कहानियाँ दी हैं। इसका कारण यह हो सकता था कि उस काल का संगीत काफी रीतिबद्ध हो गया था। संगीतरत्नाकर, जो क्षेमेन्द्र के थोड़े ही बाद का ग्रन्थ है, आदि से यह स्थिति प्रकट होती है। इससे भी संगीतकार समाज के वर्ग से अवश्य ही कट गये होंगे। यदि ऐसी स्थिति थी तो वह बहुत-कुछ उस समय के रीतिबद्ध काव्य या चित्र-मूर्ति कला के समकक्ष थी। राजसभा में ऐसी कलाओं का आदर था। संभवतः क्षेमेन्द्र का इस वर्ग के गायकों से तात्पर्य न था। प्रसिद्ध संस्कृत कवि राजशेखर, क्षेमेन्द्र के प्रायः समकालीन थे। उन्होंने कविकण्ठाभरण में संगीतकारों को राजसभा में सम्मानित स्थान दिया है अतएव मालवा क्षेत्र में शास्त्रीय संगीत का आदरपूर्ण स्थान था। यहाँ क्षेमेन्द्र कहते हैं कि ये गायक 'दिल चुरा लेते हैं', इससे लोकप्रिय संगीत की संभावना होती है। इन पर उस समय के श्रीमान् धन लुटा देते थे। स्वयं ये गायक भी बड़े चरित्रहीन थे। क्षेमेन्द्र का उन पर कटाक्ष है।

क्षेमेन्द्र ने संगीत के इस पक्ष में एक और भी संकेत दिया है—वे विचित्र कपड़े पहनते (कला-विलास, सातवाँ सर्ग, श्लोक ६, १८-२२)। अन्यत्र वे इस वर्ग में म्लेच्छ गायकों का भी उल्लेख करते हैं (समयमातृका, तृतीय समय, श्लोक २६)। ये ऐसे उद्धत थे कि वेश्याएँ तक इनसे शुल्क लेने में डरतीं (वही, ३।२६)। मोतीचन्द्र ने इन्हें विदेशी गायक माना है किन्तु जान पड़ता है कि समाज के अवांछनीय तत्त्वों के गिरोह से इनका संबंध था। अथवा जैसी आज से कुछ पहले तक स्थिति थी, गायन विद्या का वेश (वेश्याओं के समाज) से निकट संबंध था, अतएव अपनापन मानकर वे उनसे फीस (भाटी) न लेतीं। समयमातृका के पंचम समय (श्लोक ३३) में स्पष्ट ही कहा है कि माल पैदा किये हुए गवैये, वेश्याओं के लिए कल्पवृक्ष-से थे। अतएव यह नहीं कहा जा सकता है कि उनके और वेश्याओं के संबंध में बिगाड़ था।

क्षेमेन्द्र ने गायकों के कुछ चित्र दिये हैं—वे अनेक तरह की मुद्राएँ और मुँह बनाकर गाते। उनके वस्त्र विचित्र होते (समयमातृका, सातवाँ सर्ग, श्लोक ६)। इन्द्र ने (द्वेष भावना से) धन लूटने के लिए इन पिशाचों (गायकों) को भेजा (वही, श्लोक १८-२२), राजा इन्हें अपने राज्य में न घुसने दे (वही, श्लोक ६)।

इन गायकों के कुछ नाम (वही, श्लोक १८-२२) भी बड़े मार्के के हैं। इनमें एक का नाम है—प्रसिद्धदास। यह नाम गायकों में बहुत हाल तक प्रचलित था--काशी में ही कुछ पहले एक संगीतकार प्रसिद्ध हुए। एक अन्य नाम है, बाडवदास। यह तुंबुरु से संबंधित हो सकता है। परवर्ती राजस्थानी शैली में श्री राग का जो चित्र मिलता है, उसमें नारद-तुंबुरु भी दिखलाये जाते हैं। इनमें तुंबुरु को अश्व या वाडव-

मुख दिखलाया जाता है। तीसरा नाम है, खरहरदास। दक्षिण के (कर्नाटक) संगीत में खरहरप्रिया एक राग है।

इसके अतिरिक्त क्षेमेन्द्र में चित्रों की परम्परा और सांस्कृतिक विषयों पर अटूट सामग्री मिलती है, इन सबका स्वतंत्र अध्ययन अपेक्षित है।

उत्तर प्रदेश हिन्दी समिति ने यह बड़ा ही महत्त्वपूर्ण निश्चय किया कि मोतीचन्द्र की समस्त हिन्दी कृतियों को एकत्र कर प्रकाशित करने की योजना बनायी। इससे उनकी खोजें हिन्दी-जगत् को और विद्यार्थी-अध्येता समाज को उपलब्ध होंगी, फलतः प्रेरणादायक होंगी। आशा है, हिन्दी समिति उनके अंग्रेजी ग्रन्थों को भी क्रमशः हिन्दी में उपलब्ध करायेगी।

मैं उत्तर प्रदेश हिन्दी समिति का आभारी हूँ कि मुझे इन पंक्तियों के लिए अवसर दिया।

काशी, फाल्गुन २०३२ —**राय कृष्णदास**

अनुक्रमणिका

१. क्षेमेन्द्र और उनका समाज	१
२. क्षेमेन्द्र कृत कलाविलास (अनुवाद)	९१
३. क्षेमेन्द्र कृत समयमातृका (अनुवाद)	१२७
४. क्षेमेन्द्र कृत देशोपदेश (अनुवाद)	१७३
५. क्षेमेन्द्र कृत नर्ममाला (अनुवाद)	१९७

⊙

क्षेमेन्द्र और उनका समाज

⊙

हा प्रजे क्व गमिष्यसि !

(हाय जनता, तू कहाँ जायगी !)

(१)

भारतीय संस्कृति के इतिहास को लेकर अनेक विद्वानों ने खोज की है पर उनमें से अधिकांश का ध्यान भारतीय धर्म, समाज व्यवस्था, राजनीति, कला, व्यापार तथा तत्त्वचिंतन के चमकीले पहलुओं की ओर ही अधिक गया है किन्तु भारतीय जीवन के उपर्युक्त पक्ष केवल समाज के उच्च वर्गों ही तक सीमित थे। भारतीय संस्कृति के सर्वाङ्गीण अध्ययन के लिए यह आवश्यक है कि उस जन संस्कृति का भी अध्ययन किया जाय जिसकी कमजोरियों और मजबूतियों पर ही मार्गीय संस्कृति आगे कदम बढ़ा सकती है। मार्गीय संस्कृति की विचारधाराएं कालक्रम में जनसमुदाय में पहुँचती थीं पर संस्कृति की अनेक अवस्थाओं में पड़ा हुआ जनसमाज मार्गीय संस्कृति के मूलभूत सिद्धान्तों के समझने में असमर्थ था, जिसके फलस्वरूप संस्कृति के आचार पक्ष को तो वह ग्रहण कर लेता था पर विचार पक्ष वह तभी ग्रहण कर सकता था जब उसमें वह अपने विश्वासों का प्रतिबिंब देख ले। संस्कृति के क्षेत्र में आदान-प्रदान की इस परिपाटी का फल यह हुआ कि मार्गीय संस्कृति के उन्नायकों को समय-समय पर लोक संस्कृतियों से समझौता करके उसमें उनकी भावनाओं का समादर करना पड़ा जिसके फलस्वरूप भारतीय संस्कृति के मूलभूत सिद्धान्तों में बहुत सी ऐसी बातें घुस गयीं जो बेमेल-सी लगती हैं पर समन्वय की भावना से उत्प्रेरित संस्कृति के उन्नायकों ने उसकी परवाह न की। तर्क को एक ओर रख कर उन्होंने सब विचारों को आत्मसात करने का प्रयत्न किया जिससे अनेक मतमतांतरों में असंगतियां तो आ गयीं पर उनकी प्रेरणात्मक शक्ति ज्यों की त्यों बनी रही। इस समन्वय की विचारधारा को अपनाकर बुद्ध द्वारा लोकधर्म में प्रचलित यक्ष और नाग अपनाये गये तथा बाद में मंत्रयान ने प्राचीन बौद्ध धर्म का रूप ही पलट दिया। पौराणिक धर्म भी इससे अछूता न बच सका।

समन्वय की यह भावना कुछ अंशों तक तो ठीक थी क्योंकि भारत में राजनीतिक एकता के अभाव में उसने सांस्कृतिक एकता की जड़ जमाई पर समयांतर में उसने संस्कृति और तत्वचिंतन के क्षेत्रों में एक बावेला-सा मचा दिया जिसके फलस्वरूप भारतीय संस्कृति के मूलभूत सिद्धान्तों पर एक ऐसी गहरी काई की तह चढ़ गयी जो आज तक जमी हुई है। अपनी डफली अपना राग बजाने का सब सैद्धान्तिकों को अवसर मिल गया। जिन बाह्याचारों का बौद्धों, जैनों और ब्राह्मणों ने खुलकर विरोध किया था मध्यकाल में वे ही आचार धार्मिक विश्वासों के प्रतीक बन गये। यक्ष, भूत-प्रेत, राक्षस, देवी देवताओं तथा घोर अंधविश्वासों ने मध्यकालीन भारतीय समाज को ऐसा घेर लिया कि प्रायः निस्तार असंभव हो गया। शायद इसी पौराणिक विचार-धारा के विरोधस्वरूप कालिदास को खुलकर कहना पड़ा—"पुराणमित्येव न साधु सर्वं" तथा प्रसिद्ध जैन नैय्यायिक सिद्धसेन ने अपनी एक बत्तीसी में पुराण पंथ को प्रगति का शत्रु मान कर उसकी निंदा की। पर लोकानुमोदित अंधविश्वास भारतीय धर्मों और विश्वासों में कुछ ऐसे पैठ गये थे कि विज्ञों को भी उन्हें जीवन से दूर करना कठिन था। उदाहरणार्थ, कौल कापालिकों का दार्शनिक पक्ष चाहे कितना ही ऊंचा क्यों न रहा हो तथा पंचमकार की लाक्षणिक व्याख्या जो भी हो, उसके यौनाचार, शव-साधना, नरमांस वितरण इत्यादि कृत्य किसी प्राचीन अविकसित संस्कृति के अंग हैं जिनका धार्मिक क्रियाओं में सन्निवेश करना खतरे से खाली नहीं था। धर्म-स्वीकृत ये बर्बर कृत्य केवल मध्य काल की ही देन नहीं थे, अनेक गुप्तकालीन बौद्ध और वैष्णव तंत्रों में भी उनके उल्लेख मिलते हैं और जब इन क्रियाओं के परिपोषक हम राजदरबारों को भी पाते हैं तो भारतीय संस्कृति के ह्रास के लक्षण स्वयं प्रकट होने लगते हैं।

भारतीय धर्मों के क्रियापक्ष का यदि आलोचनात्मक दृष्टि से सांगोपांग अध्ययन किया जाय तो पता चलता है कि वर्ग विशेषों ने किस तरह आर्थिक और दांभिक दृष्टि-कोण से अनुप्राणित होकर क्रियाकलापों, तीर्थयात्राओं, छुआछूत और अनेक पाखंडों को चलाया जिनके वशीभूत होकर भारतीय संस्कृति दूसरे अंगों की ओर से मुख मोड़ने लगी। दान-दक्षिणा की परिपाटी इतनी बढ़ी कि तिल के हाथी के दान से स्वर्ग में ऐरावत मिलने की कल्पना कर ली गयी। तीर्थ तपस्वियों के अड्डे न बन कर बदमाशों, धूर्तों और वेश्याओं के अड्डे बनने लगे, मंदिरों में देवदासियाँ देवाराधन के ही लिए नृत्य गीत में निरत न रह कर असामी फँसाने लगीं और देवमंदिर केवल आराधना के स्थल न रहकर राज्य और पुजारियों के बीच आर्थिक कशमकश के साधन बन गये। स्पृश्यास्पृश्य की भावना ने इतनी जड़ पकड़ ली कि तपस्वी और ब्राह्मण हटो-बचो

में ही व्यस्त रहने लगे। ऐसी स्थिति में धूर्तों और पाखंडियों की बन आयी। वे चमत्कार-वाद जैसे रसायन सिद्धि, अंजन, गुटका, बिलसिद्धि इत्यादि के चकमे देकर लोगों को बेवकूफ बनाने लगे। इन अंधविश्वासों के प्रति कुछ लोगों ने अवश्य आवाज उठायी पर उनका यह प्रतिवाद अरण्य-रोदन की तरह था—मर्ज बढ़ता ही गया ज्यों-ज्यों दवा की।

संस्कृति के परिवर्धन का मुख्य आधार राजनीति है तथा राजनीति को सही ढंग से चलाने वाले राजा, उसके मंत्रिगण, राज कर्मचारी और अदालतें थीं। कौटिल्य के अर्थशास्त्र और बाद के नीतिशास्त्रों के अध्ययन से पता चलता है कि राज्य व्यवस्था और अर्थ व्यवस्था में नीतिकारों की पैनी पैंठ थी तथा वे शासन की अच्छाइयों और बुराइयों से अवगत थे। पर कथनी कुछ और होती है और करनी कुछ और। नीति-शास्त्रों, ऐतिहासिक स्रोतों और पुरातात्विक सामग्री के तुलनात्मक अध्ययन से यह बात साफ हो जाती है कि नीतिशास्त्र का आदर्श सामने रखते हुए भी भिन्न-भिन्न समयों में भारतीय शासन व्यवस्था अपने रूप बदलती रही। उसकी कमजोरी अथवा मज-बूती राजा और उसके मंत्रियों कमजोरी और मजबूती पर अवलंबित रहती थी। अभाग्यवश ऐसा साहित्य कम बचा है जिसके आधार पर हम भारतीय इतिहास के भिन्न-भिन्न समयों की शासन-व्यवस्थाओं की कमजोरियों और मजबूतियों पर प्रकाश डाल सकें पर आनुषंगिक रूप से भिन्न-भिन्न कालों के साहित्य में ऐसे उद्धरण बच गये हैं जिनसे इस प्रश्न पर प्रकाश पड़ जाता है। राज्य सेवा स्वीकार करने वाले व्यक्तियों की मनोवृत्तियों, कुत्सितकर्म, काटकपट तथा चापलूसियों के प्रति बाणभट्ट ने हर्ष-चरित में विचित्र उद्गार प्रकट किये हैं।[१] बाण तो राजसेवकों से इतने नाराज थे कि उन्हें वे मनुष्यों की श्रेणी में भी गिनने को तैयार नहीं थे। दरिद्रतावश राजसेवा स्वीकार करके राजसेवक अपना व्यक्तित्व खोकर कठपुतली बन जाते थे और खुशा-मद ही उनके जीवन का आधार हो जाती थी। नौकरी की खोज में उन्हें राज दरबार में धक्के खाने पड़ते थे और उसके मिल जाने पर प्रणाम करते-करते उनके सिर में घट्ठे पड़ जाते थे तथा उफ किये बिना शरीर दंड भी सहना पड़ता था। कुछ राज-सेवक खुशामद में लग कर अपना पुरुषार्थ खो बैठते थे। स्वामी के पास जाने में वे थरथर काँपते थे पर सब गर्मी हवा हो जाने पर भी वे अपनों को सताने में बाज नहीं आते थे। उनकी तृष्णा बढ़ती ही जाती थी। लगता है इन राज कर्मचारियों को जो

---

१. वासुदेवशरण अग्रवाल : हर्षचरित; एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० १७३, पटना, १९५३।

अपमान ऊपर से सहने पड़ते थे उनका बदला वे अपने अधीनों को लूट और सता कर निकालते थे। हर्ष के राज्यकाल में राजसेवा में जो घुन लग गया था वह कोई नयी बात नहीं थीं। गुप्तकालीन पादताडितकम् नामक भाण में कुमारामात्याधिकरण का जैसा चित्र खींचा गया है उससे भी राज कर्मचारियों की शिथिलता और घूसखोरी का पता चलता है।[२] पुस्तकवाचक मदयंती नामक चामरग्राहिणी से लड़कर अदालत पहुँचा पर वहाँ जय और दंड के नाम कठिनाइयाँ ही झेलनी पड़ीं। न्यायाधीश के भाई ने उससे वसूलने के लिए डराया और पिटवाया। वहां के छोटे-बड़े सभी अफसर उससे घूस मांगते थे। उसकी दुर्गति सुनकर विट ने कहा—बधाई है जो कायस्थ के जाल में फँस कर भी तुझे सकुशल बाहर आया हुआ देख रहा हूं। मध्यकालीन भारत में तो यह शासन व्यवस्था बहुत ही ढीली पड़ गयी थी। तत्कालीन साहित्य तो इस विषय में प्रायः शांत है पर कल्हण ने राजतरंगिणी में तथा क्षेमेन्द्र ने अपने ग्रंथों में शासन-व्यवस्था और राज कर्मचारियों के कुकृत्यों का काफी भंडाफोड़ किया है। क्षेमेन्द्र के रोमांचकारी वर्णनों से पता चलता है कि प्रजा के रक्षक ही किस तरह उसके भक्षक हो रहे थे और किस तरह उनकी लूटों से परीशान होकर जनता त्राहि-त्राहि कर रही थी। मध्यकालीन शासन की यह दुर्व्यवस्था केवल कश्मीर तक ही सीमित नहीं थी। उत्तर भारत के राज्यों में भी ऐसी ही दुर्व्यवस्था रही होगी इसमें संदेह नहीं। शायद इसीलिए गोविन्दचन्द्र के मंत्री भट्ट लक्ष्मीधर ने कृत्य-कल्पतरु के राजधर्म खंड में शासकों का ध्यान पुनः भारत के प्राचीन राजनीतिक आदर्शों पर दिलाने की आवश्यकता महसूस की। गोविन्दचन्द्र के आश्रित पं० दामोदर कृत उक्ति-व्यक्ति-प्रकरण से भी पता चलता है कि शासन की ढिलाई से गाहडवालों की राजधानी वाराणसी चोरों, डाकुओं और बदमाशों का अड्डा बन गयी थी। बलवान दुर्बलों को लूटने में जरा भी हिचकिचाते नहीं थे और शहर में गिरहकटों की कमी नहीं थी। खून-खराबियां भी हो जाती थीं। इन बदमाशों का इतना प्रभाव था कि इनके विरुद्ध लोग आवाज नहीं उठा सकते थे।[३]

दक्षिण भारत में भी शासन निरंकुश हो चला था और इसमें राजा का भी हाथ होता था। सोमेश्वर कृत यशस्तिलक चम्पू में (लेखन काल—९५९ ई०), जिससे राष्ट्रकूटों की शासन व्यवस्था पर कुछ प्रकाश पड़ता है, इस बात का उल्लेख है कि मंत्री के तीन मुख्य कर्तव्य होते थे : यथा बुआई के समय बेगारी, फसल पकने के पहले

---

२. वासुदेवशरण और मोतीचन्द्रः शृंगारहाट, पृ० २१३-२१५, बंबई १९५०।

३. उक्ति-व्यक्ति-प्रकरण, संपादक जिनविजयजी, पृ० ८३, बंबई, १९५३।

ही राजदाय की वसूली तथा फसल के समय अबाध सैनिक प्रयाण की व्यवस्था।[४] मध्यकाल में राजमंत्री को ये अधिकार कौटिल्य (२।१) की उस आज्ञा के बिल्कुल विपरीत है जिसके अनुसार राजा का यह कर्तव्य था कि कृषकों की दंड, बेगार तथा अबाध करों से रक्षा करे (दंड विष्टि करावाधैः रक्षेदुपहतां कृषिम्)। यशस्तिल का उल्लेख इस बात का प्रमाण है कि मध्यकाल में मंत्री के हाथ में इतना अधिकार था कि वह अपने मातहतों की मदद से प्रजा को काफी सता सके। राष्ट्रकूट इन्द्र तृतीय के ९१५ ई० के एक लेख से पता चलता है कि एक ब्राह्मण को ग्रामदान के साथ ही साथ बेगारी लेने का भी अधिकार था।

राजनीतिक उथल-पुथल और शासन व्यवस्था की शिथिलता का प्रभाव देश के आर्थिक जीवन पर पड़ता है। प्रजा का एक तरफ तो अधिकारियों द्वारा शोषण होता था, जो कुछ गरीबों के पास बच जाता था उसमें से अधिकांश दान-दक्षिणा और अंध विश्वासों के पालन में समाप्त हो जाता था। व्यापारी वर्ग पर भी इस अव्यवस्था का प्रभाव पड़े बिना नहीं रहता था। उस काल में भी अनेक सदाशय व्यापारी थे जिन्होंने अपने धन से धर्म को प्रोत्साहन दिया और अनेक लोकोपयोगी कार्य किये। पर एक दूसरा व्यापारी वर्ग भी था जो अपने हथकंडों से चूकता नहीं था। क्षेमेन्द्र ने ऐसे ही वर्ग पर, जिसमें उधार करने का सौदा करने वाले बनिए, सोनार इत्यादि आ जाते हैं, कस कर प्रहार किया है। बनिए लेन-देन में कैसी गड़बड़ी करते थे, वे कैसे कंजूस होते थे, अतिवृष्टि और अनावृष्टि देखकर कैसे प्रसन्न होते थे, सोनार किस तरह लोगों को धोखा देते थे, इन सबका विनोदपूर्ण वर्णन क्षेमेन्द्र ने किया है। इतना ही नहीं आनुषंगिक रूप से मध्यकालीन व्यापार पर भी क्षेमेन्द्र ने प्रकाश डाला है।

जब किसी जाति या देश का पतन होने लगता है तो यह पतन एकांगी न होकर बहुमुखी होता है। चरित्र की श्रेष्ठता का एक मापदण्ड यौनाचार है। इसमें संदेह नहीं कि यौनाचार से संबंधित अनेक विकृतियाँ भारतीय समाज में बहुत प्राचीन काल से थीं और मानवधर्म के अनुसार यह अनिवार्य भी था। धर्माचार्यों ने यौन विकारों से बचने की हिदायतें कीं और इस संबंध में अनेक विधि-निषेधों की कल्पनाएं कीं पर मनुष्य अपने नैसर्गिक आचारों से बाज न आया। वैशिक संस्कृति बहुत प्राचीन काल से भारतीय संस्कृति का अंग बनी रही। इस संस्कृति में दोष अवश्य थे पर वह ललित कला, संगीत, नाट्य इत्यादि के प्रोत्साहन में सदैव प्रस्तुत रही। गुप्त-

---

४. के० के० हंडीकी: यशस्तिलक एंड इट्स कल्चर, शोलापुर, १९४९।

कालीन चतुर्भाणी में जिस वेश-संस्कृति का चित्रण है उसमें तत्कालीन यौनाचार, वेश्याओं के कपट-प्रेम और लूट पर प्रकाश पड़ने के अलावा, तत्कालीन कला, हास-व्यंग और जीवन के प्रति उत्साह का भी दर्शन होता है। वेश्याओं और नायकों के साथी विट, जो बाद में चलकर गुंडों और शोहदों के प्रतीक बन गये, अपनी बहादुरी, वाक्पटुता और कामशास्त्र संबंधी ज्ञान के लिए प्रसिद्ध थे। वेश का ठाट राजसी था और उनमें जानेवालों के प्रति कोई तिरस्कार की भावना नहीं थी। गोष्ठियां भी वेश संस्कृति की एक मुख्य अंग थी और कला और संगीत संबंधी अनेक प्रश्नों पर गोष्ठियों की राय प्रमाणभूत मानी जाती थीं। पर मध्यकालीन साहित्य के अध्ययन से पता चलता है कि प्राचीन वैशिक संस्कृति कितनी विकृत हो चुकी थी। क्षेमेन्द्र ने वेश और वेश्याओं के जो वर्णन दिये हैं, वे आजकल के चकलों का दृश्य उपस्थित करते हैं। नाचना गाना अवश्य उनमें बच गया था, पर ग्राहक फँसाना और उन्हें लूट कर खुश कर देना ही उनका मुख्य पेशा था जिसमें कुटनियां पूरी सहायक होती थीं। वेश गुंडों और बदमाशों के अड्डे बन गये और विट केवल वेश्याओं के दलाल। अपना काम साधने के लिए वेश्याएं अपना रूप बदल लेती थीं और बूढ़ी होकर भी सजधज कर अपना शरीर बेचती थीं। वेश संस्कृति के इस पतन का मुख्य कारण उसका विस्तार मालूम पड़ता है। प्राचीन काल में वेश संस्कृति के पास वे ही जा सकते थे जिनके पास पैसा था अथवा ऐसे गुण जिनसे वेश्याएं आकर्षित हो सकें। पर मध्यकाल में वेश केवल कामवासना की तृप्ति के साधन बन गये और उनके दरवाजे सभी पैसे वालों के लिये खुल गये तथा गुणियों की कोई पूछ न रह गयी। देवदासियों की बढ़ती प्रथा ने तो देवमंदिरों को भी अछूता न छोड़ा।

स्त्रीचरित्र की पवित्रता भारतीय साहित्य में एक बड़ी ही निर्मल वस्तु मानी गयी है। पतिव्रताओं के आख्यान पौराणिक और लोक साहित्य की अमर देन हैं। मध्यकालीन साहित्य में भी पातिव्रत धर्म की महिमा गायी गयी है पर साथ ही साथ उस साहित्य में स्त्रियों के दुराचरण का भी रोना रोया गया है। पति को धोखा देकर जार के संग रमण मध्यकालीन साहित्य का एक अभिप्राय-सा बन गया है। ये कहानियां कहां तक पुरुष समाज द्वारा स्त्री समाज पर संदेह भावना की द्योतक हैं यह नहीं कहा जा सकता। पर क्षेमेन्द्र ने काफी खुलकर कुलांगनाओं, विशेष कर राजकर्मचारियों की स्त्रियों, विधवाओं और परदेस गये बनियों की स्त्रियों के दुश्चरितों की विवेचना की है। क्षेमेन्द्र के अनुसार मध्यकालीन कौल-कापालिक क्रियाएं भी स्त्रियों को चरित्र-भ्रष्ट करने में काफी सहायक थीं। कौल-कापालिकों के यौनाचार गुप्त तांत्रिक विधान के अंग ही नहीं बने रहे उनकी सत्यता प्रकट करने के लिए मंदिरों की मूर्तिकला में

उनका नग्न प्रदर्शन हुआ। इस तांत्रिक 'सत्य' का दर्शनार्थियों पर जिनमें अधिकतर स्त्रियां होती थीं कैसा प्रभाव पड़ा होगा यह तो राम ही जाने, पर जहां तक मध्यकालीन साहित्य का संबंध है उससे तो यही पता चलता है कि कौलाचार अनाचार के प्रतीक बन गये।

प्राचीन भारतीय धर्मों ने मदिरापान को गर्हित माना है। पर भारतीय साहित्य इस बात का साक्षी है कि मदिरापान प्रायः समाज के सब वर्गों में प्रचलित था और वेश संस्कृति से तो इसका पूरा गठबंधन था। मध्यकाल में भी मदिरापान की निंदा की गयी पर सक्रिय रूप से इसे बंद करने का किसी ने प्रयत्न किया हो इसका पता नहीं चलता। क्षेमेन्द्र के अनुसार तो सभी वर्गों में मदिरापान प्रचलित था, विशेषकर कौल-कापालिक तो सामूहिक रूप से मदिरापान को एक मुख्य धार्मिक प्रक्रिया का रूप मानते थे। क्षेमेन्द्र ने इस अनाचार के प्रति अपनी तीव्र विरोध भावना प्रदर्शित की है और मदिरापान के दोषों का खुल कर वर्णन किया है।

भारतीय संस्कृति में संगीत का अपना स्थान है और वह लौकिक तथा पारलौकिक सुखों का स्रोत माना गया है। संस्कृत नाटकों और काव्य साहित्य में अनेक ऐसे स्थल हैं जिनसे भारतीयों की संगीतशास्त्र के प्रति आस्था तथा गायनाचार्यों की अपनी कला में दक्षता का पता चलता है। मध्यकाल में इस संगीत की क्या अवस्था थी इसका पता संगीत-ग्रन्थों से चलता है। पर ऐसा लगता है कि क्षेमेन्द्र मध्यकालीन गायकी से विशेष प्रसन्न न थे। यज्ञ में कनफोड़ बीनकार की घसघस तथा उस्तादी गाने बजाने से उन्हें विशेष चिढ़ थी। गवैयों के चरित्रदोषों से वे नफरत करते थे तथा उनके निंदक स्वभाव के वे कड़े आलोचक थे। पर जब वे राजाओं को यह आदेश देते हैं कि अगर वे अपना कल्याण चाहते हैं, तो गवैयों को अपने राज में न घुसने दें तो या तो इससे इनकी विनोदप्रियता सिद्ध होती है अथवा मध्यकाल में संगीत केवल आराम-तलबी का साधन होने से उनके कोप का भाजन बना।

प्राचीन भारत की शिक्षापद्धति पर अनेक विद्वानों ने अनुसंधान किये हैं तथा गुरुकुलों में शिक्षा की क्या प्रणाली थी इस पर प्रकाश डाला है। मध्यकालीन साहित्य से पता चलता है कि मठ शिक्षा के प्रधान केन्द्र बन गये। कश्मीर और वाराणसी में अनेक मठ थे जिसमें विद्यार्थियों के पठन-पाठन का प्रबंध रहता था। क्षेमेन्द्र ने ऐसे ही एक मठ का जीता-जागता चित्र खींचा है। यह कश्मीर में आये गौड़ विद्यार्थियों का मठ था। उसमें पढ़ना-लिखना तो नाममात्र ही का था पर गुंडई की मात्रा भरपूर थी। एक अनपढ़ शिक्षक अपने विद्यार्थियों को कैसे-कैसे अंडबंड पाठ पढ़ाते थे इसका भी सुंदर चित्र क्षेमेन्द्र ने दिया है।

अब प्रश्न यह उठता है कि मध्यकालीन संस्कृति के सड़े-गले अंगों का क्या किसी ने निष्पक्ष भाव से अवलोकन किया और उसकी भर्त्सना की? मध्यकालीन काव्य साहित्य में तो प्रेम की पुरानी परंपरा का रोना है, जीवन विशेषकर जन-जीवन से उसका केवल दूर ही का संबंध है। धार्मिक साहित्य से भी अपनी डफली अपना राग की कहावत चरितार्थ होती है। कथा-कहानियों से जन-जीवन पर प्रकाश पड़ता है, तथा अलबीरूनी ने भी भारतीय संस्कृति के ह्रासात्मक अंगों पर प्रकाश डाला। पर उस संस्कृति और सामाजिक व्यवस्था का जिन खुले शब्दों में क्षेमेन्द्र और कल्हण ने विरोध किया है वैसा दूसरों ने नहीं। इन लेखकों की अनुसंधानात्मक समीक्षा से मध्यकालीन संस्कृति का रूप तो खड़ा होता ही है, हमें यह भी पता चलने लगता है कि वह संस्कृति और सामाजिक व्यवस्था भविष्य में होने वाले उस महानाटक का, जिसका विषय मुस्लिम विजेताओं द्वारा एक झटके में ही उत्तर भारत का पतन है, पूर्वरंग मात्र है।

(२)

क्षेमेन्द्र संस्कृत के उन साहित्यिकों और दार्शनिकों की श्रेणी में हैं जो अपने संबंध में कुछ नहीं कहते। पर उनके काव्यों के अंतरंग प्रमाणों के आधार पर शायद उनका जन्म ९९० ई० के बाद और मृत्यु १०६५ ई० के बाद हुई। क्षेमेन्द्र की भारत-मंजरी से पता चलता है उन्होंने प्रसिद्ध दार्शनिक और टीकाकार अभिनवगुप्त से साहित्य की शिक्षा पायी। अभिनवगुप्त ने प्रत्यभिज्ञादर्शन पर विद्याविवृति नामक अपनी बड़ी टीका १०१४ ई० में लिखी। इससे यह अटकल लगाया जा सकता है कि जब क्षेमेन्द्र उनसे साहित्य की शिक्षा लेने आये होंगे तब उनकी अवस्था पचीस से कम न रही होगी क्योंकि तत्कालीन साहित्य के ज्ञान की प्राप्ति इससे कम उम्र में संभव नहीं थी। इसी अनुमान के आधार पर कि विद्याविवृति की समाप्ति के बाद ही क्षेमेन्द्र, अभिनवगुप्त के शिष्य हुए, उनका जन्म ९९० ई० के आसपास होना स्वीकार किया जा सकता है। उनकी मृत्यु १०६५ ई० के बाद ही हुई होगी। अपने जीवन के अंतिम दिनों में उन्होंने वानप्रस्थ स्वीकार कर लिया था और शायद त्रिपुरेश पर्वत के एक आश्रम में रहने लगे थे, जहां उन्होंने कलश के राज्यकाल में १०६५ ई० में दशावतार की रचना की।[५]

---

५. **देशोपदेश-नर्ममाला, पृ० २१, मधुसूदन कौल द्वारा संपादित, पूना, १९२३।**

क्षेमेन्द्र का जन्म एक धनी कुल में हुआ था। उनके दादा का नाम सिन्धु और पिता का नाम प्रकाशेन्द्र था। प्रकाशेन्द्र बड़े ही दानी तथा शैवधर्म के अनुयायी थे। कवि क्षेमेन्द्र का यौवन बड़े ही आराम से बीता। स्वरचित 'कविकंठाभरण' में कवि बनने के लिए जिन उपादानों का उल्लेख किया है, उन्हें वे हस्तगत थे। उनके विचार में काव्यशक्ति नैसर्गिक और स्वोपार्जित होती है। रसोत्पत्ति काव्य का प्राकृतिक गुण है पर उसे प्रोत्तेजन देने के लिए मानुषी और दैवी प्रयत्न आवश्यक हैं। दैवी कृपा से मतलब यहाँ सारस्वत मंत्र के साधन से है तथा मानुषी प्रयत्न से अनेक ज्ञान-विज्ञानों में कवि की शिक्षा से है। क्षेमेन्द्र के जीवन का अधिक समय सुसंस्कृत जनों के संपर्क में बीता। न्याय और व्याकरण जैसे शुष्क विषयों से वे सदा अलग रहे। पर कोश, गीत, गाथाएँ तथा प्राकृत काव्यों के अध्ययन का उन्हें व्यसन था तथा कथा साहित्य और काव्य के औचित्य विचार चर्चा उन्हें भाते थे। अवकाश के समय वे नाटक देखने के शौकीन थे। वे संगीतप्रेमी भी थे तथा धनी होने के कारण वे अच्छे लेखकों की मदद भी करते थे। उनके काव्यों में चित्रकला संबंधी अनेक उल्लेख आने से पता चलता है कि वे इस कला के भी पारखी थे। तत्कालीन वैशिक संस्कृति का उन्हें पूरा ज्ञान था। भारतीय संस्कृति के और भी अनेक उपेक्षित अंगों का, जिनकी ओर दूसरे लेखकों ने दृष्टिपात नहीं किया है, क्षेमेन्द्र ने बड़ी बारीकी से अध्ययन किया था।

क्षेमेन्द्र जन्म से ही शैव थे। इस धर्म के प्रति उनकी आस्था अभिनवगुप्त के संसर्ग से और भी बढ़ी। पर बाद में सोम भागवत के प्रभाव में आकर उनका झुकाव वैष्णव धर्म की ओर हो गया। एक सच्चे तत्त्वदर्शी की हैसियत से उन्होंने बौद्ध धर्म का भी अध्ययन किया जिसका प्रभाव उनकी बाद की रचनाओं पर स्पष्ट है। बुद्ध और बौद्ध धर्म पर पूर्ण आस्था होते हुए भी यह मानने का कोई कारण नहीं है कि क्षेमेन्द्र बौद्ध हो गये थे। इसमें कोई शक नहीं कि जीवन के अंतिम दिनों तक वैदिक धर्म पर उनकी आस्था थी। पर धार्मिक होते हुए वे मध्यकालीन धर्मों की कमजोरियों से पूरी तरह अवगत थे। उन्होंने खुल कर धार्मिक बुराइयों, उसके आड़ में होने वाले वीभत्स यौनाचारों और पाखंडों का विरोध किया तथा अंधविश्वासों की खुल कर हँसी उड़ाई।

क्षेमेन्द्र का रचना काल राजा अनंत के, जो १०२८ ई० में राजगद्दी पर बैठे, पहले ही आरम्भ हुआ होगा क्योंकि नर्ममाला में क्षेमेन्द्र ने उनका नाम लिया है। अभिनव गुप्त से उच्च शिक्षा पाकर पहले उन्होंने कथासाहित्य पर ध्यान दिया और गुणाढ्य की बृहत्कथा के आधार पर बृहत्कथामंजरी लिखी। इसके बाद की रचनाओं में भारत-मंजरी, रामायणमंजरी इत्यादि आ जाती हैं। पर इस संकलन साहित्य की रचना के

साथ ही साथ वे तत्कालीन कश्मीर में प्रचलित ज्ञान-विज्ञानों का बराबर अध्ययन करते रहे। उन्हें गणित, ज्योतिष, वैद्यक, शल्यशास्त्र, राजनीति, कामशास्त्र, बौद्ध धर्म और दर्शन तथा मंत्रशास्त्र का ज्ञान था। इतना ही नहीं तत्कालीन आर्थिक व्यवस्था और व्यापार से भी वे पूरी तरह परिचित थे। शब्दों पर उनका इतना अधिकार था कि उनकी मदद से वे मनचाहे चित्र और भाव खड़े कर सकते थे। बहुत से ऐसे शब्दों के उन्होंने प्रयोग किये हैं जो उनके समय में तो प्रचलित रहे होंगे पर जिनका अब समझना मुश्किल है। क्षेमेन्द्र ने उपमाओं और दूसरे अलंकारों का प्रयोग समयानुकूल ही किया है। उनकी उपमाएं बहुत से व्यापारों तथा दैनिक जीवन की छोटी घटनाओं से, जो उनके आंखों के सामने घट रही थीं, ली गयी हैं। क्षेमेन्द्र का व्यंग बड़ा ही तीखा होता था। कभी-कभी तो उनकी ओजस्विनी भाषा सीमा लाँघ कर अश्लीलता के क्षेत्र में जा घुसती हैं। पर यह उनकी यौनवृत्ति की नहीं बल्कि तत्कालीन पाखंडों और बदमाशियों के प्रति उनकी घोर अश्रद्धा की द्योतक है। दर्प-दलन में उन्होंने मनुष्य की दुर्वासनाओं की खबर ली है। कला-विलास, देशोपदेश, नर्ममाला तथा समय-मातृका में तो उन्होंने समाज की सभी बुराइयों का नंगा चित्र उपस्थित कर दिया है। धार्मिक छलकपट, राज कर्मचारियों के अत्याचार, वैशिक समाज, अंधविश्वास की रूढ़ियां, यौनाचार, व्यापारियों की कतरब्योंत इत्यादि भारतीय जीवन का कोई ऐसा अंग नहीं जो उनकी आँखों से छिप सका हो। इन ग्रंथों के प्रणयन से क्षेमेन्द्र का उद्देश्य भारतीय जनता को अनागत भय की ओर सूचना देकर उसे सचेत करना था, पर उसका विशेष फल नहीं हुआ।

लगता है क्षेमेन्द्र एक बड़े यात्री थे। उनके साहित्य से पता चलता है कि उत्तरी भारत के अनेक खंडों की उन्होंने यात्रा की थी तथा विदेशी यात्रियों द्वारा उन्हें काबुली, तुर्क, चीनी इत्यादि लोगों के रीति-रिवाजों का पता चला था। कश्मीर के भूगोल से तो उनका पूरा परिचय था ही, साथ ही साथ गौड़ों और वाराणसी के निवासियों के साथ भी उनका संपर्क था। वाराणसी मध्यकालीन भारत की रोम थी और कश्मीर के पंडित वहां आते जाते रहे होंगे, इसमें संदेह नहीं। जयापीड के मंत्री दामोदर गुप्त ने कुट्टनीमतम् की चरित्रस्थली वाराणसी ही मानी है। मध्यकाल में सुदूर कश्मीर और वाराणसी के संबंध दृढ़ होने का कारण मुस्लिम धावों से त्रस्त हिन्दू धर्म और विश्वासों का उन स्थानों में संरक्षण भी हो सकता है। अलबीरूनी का कहना है कि महमूद गजनवी के धावों के बाद हिन्दू धूल के कणों की तरह चारों ओर बिखर गये और लोगों के मुंह में उनकी याद किसी प्राचीन कहानी की तरह रह गयी। हिन्दुओं के बचे हुए भागों में मुसलमानों के प्रति विद्वेष की आग भड़क उठी और यही कारण

था कि भारतीय ज्ञान-विज्ञान मुस्लिम विजित प्रदेशों से हट उन प्रदेशों में, जैसे कश्मीर, बनारस इत्यादि में पहुँच गये जहाँ मुसलमान नहीं पहुंच सके। इन प्रदेशों में राज-नीतिक और सामाजिक क्षेत्रों से विदेशियों के प्रति विद्वेष की भावना को प्रोत्साहन मिलता रहा।[६]

मध्ययुग में वाराणसी चाहे मुसलमानों के प्रतिरोध का केन्द्र भले ही बन गयी हो पर इसमें भी सन्देह नहीं कि हिन्दूधर्म और समाज की कमजोरियों का वह अड्डा भी बन गयी थी। क्षेमेन्द्र ने हिन्दू धर्म और समाज की जिन बुराइयों की निंदा की है उन्हीं बुराइयों का कृष्ण मिश्र ने प्रबोध चन्द्रोदय[७] में खुलकर विरोध किया है। प्रबोधचन्द्रोदय और क्षेमेन्द्र रचित ग्रन्थों का तुलनात्मक अध्ययन करने से दो बातों का पता चलता है—पहिली बात तो यह है दोनों ने ही धार्मिक दुराचारों का भंडाफोड़ करते हुए उनसे सावधान रहने को कहा है। दूसरी बात यह है कि कृष्ण मिश्र ने उन दुराचारों से बचने का एकमात्र उपाय विष्णु भक्ति माना है। क्षेमेन्द्र द्वारा, जो जन्मना शैव थे, वैष्णव धर्म स्वीकार किया जाना भी ११वीं सदी में वैष्णव धर्म की श्रेष्ठता की ओर इशारा है।

प्रबोधचन्द्रोदय की चरित्रभूमि वाराणसी है। दूसरे अंक में महामोह ने दंभ को सूचना दी कि तीर्थों में लोगों को सुधारने के लिए विवेक ने शम दम इत्यादि को भेजा था। उसके इस प्रचार को रोकने के लिए दंभ को मुक्तिक्षेत्र वाराणसी जाना आवश्यक था। वहाँ पहुँच कर दंभ ने चतुराश्रमों के कर्तव्यों में गड़बड़ी मचा दी। वहां दिवाधूर्त सर्वज्ञ, दीक्षित, अग्निहोत्री, ब्रह्मज्ञ और तापस होने के बहाने से वेश्याओं के घरों में उनकी आसव के गंध से भरे मुखों का तथा चांदनी भरी रात में कामोत्सव का मजा उठाकर लोगों को ठगते थे। दंभ ने वहाँ अभिमान से जलते हुए, वाग्जाल से मानों भर्त्सना करते हुए, अपनी प्रज्ञा से मानों हँसी उड़ाते हुए एक जन को देखा। उसे देखते ही दंभ ने अनुमान किया कि दक्षिण राढ़ से आया हुआ वह अहंकार था। यहां बंगाल के पंडितों पर स्पष्ट रूप से छींटाकशी है। उसने आते ही ललकारा—न तो लोगों ने प्रभाकर पढ़ा, न कौमारिल दर्शन का अभ्यास किया, न तो प्रभाकर के शिष्य शालिक के तत्वज्ञान की चर्चा ही की। वाचस्पति की तो बात ही क्या। महो-दधि के सूक्त-ज्ञान से उन्हें मतलब नहीं, न उन्हें महाव्रत से ही सरोकार है। ऐसे नर-

---

६. सचाउ : अलबीरूनी, भाग १, पृ० २२।

७. कृष्ण मिश्र : प्रबोधचन्द्रोदय, सांबशिव शास्त्री द्वारा संपादित, त्रिवेंद्रम, १९३६।

पशुओं के आधार पर सूक्ष्म विचार धारणा कैसे खड़ी रह सकती है। अहंकार ऐसे लोगों को वेद-विदूषक कहता है। ये केवल भिक्षा मात्र के लिए सिर मुंड़ाते हैं तथा पंडिताई के अभिमान से वेदांत छाँटते हैं। उनकी बात सुनने में भी पाप है। बिना न्याय ज्ञान के शैव पाशुपत पूरे पशु हैं, उन्हें देखने में भी पाप है। ये त्रिदंड पर ही जीवित द्वैत और अद्वैत मार्ग से परिभ्रष्ट हैं। गंगातीर शीतला शिला पर गद्दी पर बैठे कुशमंडित महादंड-करंड वाले माला के मनके गिनने वाले ये केवल धनियों को लूटते हैं (प्र० च० २।५)।

अहंकार द्वारा आश्रम वर्णन में, क्षेमेन्द्र द्वारा कला-विलास में वर्णित दंभ के रूप का खासा दर्शन हो जाता है। आश्रम के द्वार पर बांसों पर कपड़े सूख रहे थे, कृष्णाजिन बिछे हुए थे, खलों में समिधा कूटी जा रही थी तथा यज्ञधूम से आकाश भरा था। यहाँ अग्निहोत्री का दर्शन होता है। गंगा की मिट्टी के तिलक उसके ललाट, भुज, उदर-कंठ, ओष्ठ, चिबुक, उरू और जानु पर लगे थे तथा चूड़ाग्र, कान, कटि और हाथ में दर्भांकुर था (प्र० च० २।६)। अहंकार के अभ्यर्थना करने पर उसने केवल एक हुंकार भरी, साथ ही साथ एक आश्रम बटुक ने उससे पैर धोकर आश्रम में घुसने को कहा। इस पर अहंकार ने नाराज होकर कहा—क्या मैं तुर्क देश में हूँ जहाँ गृहस्थ अतिथियों का आसन पाद्य इत्यादि से स्वागत नहीं करते। दंभ ने यह सुन बटुक को इशारा किया और वह बोल उठा—आराध्यपाद कहते हैं कि दूर देश से आये आर्य के कुल शील का हमें पता नहीं। अहंकार ने जवाब दिया—वाह, क्या हमारे कुल शीलादि की परीक्षा चाहिए। सुन, गौड़ राष्ट्र में निरुपम राटापुरी है। वहीं भूरि श्रेष्ठिक नामक मेरे पिता बसते हैं। उनके महाकुलीन पुत्रों को सब जानते हैं, पर अपनी प्रज्ञा, शील, विवेक, धैर्य और विनयाचार से मैं उनमें सबसे उत्तम हूं (प्र० चं० २।७)।

दंभ ने फिर बटुक की ओर देखा और उसने ताँबे के घड़े से अहंकार के पैर धुलाने का आग्रह किया और उसे वैसा ही करना पड़ा। फिर दाँत भींच कर दंभ ने बटुक की ओर देखा और उसने अहंकार को इसलिये दूर खड़े रहने को कहा क्योंकि उसके पसीने की बूंदें हवा के झोंकों से फैल रही थीं। अहंकार ने आनाकानी की पर बटुक ने फटकार बतलायी और अहंकार समझ गया कि दंभ के सामने उसकी चलने की नहीं थी। जब उसने आसन पर बैठने की इच्छा प्रकट की तो बटुक ने यह कह उसे रोक दिया कि पूज-नीय दंभ के सामने दूसरा बैठने का अधिकारी नहीं था। इस पर अहंकार अपने कुलीन होने की बात कहकर गरज उठा। यह देख कर दंभ ने अपना मौन तोड़ते हुए कहा—यह ठीक है पर आपको मेरी बात का पता नहीं। एक दिन मैं ब्रह्मा के यहाँ पहुँचा। सभा में सारे ऋषि अपने आसन छोड़कर खड़े हो गये। ब्रह्मा ने तब मेरी खुशामद करके

अपनी गोद को गोबर से लीप-पोत कर मुझे उसमें बैठाया (प्र० चं० २।१०)। कला विलास के प्रथम सर्ग में दंभ द्वारा ब्रह्मा की भी पवित्रता का ढोंग दिखलाने की कथा कुछ ऐसी ही है। यह सुन कर अहंकार ने कहा—अरे इन्द्र और ब्रह्मा की बात मत कर, उनकी चाल सब जानते हैं। मेरे तपोबल से सैकड़ों इन्द्र हाजिर हो सकते हैं और सैकड़ों ब्रह्मा और मुनि मंडरा सकते हैं। अब एक ने दूसरे को पहचाना। अहंकार के यह पूछने पर कि मोह द्वारा वाराणसी घेरने का क्या कारण था, दंभ ने कहा—विद्या और प्रबोध की जन्मभूमि ब्रह्मपुरी वाराणसी उसके कुल का नाश करना चाहती हैं। उसी की रोकथाम के लिए मैं उसे लूटपाट कर खतम कर देना चाहता हूँ (प्र० चं० २।१२)।

इसके बाद महामोह का प्रवेश होता है और वह आते ही लोगों की बेवकूफी पर हँसता है। देह से अतिरिक्त आत्मा की स्थिति, मृत्यु के बाद कर्मयोग, जो नहीं है उसकी कल्पना, नास्तिकों की हँसी, इत्यादि सब बातें उसमें आ जाती हैं। इसके बाद वह लोकायत धर्म की तारीफ करता है जिसमें प्रत्यक्ष ही प्रमाण है, अर्थ और काम ही पुरुषार्थ है, परलोक नहीं है इत्यादि। इतने में चार्वाक का एक शिष्य के साथ प्रवेश होता है और वह वेद, स्वर्ग, यज्ञ और श्राद्ध का खंडन करता है। शिष्य के यह पूछने पर, अगर खाने-पीने में ही पुरुषार्थ है तो तीर्थिक क्यों संसार-सुखों को त्याग कर मासोपवास, सप्ताह का उपवास, तीन दिन के उपवास के बाद रात्रि भोजन से अपने शरीर को कष्ट देते हैं, चार्वाक ने कहा कि यह धूर्तों द्वारा प्रणीत आगमों का फल था। शिष्य के यह पूछने पर कि तीर्थिक दुःख मिश्रित सांसारिक सुखों को क्यों त्याज्य मानते हैं, चार्वाक ने उत्तर दिया कि विषय-सुख जन्मजात होता है। उसे दुःख मिश्रित मानकर छोड़ना मूर्खता है। इसके बाद चार्वाक और महामोह की भेंट होती है। बात-चीत में चार्वाक ने कहा कि विष्णु भक्ति नाम की महायोगिनी ने कलि द्वारा रोक ली जाने पर भी उनके काम में अड़चन डाल दी थी। महामोह ने फौरन काम, क्रोध, लोभ, मद, मात्सर्य इत्यादि को विष्णु भक्ति से मोर्चा लेने की आज्ञा दी। यह समाचार पाकर कि शांति धर्म को फुसला रही थी, महामोह ने उसे और उसके साथियों को रोकने के लिए काम की सहायता चाही।

प्रबोधचन्द्रोदय के तीसरे अंक में अनेक ऐसे पात्र आये हैं जिनका उल्लेख क्षेमेन्द्र ने भी किया है। अपनी माता से विलग शांति को सांत्वना देती हुई करुणा को एक दिगंबर भिक्षु दीख पड़ा। उसका शरीर मलपूर्ण था, केश लुंचित थे तथा मोर पंख की पिच्छिका उसके हाथ में थी। दिगंबर भिक्षु आकाश भाषित से अपने मध्य-कालीन विकृत सिद्धान्त का प्रतिपादन करता है—श्रावकों, सारे जल से भी मलमय पुद्गल पिंड कैसे शुद्ध हो सकता है। विमल स्वभाव आत्मा को जानने का साधन केवल

ऋषि-परिचारण है। भिक्षु को देखते ही उसे नमस्कार करके सत्कार करना चाहिए और मीठा भोजन कराना चाहिए। ऋषियों द्वारा स्त्री-गमन देख कर भी ईर्ष्या न करना चाहिए (प्र० चं० ३।५-६)। अपने अनुरूप श्रद्धा का आवाहन करके उसने हिदायत की— देख, श्रावकों को एक क्षण भी मत छोड़ना।

शांति और करुणा सौगतालय में श्रद्धा की खोज में गयीं। वहां पुस्तक हाथ में लिए भिक्षुक रूप बौद्धागम का प्रवेश होता है और वह विज्ञानवाद की मोटी-मोटी बातें यथा सर्व क्षणिक, सर्व दुःख, सर्व विलक्षण और सर्व शून्य की बात कहता है (प्र० चं० ३।८) तथा बौद्ध धर्म को सुख और मोक्ष का कारण मानता है। मनोहर लेणों में आवास, अभिप्राय के अनुकूल बनियों की स्त्रियां, ठीक समय पर बढ़िया भोजन, गद्दीदार पत्थर की सेज, श्रद्धापूर्वक उपासिका युवतियों द्वारा अंगदान तथा चाँदनी रात में मौज, ये बातें बौद्ध भिक्षुओं को उपलब्ध हैं (प्र० चं० ३।९)। बौद्ध भिक्षु ने पुस्तक पढ़ते हुए उपासकों को उपदेश दिया—उपासको और भिक्षुओ, बुद्ध का वाक्यामृत सुनो। मैं दिव्यचक्षु से मनुष्यों की सुगति दुर्गति देखता हूँ, सब संस्कार क्षणिक हैं। आत्मा का अस्तित्व नहीं है, इसलिए स्त्रियों से संबंध रखने वाले भिक्षुओं से ईर्ष्या नहीं करना चाहिए। ईर्ष्या चित्त का मल है। उसके आवाहन पर तामसी श्रद्धा उपस्थित हो गयी तथा भिक्षुओं और उपासकों को भेंटा। इसके बाद बौद्ध भिक्षु तथा दिगंबर में बहस छिड़ गयी जिससे तत्कालीन शास्त्रार्थ पद्धति पर प्रकाश पड़ता है। दिगंबर ने पूछा—क्षणिकवादी होने पर भी तू व्रत क्यों करता है। उत्तर मिलने पर कि मोक्ष के लिए, दिगंबर ने कहा—अरे निर्लज्ज, मोक्ष तो किसी मन्वंतर में मिलेगा, फिर इस क्षण के नष्ट होने से क्या फायदा। तुझे इस धर्म का किसने उपदेश दिया, उत्तर मिलने पर कि बुद्ध ने, दिगंबर बोल उठा—अगर केवल आगम प्रमाण से ही बुद्ध सर्वज्ञ हैं तो मैं भी सब जानता हूं। तेरे सात पुरखे मेरे दास थे। भिक्षु के नाराज होने पर उसने कहा—मैंने तो दृष्टांत कहा। अब तू बुद्धानुशासन छोड़ कर दिगंबर बन जा।

बौद्ध भिक्षु और दिगंबर के इस बहस-मुबाहिसे के बीच, वहां श्मशानवासी नरास्थि की माला पहने, नर कपाल में भोजन करने वाला तथा योगांजन से सब कुछ देखने वाला कापालिक (प्र० चं० ३।१२) आ उपस्थित हुआ। दिगंबर के यह पूछने पर कि मोक्ष का साधन क्या था, उसने कहा—नरमांस से होम, ब्रह्म कपाल से सुरापान तथा गले की नस काट कर बहते हुए रक्त से महाभैरव की पूजा (प्र० चं० ३।१३)। यह सुनकर भिक्षु और दिगंबर घबराये। दिगंबर के यह कहने पर कि कापालिक धर्म पाप था, कापालिक ने क्रोध से जलते हुए कहा—मैं बड़े-बड़े देवताओं को बुला सकता हूँ, नक्षत्रों की गति रोक सकता हूँ तथा संसार का सारा जल सोख सकता हूँ। उसकी शेखी को

दिगंबर द्वारा इन्द्रजाल कहे जाने पर कापालिक ने तलवार खींच ली। बेचारा दिगंबर अहिंसा की दुहाई देने लगा और भिक्षु ने भी उसे मजाक की बात कह कर टाला। कापालिक का क्रोध शांत होने पर दिगंबर ने उससे मोक्ष की कल्पना के बारे में पूछा। जवाब मिला—बिना विषय भोग के सुख नहीं, जीवन की स्थिति ही मुक्ति है। बात बढ़ती देख कापालिक ने नरास्थि मंडित श्रद्धा का आवाहन किया तथा उसके आलिंगन से बौद्ध भिक्षु और दिगंबर सोम सिद्धांत और महाभैरव के अनुयायी बन गये। इसके बाद श्रद्धा ने सुरापात्र कापालिक को दिया और उसने जूठी शराब दिगंबर और भिक्षु को दे दी। पहले वे दोनों शंकित हुए, इस पर कापालिक ने जूठी शराब कपाल-वनिता को पिला कर और यह कह कर कि स्त्री मुखस्तु सदा शुचि, वही शराब उन दोनों को पिला दी और वे सुख की महिमा गाने लगे तथा कापालिक और कापालिनी को नाचते देख नाचने लगे। दिगंबर कापालिक को कापालिक, आचार्यराज, कुलाचार्य कह कर संबोधन करने लगा। बाद में सब हालचाल सुनकर कापालिक ने धर्म और श्रद्धा को पकड़ने के लिए महाभैरवी का आवाहन किया।

चौथे और पांचवें अंकों में विष्णु भक्ति और उसके साथियों द्वारा महामोह की सेना के परास्त होने का वर्णन आता है। बौद्ध सिंधु, गंधार, पारसीक, मगध, अंग, बंग, कलिंग में भागे तथा पाषंड दिगंबर और कापालिक पांचाल, मालव, अभीर, आनर्त और सागरानूप जैसे असंस्कृत प्रदेशों में घुस गये।

कृष्ण मिश्र ने ग्यारहवीं सदी के मध्य में उत्तर भारत की जैसी अवस्था देखी थी, वैसी ही उन्होंने वाराणसी को केन्द्र-बिन्दु मानकर उसका वर्णन कर दिया। क्षेमेन्द्र काशी गये थे अथवा नहीं, इस पर तो प्रकाश नहीं पड़ता पर कलाविलास की कथा का क्षेत्र उन्होंने वाराणसी के पड़ोसी पाटलिपुत्र को माना है। जिन ठगहारियों, पाखंडों और धार्मिक आचारों का वर्णन उन्होंने कलाविलास में किया है उनसे प्रबोधचन्द्रोदय में वर्णित धार्मिक अवस्था का इतना मेल खाता है कि यह मानने में कोई आपत्ति न होनी चाहिए कि क्षेमेन्द्र को उत्तर भारत की धार्मिक और सामाजिक गतिविधियों का पूरा ज्ञान था। इतना ही नहीं देश और विदेश के लोगों के चारित्रिक अवगुणों से भी वे परिचित थे। कलाविलास में एक ऐसा ही प्रकरण आया है। दंभ की हँसी उड़ाते हुए कहा गया है कि ब्रह्मा का मानसपुत्र दंभ स्वर्ग से मृत्युलोक में आकर चारों ओर विचरने लगा और अंत में उसने गौड़ में अपनी विजय पताका फहरा दी। वाह्लीकों के वचन में, प्राच्य और दाक्षिणात्यों के व्रत-नियम में, कीर (कांगड़ा) के अधिकार में तथा गौड़ों की सब बातों में वह घुस गया (कलाविलास १।८६-८७)। वाराणसी के बारे में सीधे दो उल्लेख हैं। बूढ़ी वेश्या कहती हैं—मैं तो वाराणसी चली जाती पर उसमें एक बड़ी

तकलीफ है। वहां बिना प्याज के मैं जिऊंगी कैसे (देशोपदेश, ३।४५)। एक जगह मृत कायस्थ शिव से कहता है—स्नान, जप, व्रत में निरत तीर्थ हवन करते हुए सब शास्त्रों का अध्ययन करके भागीरथी में अपना शरीर छोड़ कर मैं आपके पद को प्राप्त हो गया। इस लोक में काशी में शास्त्रों के अध्ययन व्रत इत्यादि तथा अंत में भागीरथी में डूब कर प्राण देने की प्रथा का उल्लेख है (कला विलास, ५।४७)। एक जगह उन धूर्तों का उल्लेख है जो पितरों के तारने के बहाने लोगों से पैसे वसूल कर केवल घूमने फिरने के लिए काशी और गया की यात्रा करते थे (कलाविलास, ९।६६)।

क्षेमेन्द्र के विस्तृत भौगोलिक ज्ञान का परिचय समयमातृका से मिलता है। काव्य की चरित्रस्थली प्रवरपुर अथवा आधुनिक श्रीनगर है।[८] इसे प्रवरसेन ने बसाया था। इसके विलासपूर्ण जीवन का उल्लेख है (स० मा० १।४)। कंकाली नाम की कुटनी के साहसिक जीवन वृत्त में कश्मीर तथा देश के और दूसरे भागों के नाम आये हैं। वह परिहासपुर[९] में, जिसकी पहचान वितस्ता के बाएं किनारे पर स्थित परस्पोर उदर से की जाती है, रहने वाली एक भटियारिन थी (स० मा० २।३)। जवान होने पर वह शंकरपुर (स० मा० २।१३), जिसकी पहचान श्रीनगर-बारामूला सड़क पर स्थित पटन नामक गांव से की जाती है, पहुंची।[१०] कुछ समय बाद वह प्रतापपुर में (स० मा० २।२१), जिसकी पहचान श्रीनगर-बारामूला सड़क पर स्थित तापर नामक गाँव से की जाती है,[११] एक डामर की रखैल बन गयी। वहाँ से विधवा के वेष में वह सुरेश्वरी (स० भा० २।२९) पहुंची। इसकी पहचान डल झील के किनारे स्थित इशबर नामक ग्राम[१२] से, जहाँ आज दिन भी सुरेश्वरी दुर्गा का मंदिर है, की जाती है। वहीं शतधारा[१३] में, जिसकी पहचान सुरेश्वरी के नीचे एक चश्मे से की जाती है, वह पितृतर्पण करने लगी। अनेक साहसिक कृत्यों के बाद वह विजयेश्वर (स० भा० २।५२), जिसकी पहचान वितस्ता पर स्थित विजब्रोर से की जाती है, पहुंची।[१४] घूमती-घामती वह कृत्याश्रम नामक बौद्ध विहार (स० भा० २।६१) में पहुंची। कृत्याश्रम की पहिचान चीनी यात्री

---

८. स्टाइन : राजतरंगिणी, ३।३३९-३४९, फुटनोट
९. वही, भा० २, परिशिष्ट, नोट एफ
१०. वही, भा० १, ५।१५६
११. वही, ४।१०
१२. वही, ५।४०
१३. वही, भा० २, पृ० ४५५
१४. वही, भा० १, १।३८

ऊ-कोड के की-चे से की जा सकती है। कृत्याश्रम बारामूला के नीचे पाँच मील दूर वितस्ता के बाएँ किनारे पर कित्सहोम नामक स्थल है।[१५] घूमघाम कर अवंतिपुर (स० मा० २।७६) पहुँची। अवंतिवर्मन् (८५५-८८३) द्वारा स्थापित इस नगर की पहचान वुलर परगना में वितस्ता के दाहिने किनारे पर स्थित वांतिपोर से की जाती है।[१६] वहाँ से घूमती हुई वह शूरपुर (स० मा० २।९०) पहुँची। शूरपुर की पहचान रमब्यार की घाटी में स्थित हुरपोर से की जाती है जिसकी स्थिति पीर पंजाल, दुरहल और रूपरी के दर्रों की ओर जाती सड़क पर है।[१७] वहीं वह लवणसरणि नामक सड़क पर मिहनत मजदूरी करने लगी (स० मा० २।९१)। स्टाइन की राय में लवणसरणि से शायद, लवणोत्स का तात्पर्य है जो श्रीनगर से एक दिन की दूरी पर एक ऊँची सड़क पर स्थित है।[१८] पीर पंजाल वाला रास्ता शूरपुर से आरंभ होकर राजपुरी में क्रमशः क्रमवर्त, हस्तिवंज, पंचालधारा, पुष्याण नाड और भैरव ताल को जाता था। यही क्षेमेन्द्र की लवणसरणि है क्योंकि प्राचीन काल में इसी रास्ते से होकर पंजाब और कश्मीर के बीच नमक का व्यापार चलता था।[१९] कंकाली की इस यात्रा में पंचालधारा (स० मा० २।९२) का उल्लेख इस मत की पुष्टि करता है। अपनी इस लंबी भाग-दौड़ में वह केदार, गया और काशी गयी अथवा नहीं यह तो नहीं कहा जा सकता, पर लोगों से बहाना वह यही करती थी (स० मा० २।९७)। जो भी हो, क्षेमेन्द्र का तो कहना है कांबोज, तुरुष्क, चीन, त्रिगर्त (जलंधर), गौड़, अंग, बंग इन सब स्थानों से उसका संबंध था (स० मा० २।१०४)।

क्षेमेन्द्र की कृतियों के अध्ययन के पूर्व कश्मीर के राजनीतिक और सांस्कृतिक वातावरण के संबंध में कुछ जान लेना आवश्यक है। नर्ममाला में क्षेमेन्द्र ने कश्मीर के राजा अनंत (१०२८--६३) के विक्रम, पुरुषार्थ, दुष्ट नियोगियों के दमन इत्यादि की प्रशंसा की है। (नर्ममाला १।३-४)। राजतरंगिणी से पता चलता है कि अनंत एक वीर पुरुष थे और समय-समय पर उन्होंने डामरों का डट कर मुकाबला किया था। उनके जीवन पर उनकी धर्मपरायण रानी सूर्यमती का पूरा प्रभाव था। पर साथ-ही-साथ उनकी अपनी चारित्रिक कमजोरियाँ भी थीं। घोड़ों के प्रति उनका इतना आकर्षण था कि अस्तबल के अधिकारी उसके मित्र बन कर लूटपाट मचाने लगे। डल्लक

---

१५. स्टाइन : राजतरंगिणी, भा० १। १।१४७

१६. वही, ५।४४।

१७. वही, भा० २, पृ० २९१।

१८. वही, भा० ११।३२९।

१९. अर्ली हिस्ट्री एंड कल्ट आफ कश्मीर, पृ० ११३, कलकत्ता, १९५७।

नामक एक विदूषक उसका मुँहलगा बन गया। पद्मराज नामक मैदान का एक बारी, जो कश्मीर में पान मँगवाता था, अनंत की पान के प्रति अनुरक्ति का लाभ उठाकर उसे लूटने लगा। उसी के मार्फत मालवराज भोज ने बहुत-सा सोना भेज कर कपाटेश्वर (अछबल से दो मील आधुनिक कोथेर) में एक जलद्रोणि बनवायी। राजा भोज का प्रण था कि वे नित्य पापसूदन के जल से मुख प्रक्षालन करेंगे। पद्मराज बराबर वहाँ का जल काँच पात्रों में भरकर भोज के पास भेजा करता था (रा० त० ७।१९०-१९३)। राजकार्य के संपादन में उसे मंत्री हलधर से बड़ी सहायता मिली। लोगों के पास जमा सोने की राज्य द्वारा खोजबीन की प्रथा हटा दी गयी, अस्तबल के अधिकारियों को सजा दी गई, देव मंदिर पुनः चमक उठे और ब्राह्मणों को अनेक अग्रहारों का दान दिया गया।

लगता है क्षेमेन्द्र के समय मालवराज भोज की काफी ख्याति थी। एक जगह एक विट नशे में गप्पें मारते हुए कहता है—मैंने भोज की चिकित्सा की (स० मा० ७।४६)। दूसरी जगह बनिये के लड़के को धता बताने के लिए कुटनी कहती है—कलावती के लिए दक्षिण के राजा भोज तक ने दूत भेजे हैं (स० मा० ८।२३)।

क्षेमेन्द्र ने जिन सामाजिक और धार्मिक व्यवस्थाओं का चित्रण किया है, उसी का परिवर्धित रूप कल्हण की राजतरंगिणी में मिलता है। पर जहाँ कल्हण का लक्ष्य कश्मीर के अधीश्वर, उनके चाटुकार मुसाहब और राजकर्मचारी हैं वहाँ क्षेमेन्द्र का लक्ष्य देश का विशाल जनसमूह है। कल्हण के इतिहास की पृष्ठभूमि सामंतशाही है और इसी राजनीतिक व्यवस्था के अनुरूप जनता एक तरफ राजाओं और सामंतों की लड़ाइयों और दूसरी ओर कायस्थ के अत्याचार और जबर्दस्ती वसूलियों के बीच पिस रही थी। यह अवस्था उत्तर मध्यकाल तक ही सीमित नहीं थी। आठवीं सदी में ललितादित्य के समय भी जनता की यही अवस्था थी। उसका आदेश था—बराबर ऐसी कार्रवाई करनी चाहिए कि ग्रामीण जनता के पास उनकी जरूरतों के ऊपर खाने के लिए अन्न और खेत जोतने के लिए बैल न बचें। अगर उनके पास जरूरत से अधिक संपत्ति रही तो संभव है कि वे एक ही वर्ष में घोर डामर बन कर राजाज्ञा का उल्लंघन करने लगें (रा० त० ८।८९६-९७)। जहाँ मुसाहबों के लिए भुने गोश्त और बरफ से ठंडी तथा पुष्पों से सुगंधित शराब (वही ५।४९) उपलब्ध थी, वहीं साधारण जनता को केवल चावल और शाक पर ही गुजारा करना पड़ता था (रा० त० ५।४९)। लगता है बौद्ध धर्म के प्रभाव से आठवीं सदी के कश्मीर में वर्ण-व्यवस्था ढीली पड़ गयी थी। राजतरंगिणी के अनुसार प्राचीन काल में असवर्ण विवाह तथा अछूतों के प्रति उदारता के अनेक उदाहरण हैं। पर यही उदारता बाद में चल कर अछूतों के प्रति गहरी घृणा में परिणत हो गयी।

क्षेमेन्द्र ने अपने ग्रन्थों में जिस जन-जीवन का चित्र खींचा है उसका पूर्वाभास हमें राजतरंगिणी से क्षेमेन्द्र के पूर्व २०० वर्षों से लगने लगता है। ललितापीड़ (७८५-७९७) के विलासमय जीवन में हम क्षेमेन्द्र द्वारा वर्णित वेश्या जीवन की झलक पाते हैं। वह अपना धन वैभव वेश्याओं और नर्तकियों में लुटाता था। वेश्याओं की मदद से उसके मुसाहब जो चाहे करवा लेते थे। वेश्याओं से बातचीत करने वाले ही उसके लिए विद्वान् थे। वेश्याओं के पादांकित कपड़े पहनने के लिए वह मंत्रियों को बाध्य करता था (रा० त० ५।६६०-६७२)। शंकरवर्मन (८८४-९०३) के समय तो चरित्र-हीनता अपनी पराकाष्ठा को पहुँच गयी थी और वह लालच और प्रजोत्पीड़न का प्रतीक बन गया था। चारित्रिक कमजोरियों की वजह से धन की कमी पड़ने पर उसने नये करों से देवमंदिरों को लूटना आरम्भ किया। इस काम के लिए उसने गृह-कृत्य और अत्त पटिभाग नामक दो अफसरों की नियुक्ति की। देवमंदिरों में बिकने वाले सामान, जैसे गुग्गुल, चंदन, तेल इत्यादि पर उसने अधिकार जमा कर तथा राजकर्मचारियों के मार्फत उनके प्रबंध के बहाने मंदिरों की लूट मचा दी। मावजा देकर देवोत्तर ग्रामों को लेकर वह स्वयं उसे जोतने-बोने लगा। तौल की माप एक-तिहाई घटा कर उसने यह बहाना किया कि वह तो पुजारियों को पहले से अधिक देता था। उसने प्रजा को लूटने के लिए बेगार की प्रथा चलायी। तौलों को घटा-बढ़ा कर जबर्दस्ती की वसूलियों से गृह-कृत्य का घर भरने लगा। चारों ओर लूट का बाजार गरम हो गया और नियोगी भले-मानसों का माल और इज्जत लूटने लगे। संस्कृत के कवियों और विद्वानों की कोई कदर नहीं रह गयी। स्वयं शंकरवर्मन देशी भाषा का प्रयोग करने लगा (रा० त० ४।१६५)। चक्रवर्मन (९२४-३५) अपने राज्य को कंटकों से मुक्त करके, धीरे-धीरे उच्छृङ्खल और निर्दयी और खुशामदपसंद बन गया तथा अपने को ईश्वर समझने लगा। ऐसे ही समय राज-दरबार में रंग नामक बाहर से आये हुए डोंब गायक का प्रवेश हुआ। उसके साथ उसकी दो कन्याएँ हँसी और नागलता थीं। राजा की जय-जयकार के बाद गाना प्रारंभ हुआ। चक्रवर्मन का चित्त उन गायिकाओं में लग गया। यह देखकर खुशामदियों ने दाद दी। तब से राजदरबार में डोंबों का प्रभाव बढ़ने लगा। मंत्रिगण अपनी उन्नति के लिए उनकी मदद लेने लगे तथा कुछ डोंब स्वयं राज-कर्मचारी बन बैठे। किसी की हिम्मत नहीं होती थी कि उन्हें अस्पृश्य मान कर उनका साथ न करे (रा० त० ५।३५१)। लगता है क्षेमेन्द्र ने इन्हीं गायकों को ध्यान में रखकर कला-विलास में उनकी हँसी उड़ाई और राजाओं को उनसे सावधान रहने को कहा है।

यशस्कर (९३९-९४८) के समय कश्मीर की राज्य-व्यवस्था में काफी सुधार हुआ। राजकर्मचारी पुनः अपने काम में लग गये और डाकुओं की रोकथाम हुई, व्यापार

में उन्नति हुई तथा सड़कें भयविमुक्त हो गयीं। राजा स्वयं नियोगियों का निरीक्षण करने लगे, जिनसे उनका काम केवल कृषि देखना भर रह गया। ब्राह्मण स्वाध्याय में निरत हो गये और मदिरा तथा मत्स्य पूप से यज्ञ करने वाले मिथ्या गुरुओं ने आर्ष दर्शन और सिद्धान्तों की आलोचना करना छोड़ दिया। गुरु दीक्षा के समय देवी बनना छोड़ कर सन्नारियाँ पातिव्रत धर्म पालन करने लगीं (रा० त० ६।६)। पर मध्यकालीन कश्मीर में चारित्रिक बुराइयाँ इतनी जड़ जमा चुकी थीं कि उनका दूर होना मुश्किल था। क्षेम गुप्त (९५०-९५८) स्वयं बड़ा भारी शराबी, परस्त्रीगामी और क्रूर था। अपना मतलब साधने के लिए मुसाहिबों ने उसके चारित्रिक विकारों को और प्रोत्साहित किया। दिद्दा (९८०-१००३ ई०) के समय में कश्मीर का भारी चारित्रिक पतन हुआ तथा संग्रामराज (१००३-२८ ई०) के समय में कायस्थों का उपद्रव बढ़ गया।

(३)

क्षेमेन्द्र द्वारा सामाजिक और धार्मिक चित्रण की यही पृष्ठभूमि थी। इतिहास लिखने में व्यस्त, कल्हण के पास इतना समय नहीं था कि वह सब बातों पर पूरा प्रकाश डाल सके, पर क्षेमेन्द्र एक सहृदय कवि थे। उन्होंने मध्यकालीन ह्रास का नंगा चित्र देखा और एक निर्भीक सुधारक की तरह तत्कालीन समाज की धज्जियाँ उधेड़ दीं। निरीह प्रजा पर अनगिनत अत्याचार से वे बड़े ही दुखी थे और उनका हृदय प्रतिकार का उपाय न देख कर केवल चिल्ला उठता था—हा प्रजे क्व गमिष्यसि—हाय जनता ! तू कहाँ जायगी ! मध्यकालीन समाज का जीता-जागता चित्र उन्होंने अपने निम्नलिखित ग्रंथों में खींचा है—

कलाविलास

कलाविलास के प्रथम सर्ग के आरंभ में पहले पाटलिपुत्र का आलंकारिक वर्णन आता है। इसके बाद साथियों से घिरे मूलदेव का। हिरण्यगुप्त नाम का एक बनिया अपने पुत्र चन्द्रगुप्त के साथ उससे मिलकर प्रार्थना करता है कि मूलदेव उसके पुत्र को ऐसा उपदेश दे जिससे उसकी ठगों से रक्षा हो सके। इसके बाद सायंकाल का कवित्वमय वर्णन आता है। बनिये के बेटे चन्द्रगुप्त से मूलदेव पहले दंभ के स्वरूप का वर्णन करता है। झूठा स्नान-ध्यान, पूजा-पाठ, छुआछूत, वेशभूषा, साधु, संन्यासी इत्यादि सब की खबर ली गयी है। क्षेमेन्द्र ने दंभ की व्युत्पत्ति के बारे में एक नई कल्पना की है। एक समय मनुष्यों को निराधार देख कर ब्रह्मा ने अपने मानसपुत्र दंभ को जन्म दिया। वह पुस्तकमाला पर कुशपूली रखे हुए, शून्य कमंडलु, कुटिल शृंग, दंड, कृष्णाजिन और

खनित्र लिये हुए, मुंडित शीश को कुश से वेष्टित किये हुए, खड़ी गर्दन, जप करते हुए, हाथ में रुद्राक्ष माला और मिट्टी से भरा पात्र लिये हुये, कोप से हुंकारता हुआ, ब्रह्म लोक में भी शौचाशौच का विचार रखने वाला आ उपस्थित हुआ। उसको देखते ही ऋषियों की सिट्टी-पिट्टी भूल गयी। अपने अल्प तपोबल की लज्जा से वसिष्ठ की पीठ झुक गयी, कौत्स बिलबिला उठे, नारद ने अपने कम तप की लज्जा से घुटनों पर सिर रख लिया और भृगु अनमने हो उठे। स्वयं पितामह ने प्रीतिपूर्वक उसे अपनी गोद में आसन ग्रहण करने को कहा। बड़ी खुशामद के बाद वह ब्रह्मा की गोद में जल छिड़क कर बैठ गया और ब्रह्मा से कहा—बोलिये मत, अगर बोलना ही है तो मुँह ढाँक कर बोलिये। उसके शौच का यह रूप जानकर ब्रह्मा प्रसन्न होकर बोले—जा सारी पृथ्वी का सुख भोग। मृत्यु लोक में पहुँच कर उसने गौड़ देश में अपनी विजय पताका फहरा दी तथा वाह्लीक देशवासियों के वचन में, प्राच्य और दाक्षिणात्यों के व्रत-नियमों में, काँगड़ावासियों के अधिकार में पैठ गया। अधिकरण भट्ट, गुरु, बालक, तपस्वी, नियोगी, दीक्षित, गणक, चिकित्सक, सेवक, बनिया, सोनार, नट, भट, गायक, वाचक और घांटिक किसी को उसने नहीं छोड़ा। यहाँ तक कि जटाधारी वृक्ष तथा बगले ऐसे पक्षियों में भी वह घुस गया।

दूसरे सर्ग में लोभ पर प्रकाश डाला गया है और बनियों की लोभवश बेईमानियों की हँसी उड़ायी गयी है। वे क्रय विक्रय, झूठी तराजू, जमा के ब्याज में बेईमानी करके खूब रकम जमा करते हैं पर घर में तीन कौड़ी खरचते जान निकलती है। कहानी के लिए वह बनिया पुराण सुनता है, दान-धर्म से भागता है, द्वादशी, पितृ दिवस और चन्द्र-सूर्य-ग्रहण को खूब नहाता है पर देता एक कौड़ी नहीं, याचकों को देखते ही मुँह ढाँक कर भागता है। बेचने के समय वह चुप्पी साधता है पर जमा करने वाले को देखते ही उसकी आवभगत करता है। ऐसे ही एक बनिये की सुंदर कथा क्षेमेन्द्र ने दी है। किसी बनिये से एक जमा करने वाले ने कहा—मुझे रकम जमा करके कल परदेश जाना है, पर कलियुग है मैं क्या करूँ। बनिये ने शिकार फँसा देखकर कहा—यह आपका घर है। कठिन देशकाल होने से न्यास-पालन कठिन है। फिर भी मैं आपका सेवक हूँ और यह भद्रा दूषित नहीं है। इसका अनुभव बहुतों को है। इसी दिन एक ने अपनी रकम मेरे यहाँ जमा की थी और उसे वह कुशलपूर्वक वापिस ले गया। इस तरह खुशामदें करके उसने रकम जमा करवा ली और उससे व्यापार करके थोड़े ही दिनों में मालदार हो गया। दैवयोग से जमा करनेवाला अपनी रकम खोकर अपने देश लौटा। बनिया की खबर लेने पर पता चला कि वह तो लखपती बन कर एक बड़े महल में रहता था। वह विचारा फटे कपड़े पहने उसके दरवाजे पर पहुँचा। बनिये ने उसे खिड़की से देख कर आफत आया जान ली। किसी तरह लहनेदार ने एकांत में मिलकर उससे अपनी जमा माँगी। पर

जमा की बात सुनते ही उसने उसे ठग कहकर पहचानने से भी इन्कार कर दिया और जमा के दिन का लेखा दिखलाने का वादा करके कहा कि उसका पुत्र खाता लिखता था। बिचारा लहनेदार बाप-पूत के बीच में काफी दौड़ा। अंत में तंग आकर उसने बनिये पर राजदरबार में दावा कर दिया। पर बनिया पक्का था। अनेक यातनाएँ सहते हुए भी वह दावेदार की रकम जमा करने से इन्कार करता रहा।

लोभ के संबंध में क्षेमेन्द्र की एक दूसरी पौराणिक कल्पना और भी मजेदार है। एक समय शुक्राचार्य ने धनाधिप कुबेर से कहा—मित्र तुम बड़ी संपत्ति के मालिक हो। मेरा बड़ा परिवार है। तुम जैसे मित्र का कर्तव्य है कि मेरी मदद करो। पर कुबेर पूरे बनिये निकले। वे बोले—तुम मेरे बाल-मित्र अवश्य हो पर मैं तुझे एक कौड़ी नहीं दे सकता। मित्र, स्त्री और बंधु तो मिल सकते हैं पर धन मिलना कठिन है। बेचारे शुक्राचार्य को अपनी माँग ठुकराये जाते देख कर बड़ी लज्जा हुई और उन्होंने कुबेर से बदला लेने की ठान ली। बदला भी अजीब था। वे अपनी माया से कुबेर के हृदय में घुस गये और उसकी चित्तवृत्ति बदल कर सारा धन ब्राह्मणों में बाँट देने को बाध्य किया। सब जमा-जत्था गायब हो जाने पर कुबेर को होश आया और अपने मित्रों के साथ वह शुक्राचार्य की दगाबाजी की चर्चा करते हुए अपनी गरीबी पर रोने-कलपने लगा और कोई दूसरा उपाय न देखकर वह शिव की शरण में पहुँचा। बिचारे औढरदानी शिव ने कुबेर की फरियाद सुनकर फौरन शुक्राचार्य को बुलाने के लिए अपना दूत भेजा। उसके आते ही शिव ने उसे डाँटा तथा अपने मित्र के प्रति कृतघ्नता के लिए धिक्कारा और कहा—बात तेरे कुलधर्म और शिक्षा के अनुकूल नहीं है। अपने भृगुवंश के अमल यश को कलंकित मत कर। तू साधु वृत्ति छोड़कर कैसे ठग बन गया। अब कल्याण इसी में है कि तू कुबेर का धन वापस लौटा दे। पर शुक्राचार्य कच्ची गोली खेलने वाले नहीं थे। उन्होंने फौरन शिव को जवाब दिया—आप देवाधिदेव हैं, आपकी आज्ञा कौन टाल सकता है। पर जिसके घर में लोग कष्ट में हों उसे सब कुछ माफ है। मुझे पूरी आशा थी कि कुबेर मेरे गाढ़े में काम आवेंगे। मैंने लज्जा छोड़कर उनसे सहायता माँगी पर उन्होंने कोरा जवाब दे दिया। फिर जिसने मेरी आशा भंग की उसे मैं बिना आग के क्यों न जलाऊँ, बिना विष के क्यों न मारूँ। मैं अब उसे एक कौड़ी नहीं लौटाने का। यह सुनकर शिव की क्रोधाग्नि भड़की और वे फौरन शुक्राचार्य को निगल गये। शिव के पेट की अग्नि में जलते-भुनते शुक्राचार्य रोने-चिल्लाने लगे, पर जब शिव ने कुबेर का धन लौटाने की बात चलायी तो बोले—मर जाऊँगा पर धन लौटाने का नहीं। अंत में भयंकर जलन से तड़पते हुए शुक्राचार्य ने देवी की प्रार्थना की और उनकी कृपा से शिव के शुक्रद्वार से निकल भागे।

तीसरे सर्ग में काम की महिमा गायी गयी है। काम मधुर विष की तरह है। विषयासक्त पुरुषों को स्त्रियाँ मोर की तरह नचाती हैं। मुग्धों का स्त्रियां खून चूस लेती हैं। सब मायाओं का लोग रहस्य जानते हैं पर स्त्री माया का नहीं। स्त्रियों का शरीर कुसुम की तरह कोमल होता है पर हृदय वज्र से भी कठोर। अनुरक्तों से वे विरक्त और विरक्तों से अनुरक्त होती हैं। वे बेवकूफ पतियों के मुँह पर धूल झोंकती हैं। वे गधे पतियों से तिलक के लिए चन्द्रबिंब माँगती हैं। तीर्थदर्शन के ब्याज से अपने यार से मिलकर आने पर मूर्ख पति उसका पैर दबाता है। उनकी काम चेष्टाएँ कुछ और आंतरिक चेष्टाएँ कुछ और होती हैं। स्त्रियाँ अपने पति से प्रेम न करके दूसरों को प्यार करती हैं। तरुणों के निरंतर संभोग के कारण वे वेश्याओं को धन्य मानती हैं। चपल नारी गलियों में झाँकती हैं, गाती हैं, दौड़ती हैं और अकारण हँसती हैं। वह अपने पति को निकम्मा कहकर स्वयं उसका काम करती हैं। इसके बाद क्षेमेन्द्र ने कुलटा नारियों के लक्षण गिनाये हैं। वे अनुरक्त के दोष ढूँढ़ती हैं। शृंगार, शौर्य, दान इत्यादि की कथा से वे प्रसन्न होती हैं।

इस प्रकार स्त्रियों की निन्दा करके क्षेमेन्द्र एक कथा कहते हैं। प्राचीन काल में धनदत्त नाम का एक बड़ा धनी बनिया था। उसे वसुमती नाम की एक अतीव सुरूपा कन्या हुई। उसने अपनी उस एकमात्र कन्या का समुद्रदत्त नामक एक बनिये के बेटे से विवाह कर दिया। कुछ दिन सुखपूर्वक अपनी पत्नी के साथ बिता कर वह सार्थ के साथ द्वीपांतर व्यापार के लिए चला गया। एक दिन वसुमती ने अपने महल की छत पर से एक युवक को देखा और उसे देखते ही उस पर मुग्ध हो गयी और उसकी सखी ने उसकी भेंट करा दी। इसी बीच अपना कार्य समाप्त करके समुद्रदत्त अपने ससुर के घर लौट आया। पर दूसरे के प्रेम में फँसी उसकी पत्नी ने शैय्या में भी उसका स्वागत नहीं किया। पति के सोते ही वह सजधज कर उपवन में अपने जार से मिलने चली। उसी समय एक चोर उसे ऐसा करते देख कर उसे लूटने के लिए उसके पीछे हो लिया। बाग में पहुँच कर उसने देखा कि उसका मिलन-वियोग न सह सकने के कारण उसके जार ने पेड़ में फाँसी लगाकर जान दे दी थी। यह देखकर विलाप करती हुई उसने अपने जार का शव अपनी गोद में रखकर उसका मुख चूम लिया। पर शव वेतालाक्रुष्ट था और उसने वसुमती की नाक दाँत से काट ली। ऐसा होते ही वसुमती रोती-कलपती घर पहुँची और नाक काटने का दोष अपने पति पर मढ़ दिया। सबेरे वसुमती के बंधुओं ने राजा के यहाँ फरियाद करके समुद्रदत्त को दंड दिया पर चोर ने राजसभा में हाजिर होकर रात की बात बतलायी और उपवन में वसुमती के जार का शव और उसकी कटी नाक राज-कर्मचारियों को दिखलायी और इस तरह समुद्रदत्त को छुटकारा मिला।

चतुर्थ सर्ग में वेश्याओं और उनकी कुटिल कलाओं का वर्णन है। वेश्याएँ अपने कूट राग से लोगों को लूट कर भिखारी बना देती हैं। उनकी कलाओं की तालिका में वेश-भूषा, नाज-नखरे, ठगी, नाच-गाना सभी आ जाते हैं। वेश्या के लिए सब समान हैं। इस संबंध में क्षेमेन्द्र एक कथा कहते हैं। एक समय राजा विक्रमसिंह अपने शत्रुओं से हार कर मंत्रियों के साथ विदर्भ पहुँचे। वहाँ उनकी संसार प्रसिद्ध विलासवती नाम की वेश्या से भेंट हुई और उसने अपना सर्वस्व उन्हें सौंप दिया। इस घटना से प्रभावित होकर विक्रमसिंह ने अपने मंत्री से विलासवती की तारीफ की, पर मंत्री ने वेश्याओं के दुर्गुण गिनाते हुए उनकी निंदा ही की। मंत्री की बात सुनकर राजा ने विलासवती की परीक्षा लेनी चाही। मृत्यु का बहाना करके राजा लेट गये और मंत्री को आदेश दिया कि उनका शव चिता पर रख दें। ऐसा ही किया गया। यह देखते ही विलासवती ने चिता में कूदने की ठान ली। राजा ने उठ कर उसे रोका तथा उसकी प्रशंसा करके मंत्री की निंदा की। विलासवती की सहायता से राजा ने एक सेना सजायी और अपना राज पुनः जीत लिया। एक दिन उसने राजा से एकांत में प्रार्थना की। उसकी उससे एक ही प्रार्थना थी कि वह विदर्भ के कारागार में चोरी के लिए बंद उसके युवा प्रणयी को छुड़वा दे। यह सुनते ही राजा को अपने मंत्री की बात याद पड़ गयी। पर उन्होंने विलासवती के प्रेमी को मुक्ति दिलवा दी।

पंचम सर्ग में कायस्थों की करतूतों का वर्णन है। मोह कायस्थों के मुख और लेख में बसता है। वे क्षण भर में सस्य-संपत्ति लूट लेते हैं। उनकी कलाओं का कोई पार नहीं पा सकता। ये काल-पुरुष मोटे दंडों से लोगों को मार गिराते हैं। गिनती में वे दक्ष होते हैं। राजश्री उनके कारनामों से रोती है। विषम अंकन्यासों से वे लोगों को लूटते हैं। उनकी लिपि कुटिल होती है। इसके बाद कायस्थों की १६ कलाएँ गिनायी गयी हैं। वे क्षणभर में लोगों की रोजी मार देते हैं। कायस्थों की कुटिलता के बारे में क्षेमेन्द्र ने एक बड़ी मजेदार कथा गढ़ी है। एक समय एक जुआड़ी सब-कुछ हार कर घूमते-घामते उज्जयिनी पहुँचा और वहाँ भक्तिपूर्वक महाकाल की पूजा-अर्चना की। उसकी भक्ति से प्रसन्न होकर शिव ने जैसे ही उसे वरदान देना चाहा, उनके सिर पर लदे एक कपाल ने उन्हें ऐसा करने से रोक दिया। शिव के यह पूछने पर कि उसने ऐसा क्यों किया, उसने बताया—दुखी रहने पर वह जुआरी आपकी पूजा करता है पर धन मिलने पर वह चल देगा। फिर जंगल में आपकी पूजा करने वाला कौन है। शिव के पूछने पर कि तुम कौन हो, कपाल ने कहा—मैं मगध में कायस्थ कुल में पैदा होकर भी स्नान, जप-व्रत और तीर्थयात्रा के फलस्वरूप भागीरथी (काशी) में शरीर त्याग कर आपके पद को प्राप्त हुआ। शिव ने कहा—तू सचमुच कायस्थ है जो कपालमात्र शेष रहने पर

अपनी कुटिलता नहीं छोड़ता। यह कर उन्होंने उस जुआड़ी को वर दिया और कायस्थ की खोपड़ी को अपने सिर से अलग कर दूर फेंक दिया।

छठे सर्ग में मद का विस्तृत वर्णन है। मद को रूपमद, शौर्यमद, शृंगारमद, कुलोन्नतिमद, काममद, वित्तमद, श्रुतमद, अधिकारमद, शौचमद, वरमद में बाँटा गया है। मद्य मद, जिससे अपने-पराये का, सद्-असद् का, कंकड़ और सोने का भेद नहीं रह जाता, सबसे ऊँचा है। शराबी पी-पाकर वीतराग बन जाता है। इस संबंध में क्षेमेन्द्र ने एक पौराणिक कथा गढ़ ली है। प्राचीन काल में अश्विनीकुमारों की कृपा से च्यवन ऋषि ने यौवन प्राप्त करके उनकी कृतज्ञता प्रकाश करने के लिए उन्हें यज्ञ में सोमपान के लिए आहूत किया। यज्ञ में वैद्यों के आवाहन से इन्द्र बहुत खफा हुए और च्यवन को ऐसा करने से मना किया। पर च्यवन अपनी बात पर डटे रहे। इस पर क्रोध में आकर च्यवन को मारने के लिए इन्द्र ने वज्र छोड़ा। उधर ऋषि ने इन्द्र को मारने के लिए एक महाअसुर पैदा किया। बिचारे इन्द्र घबराकर च्यवन की शरण में आये और सोम ने अश्विनीकुमारों को भी ऐसा ही करने को कहा। मामला यों तै पाया कि च्यवन ने इन्द्र को क्षमा करके मद को स्त्री शराबखोरी और शिकार में छोड़ दिया। वह श्रीमानों के मौन में, नये रईसों की एकटक आँखों में, धनिकों के भ्रूभंग में, विटों के भौंहों में, दूतों और विद्वानों की जीभ में, रूपवानों के दशन-बसन और केश में, वैद्यों के ओठों में, नियोगियों और गणकों की गर्दन में, सुभटों के कंधों में, बनियों के हृदय में, शिल्पियों के हाथों में, छात्रों के स्याही-कागज में, तरुणियों के स्तनों में, श्राद्धभोगियों के पेट में, डाकियों की जाँघों में घुस गया।

सातवें सर्ग में क्षेमेन्द्र ने गवैयों की हसी उड़ायी है। वे अपने चिकने गले से लोगों को ठगते हैं। उनके बहुत-से बच्चे होते हैं। वे हाहा करके स्वयं अपना साधुवाद करके दिन-दहाड़े लोगों को लूटते हैं। उन्हें पैसे देने से कोई फल नहीं। वे जुए में हार कर नंगे बने फिरते हैं। लोगों की खुशामद कर वे लोगों का सब-कुछ लूट लेते हैं और अच्छी दक्षिणा मिलने पर भी लोगों को गाली देते हैं।

गायकों को लेकर क्षेमेन्द्र ने एक सुंदर कथा गढ़ी है। एक समय इन्द्र ने बहुत दिन बाद नारद से मुलाकात होने पर उनसे मृत्युलोक का हालचाल पूछा। नारद ने वहाँ के दान यज्ञादिक की चर्चा करके पृथ्वी की प्रशंसा के पुल बाँध दिये। इंद्र यह सुनकर कुढ़ गये और पृथ्वी की धनसंपत्ति लूटने के लिए वहाँ पिशाचों को गीत-मंत्रों से अभिषिक्त करके वहाँ भेजा। अब क्या था। मायादास, डम्बरदास, बज्रदास, क्षपदास, लुंठदास, खरहरदास, प्रसिद्धदास और वाड़वदास गवैये मृत्युलोक में पहुँचे और अपने विकट गानों से लोगों का यज्ञादिक रुकवा दिया। इसलिए गायकों को राष्ट्र में न घुसने देना चाहिए।

नट, नर्तक, घांटिक और विट से सबको बचना चाहिए। उनका गाना मानों लक्ष्मी का रोना है।

आठवें सर्ग में सोनारों की कलाओं का विस्तृत वर्णन है और इस संबंध में क्षेमेन्द्र ने उनके सोने पर कस लेने, बटखरों में कमी-बेशी, घरिया, तुला, फूत्कार, अग्निपाक इत्यादि का विशद वर्णन किया है। सोनारों को लेकर क्षेमेन्द्र ने जो कहानी गढ़ी है वह और भी मजेदार है। एक समय चूहों ने सोने की बनी मेरु की चोटी चाल डाली जिससे उसकी जड़ कमजोर पड़ गयी और उसके गिरने के भय से देवताओं में सनसनी पड़ गयी और उन्होंने समझा कि प्रलय आ गया। अगस्त्य ने उन्हें बतलाया कि देवासुर संग्राम में जो राक्षस मारे गये वे ही चूहे बन कर देवताओं से बदला ले रहे थे। उनकी सलाह से देवताओं ने चूहों को जला डाला। पर मामला यहीं समाप्त नहीं हुआ। वे ही चूहे पुनः पृथ्वी पर सोनार बन कर अवतीर्ण हुए जो अपनी पुरानी आदत से लोगों का सोना चुराते हैं।

नवम सर्ग में क्षेमेन्द्र ने मध्यकालीन धूर्तों की लंबी तालिका दी है जिसमें वैद्य, ज्योतिषी, रसायनी, सिद्ध, वशीकरणी, सड़कों पर घूमने वाले लंठ गुरु, हाजरात करने वाले, दरसनियाँ, वेश्याएँ, बौद्ध भिक्षुणी, जुआरी, सेवक, बनिये, अधिकरण भट्ट, जालिये इत्यादि सभी वर्ग के लोग आ जाते हैं। इस सर्ग में क्षेमेन्द्र ने मध्यकालीन भारत का जीता-जागता चित्र खींच दिया है और बड़े ही निर्मम भाव से भारतीय चरित्र की कमजोरियों की विवेचना की है।

प्रथम नौ सर्गों में मध्यकालीन भारत की अनेक कमजोरियों का जीता-जागता चित्र खींच कर दसवें सर्ग में उन्होंने चरित्र की श्रेष्ठता पर जोर दिया है। धर्म की कलाओं में भूत दया, परोपकार, क्षमा, अनसूया, सत्य, अलोभ और प्रसाद, अर्थ की कलाओं में सदुत्थान, नियम परिपालन, क्रिया ज्ञान, स्थान त्याग पटुता, अनुद्वेग, स्त्री के प्रति अविश्वास, काम की कलाओं में वेश शोभा, नजाकत, चारुता, गुणोत्कर्ष, लीलाएँ, कांताओं का चित्त, ज्ञान तथा मोक्ष की कलाओं में विवेकरति, प्रशम, तृष्णाक्षय, संतोष, संग त्याग, अपने को छिपाना, दूसरों को बढ़ाना आ जाते हैं। इसके बाद सुख, चरित्र की शुद्धता इत्यादि पर जोर डाला गया है। प्रणति-पालन, गुरु-ब्राह्मण पूजा, प्रियवचन, अद्रोह, वेश्या-राग से विरक्ति, मैत्री, द्यूत से विरति, राजकुल से शंका, मद्य से विरक्ति इत्यादि गुणों की प्रशंसा की गयी है।

समयमातृका

प्रथम समय काम और काली की स्तुति से आरंभ होता है। क्षेमेन्द्र ने इस ग्रंथ की रचना राजाओं की कार्य सिद्धि के लिए की। कश्मीर में प्रवरपुर नामक एक भरा-

पूरा नगर था। इसमें कलावती नामक एक वेश्या रहती थी। एक दिन कोठे पर बैठी उसने सड़क में गणिका-गुरु कंक नामक एक नाई को जाते देखा। कलावती द्वारा कोठे पर बुलाये जाने पर उसने उसकी चिंता का कारण पूछा। कलावती ने उसे सूचित किया कि एक वैद्य की दवा खाने से उसकी नानी करभग्रीवा के मरते ही उसके घर से विट जाने का नाम नहीं लेते थे। उन सब से तंग आकर वह विदेश जाना चाहती थी।

कंक ने उसकी बात सुनकर काल रूप वैद्यों की निंदा की और एक नकली खाला रखने की सलाह दी क्योंकि बिना उसके निर्धन कामुकों और विटों से निस्तार न था, जवानी में दौलत कमाने की बात तो दूर रही।

द्वितीय समय में कंक कंकाली की कथा कहता है। प्राचीन काल में परिहासपुर में एक भटियारिन की एक कन्या हुई जिसका नाम उसने अर्धघर्घटिका रखा। उसके बड़े होने पर नागरिक उसकी पूजा करते थे। पर वह उनके बरतन चुराती थी। सात वर्ष की उम्र में उसकी माँ ने उसका नाम जालवधा रखकर उसे बाजार में बेच दिया। बाद में वह कामुकों का मन बहलाने लगी। पूर्णिक नामक एक केसर के व्यापारी को उसने अपने साथ रात बिताने के लिए राजी कर लिया। पर उसके सो जाने पर उसने उसके आभूषण चुरा लिये और चोर आने का शोर मचा दिया। बेचारा बनिया जगकर स्वजनों की लज्जा से भाग खड़ा हुआ।

इस घटना के बाद वह शंकरपुर में मल्लणा नाम से रहने लगी और अपनी वेश्यावृत्ति जोरों से चलाती रही। एक दिन प्रासादपाल नंदिसोम को गौरी मंदिर के गर्भगृह में सोता छोड़कर उसके गहने-कपड़े लेकर चंपत हो गयी। इसके बाद वह प्रतापपुर के समर सिंह डामर की रखैल बन गयी और खा-पीकर खूब मोटी-ताजी हो गयी। उसने समर सिंह की उसके भाई-बंधुओं से लड़ाई करवा दी और जब लड़ाई-झगड़े में उसकी मृत्यु हो गयी तो वह समर सिंह के भाई श्रीसिंह की रखैल बन बैठी और डटकर माँस-मछली और घी-दूध खाने लगी। पर प्रेमी के राजा का कोपभाजन होने पर वह मालमता लेकर नगर से भाग गयी।

इसके बाद विधवा मृगवती का नाम धर कर वह सुरेश्वरी पहुँची और वहाँ अश्वारोह बंधुरसार को फाँस लिया। उसने अपने प्रेमी की थाती काबू में कर ली। एक ही मास बाद बंधुरसार की मृत्यु हो गयी और तब उसने शव के साथ सती होने का ढोंग किया। पर राजाज्ञा से कामुक का धन मिलने पर उसने अपना नकली इरादा छोड़ दिया।

बंधुरसार के बाद कराला घुड़साल के मुंशी की रक्षिता बन गयी। वह घूसखोर और शराबी था। मुंशी जी की जायदाद बेच-बाच कर उसने नकद कर लिया। मुंशी के पुत्रों ने जब उसे घर बेचने से मना किया तो वह अदालत पहुँची। वहाँ वकीलों की झूठी चालों से उसे जीत मिली। पर इसके बाद वह वहाँ ठहरी नहीं। सब-कुछ लेकर वह शाक्त मठ जा पहुँची। वहाँ बालों में खिजाब लगा कर पुनः नवेली बन बैठी और अपने को किसी बनिये की बहू मशहूर कर दिया। वह अपना रोजगार चलाती रही। पर चोरी के अपराध में वह कारागार में ठूँस दी गयी। वहां भी वह अपनी चाल से बाज न आयी। उसने बँधनपाल से मित्रता गाँठ ली। पर एक दिन सेज पर नशे में बदहोश उसकी जीभ काट ली जिससे वह शोर न मचा सके और उसका वेश धारण करके जेल से निकल भागी।

वहाँ से भाग कर वह रात-ही-रात विजयेश्वर पहुँची और वहाँ अपने को महामात्य पुत्री अनुपमा के नाम से विख्यात कर दिया। भोगमित्र नामक एक प्रेमी की कृपा से फिर उसने अपने को युवती की तरह सजाया। पर अब उसकी उमर ढल रही थी, इसलिए ग्राहकों के अभाव में वह राह चलतों के पल्ले पकड़ती थी।

इसके बाद शिखा नाम रखकर वह भैरव सोम तपस्वी के साथ होकर भीख में आधे की साझीदार बन बैठी। पर अकाल की वजह से जब भीख मिलना दुर्लभ हो गया तब वह भैरव सोम के देवताओं के गहने लेकर चंपत हो गयी। पुनः वह कृत्याश्रम नामक बौद्ध बिहार में पहुँची और बज्रघंटा नाम धर कर भिक्षुणी बन गयी। उसने काषाय वस्त्र पहन कर हाथ में भिक्षापात्र ले लिया और अपना सिर मुँड़ा डाला। वह प्रणतों को मण्डल का उपदेश देती थी और घर-घर स्त्रियों को दुराचार का संदेसा भेजती थी। अपने झूठे मंत्रतंत्रों से वह मूर्खों की पूजनीया बन गयी। किसी उपासक के मंगल नामक दास के साथ से उसे गर्भ रह गया। बच्चा होने पर उसे छोड़ कर वह नगर में चली आयी और वहाँ मंत्री चित्रसेन के पुत्र की धाय बन बैठी और अपना नाम अर्धक्षीरा रख लिया। पर उसके भोजन की लापरवाही से बच्चे को ज्वर आ गया। बच्चे की हालत न सुधरने पर वह उसकी सिकरी लेकर भाग गयी। तदुपरांत धनवती नाम से उसने बहुत-से बकरे और गोचर भूमि इकट्ठी की, पर बन पर बिजली गिरने से उसका धन नष्ट हो गया। पर वह हार मानने वाली नहीं थी। एक पशुपाल का कंबल लेकर वह अवंतिपुर चली आयी और वहाँ तारा नाम से पूएँ बेचने लगी। पथिकों को वह गणेश नैवेद्य के माँडे गरम करके बेचती थी तथा काफी सूद की लालच देकर वह औरतों से चावल लेती थी पर वहाँ मल ही गायब था। इतना ही नहीं कुशलिका नाम से वह कन्या के विवाह के लिए भीख माँगती थी तथा पंजिका नाम से जूएखाने में नकली पासे बेचती थी। मुकुलिका नाम

से वह मंदिरों में धूप-दीप और नैवेद्य बेचती थी पर एक दिन पुजारियों से दाम वसूल करके वह चंपत हो गयी। फिर वह ग्रामीण मेलों में पौसरा चलाने लगी पर उसका असली काम था खेल-तमाशे में मशगूल बच्चों के गहने चुराना। फिर वह वर्णा नाम से षडाष्टक बताती थी और गणविज्ञानिका का काम भी करती थी। भावसिद्धि नाम से उसके सिर देवता आते थे पर वे केवल भेंट माँगते थे, देते कुछ नहीं थे। वह कुंभा देवी नाम से कुत्तों के साथ घूमती थी। जादूगरी में विश्वास रखने वाले मंत्री कुलदास ने उसकी पूजा की पर वह पूजा के चाँदी के बरतन लेकर भाग गयी। फिर वह कला नाम से तक्षक यात्रा में तीन दिन शराब बेचती रही और शराब में मस्त कटिघंटा नामक एक तपस्वी के सात घंटे चुरा लिये।

उसने ठगी और बेईमानी का कोई ऐसा काम न था जिसे न किया हो। वह धतूरा खिला कर राहगीरों का माल लूट कर एक रात शूरपुर पहुँच गयी। लवणसरणि में एक मजदूर से उसने शादी कर ली। रात में वह अपना पेशा चलाती थी और दिन में माल ढोती थी। कुछ समय बाद बंबा नाम धर कर अपने को भले घर की स्त्री बताती हुई जाड़े से ठिठुरती हिमपथों को पार करके वह पीर पंजाल की धार पर बने मठ में पहुँची। इसके बाद ब्रह्मवादिनी सत्यवती के नाम से सारी दुनिया की सैर की। कहीं वह अपने को योगिनी कहती थी तो कहीं तीर्थयात्री। चंद्र और सूर्य ग्रहण की गति, सेना स्तंभन इत्यादि से वह लोगों पर अपना दबदबा कायम रखती थी। केदार तर्पण, गया श्राद्ध तथा गंगा स्नान के पुण्य को बंधक रख कर वह साथी से रुपये बटोरती थी। शरीर की छाया गायब होने की विद्या सिखाने के बहाने उसने डाकुओं को ठगा। वह नकली रुद्राक्ष बेचती थी तथा बिलसिद्धि पर विश्वास करनेवालों को कुएँ में ढकेल देती थी। गंडमाला रोग की वह विषजांगुलिका नाम से चिकित्सा करती थी तथा मोहन पुष्प सुँघा कर वह चुंगी-घर के कर्मचारियों को ठगती थी। कहीं वह अपनी उमर हजार वर्ष से अधिक बताती थी तो कहीं त्रिपुर रहस्य जानने का दावा करती थी। कंबोज के सरदार उसके सामने झुकते थे, तुर्क और चीनी उसकी सेवा करते थे तथा त्रिगर्त, गौड़, बंग के लोग उसका आदर करते थे।

सारी दुनिया घूमघाम कर वह कुटनी अपने घर लौट आयी और वहाँ अपने को राजपुत्री मशहूर कर दिया। पर कंक ने उसे पहचान लिया। कंक ने कलावती को सलाह दी कि वह उसे अपनी कुटनी नियुक्त करे।

तीसरे समय के प्रथम नौ लोगों में सूर्यास्त और रात्रि के आगमन के वर्णन के बाद शृंगार-हाट का वर्णन आता है। शराब के लालची विट गलियों में चक्कर लगा रहे थे। ग्राहकों की जोह में कुटनियाँ खड़ी थीं। वेश्याएँ अपने घर साफ कर रही थीं

और उनका सौदा चल रहा था। कहीं तकरार हो रही थी। कहीं कुटनियाँ दरिद्रों को गाली दे रही थीं और धनिकों की तारीफ। कहीं वेश्याएँ आपस में अपने प्रेमियों की असली या नकली बातचीत कर रही थीं।

चतुर्थ समय के आरंभ में बूढ़ी कुटनी के रूखे-सूखे शरीर और बदसूरती का वर्णन है। उस कुटनी से कलावती ने अपनी सहायता की प्रार्थना की। उसकी प्रार्थना स्वीकार करके उसे बड़ा लंबा उपदेश दिया। उसका पहला उपदेश था—बुद्धि ही सब कुछ है, बिना बुद्धि के कुछ नहीं हो सकता। इस संबंध में उसने दो बेवकूफों की कहानी कही। बुद्धि के सिवा झूठ भी वेश्याओं के लिए आवश्यक था। इस संबंध में भी उसने अपने दो अनुभव कहे। फिर उसने धन की महत्ता पर जोर दिया और इस संबंध में भी एक कहानी सुनायी। इसका अंतिम उपदेश था—वेश्याओं को जवानी रहते धन कमा लेना चाहिए।

पंचम समय में क्षेमेन्द्र ने नवीन ढंग से राग परीक्षा का वर्णन किया है। रागों का विभाग उन्होंने रंग, धातुओं, प्रकृति, नक्षत्र, मनुष्य अवयव, पशु-पक्षी, यक्ष-राक्षस, बीमारी इत्यादि के आधार पर किया है। इसके बाद जिनसे प्रेम करना चाहिए उनकी एक तालिका दी है तथा उन्हें किन-किन उपायों से वश में करना चाहिए और अंत में निर्धन हो जाने पर उन्हें किस तरह निकाल बाहर करना चाहिए।

छठे समय के आरंभ में पहले प्रातःकाल का वर्णन है। ग्राहकों के आसरे सज-सजा कर बैठी कलावती से कंक वहाँ रात बिताने वालों का वर्णन करने लगा। यार सबेरा होने पर वेश्याओं के घर से निकल रहे हैं। जटा जूटधारी शैव लीलाशिव गली से होकर अपने घर जाता है। भद्रा के घर विट रात की लूट बाँट रहे हैं। अनंगसेना अनंगसार से रात की झूठी मौज की बात कर रही हैं। एक वेश्या लड़ाई होने से रो रही है तो एक बूढ़ी ग्राम नियोगी से साँठ-गाँठ जोड़ रही है। अनंगलेखा अपने प्यारे के साथ शराबखोरी पर जा रही है। एक श्रृंगार कर रही है तो दूसरी को चीनी वस्त्र का जोड़ा न मिलने सें किरकिरी हो रही है। माँस ठूँसने से हैजा होने पर एक कुटनी वैद्य के लिए चिल्ला रही है। एक वैद्य एक वेश्या को सुपारी दे रहा है तो एक गवैया रात की तोड़-फोड़ के लिए वेश्याओं से माफी माँग रहा है। एक वेश्या अपने प्रेमी से झूठी कसम खाती है तो एक दूसरी बाप की रकम चोरी करने वाले अपने प्रेमी को छिपा रही है। एक वेश्या केवल सीधा मिलने पर अपने प्रेमी को गाली देती है, कहीं कुटनी माल चट कर रही है तो कहीं गहने देकर मान-मनावन की बात चल रही है। एक्के पर चढ़े एक गुरु वेश्या के घर यज्ञ कराने जा रहे हैं और फटे कपड़े पहने वकील भी। कलावती तुझे एक घुड़सवार टकटकी लगाये देख रहा है और मालवराज का दूत तुझे देख कर ऐंठ रहा है। एक धूर्त

आँखों के इशारे से तेरी माँ की खुशामद कर रहा है और देख जौहरी का बेटा तुझे कैसे घूर रहा है। कंकाली ने उसे फँसा जान कर फौरन कंक को उसके पास भेजा।

सातवें समय के आरम्भ में प्रकृति वर्णन है। कंक ने पंक को इधर-उधर समझा-बुझाकर फाँस लिया। संध्या के समय कलावती श्रृंगार पटार करके अपने कोठे पर बैठ गयी। इतने में बनिये का बेटा सजधज कर अपने साथियों के साथ वहां आ पहुँचा। उसके साथियों में क्षीणसार, निर्गुट, भरताचार्य, क्षुण्णपाणि, तुलाधार, गणक, वैद्यपुत्र और कुटिलिक थे। वह कोठे में पहुँचते ही कलावती के बगल में बैठ गया और सिखे-सिखाये मजाक करने लगा। कंकाली भी वहाँ आ पहुँची और विटों की तारीफ करने लगी। इसके बाद कलावती की धाय वैतालिका ने उपस्थित लोगों को, जिनमें घर का दामाद, एक महाव्रती, स्थलपति, मृदंगिया, भरत नाट्याचार्य, गवैया, रसोइया, कुँभार छत्रधर, एक्केवान, ब्राह्मण, माली, नाविक, उद्यानपाल, चर्मकार, चांडाली, डोम और कोठारी थे, पान बँटवा कर उन्हें बैठा दिया। शराब पीकर मतवाले विटों की रात दून की लेते-लेते बीत गयी और अन्त में कलावती ने उन्हें भी पान देकर बिदा किया। इसके बाद वह अपने प्रेमी के साथ सुखपूर्वक सोयी।

आठवें समय में कलावती कंकाली से रति क्रीड़ा में पंक की कार्रवाइयों की बात कहती है। इस पर उसकी माँ कहती है कि पंक की उछलकूद उसके पास बाप की चुरायी रकम के कारण थी। यह कहकर वह फौरन पंक के पास पहुँची और अपनी बेटी के प्रेम का हवाला देकर उसे विटों से बचने के लिए कहा और इसके लिए उसे एक दिन छिप जाने की सलाह दी। बनिये का बेटा कुटनी के कहने में आ गया और उसे अपनी रकम सुपुर्द कर दी और स्वयं मकान के दादरे में जा छिपा। अब कुटनी विटों के पास पहुँची और उन्हें इस बात का दोष दिया कि उन्होंने पंक को, जो बनिये का लड़का न होकर डाकू था, उसके घर घुसा दिया और वह रात में कलावती के गहने लेकर चंपत हो गया। इस बात को फरियाद का नाम सुनते ही तथा उसके रोने की नकल से घबराकर विट अपने धोखा खाने की बात करते हुए गायब हो गये।

दूसरे दिन कंकाली बाजार पहुँची और वहाँ दूकान पर अपने घर की चोरी से चिंतित गंदे कपड़े पहन पंक के पिता को बहीखाता लिखते देखा। वह फौरन उसके पास पहुँची और उसे बतलाया कि उसने पंक को विटों से बचा कर अपने घर में आश्रय दिया था। वहाँ कलावती से उसका प्रेम हो गया और दोनों ने शादी कर ली। अब वह कलावती का सारा स्त्री-धन बनिये के सुपुर्द करके तीर्थयात्रा पर जाने को तैयार थी पर उसका यह अनुरोध था कि उसके तीर्थयात्रा के पहले समधी के नाते बनिया उसके यहाँ भोजन कर ले। बनिया इस शर्त पर भोजन करने को राजी हो गया कि भोजन का पैसा कंकाली

उससे ले ले। कंकाली के राजी हो जाने पर बनिया ने उसके यहाँ डट कर भोजन किया और उसका घर खर्च चलाने का वादा किया। दूसरे दिन दासी के पहुँचने पर उस कंजूस ने एक तोला तेल और दो तोला नमक देकर लौटा दिया।

अब कलावती उसे ठगने का निश्चय कर चुकी थी। उसने एक ही नाप की दो संदूकें बनवायीं। एक में अपने गहने भरे और दूसरे में पत्थर। सेठ के पास पहुँचकर उसने उसे जड़ाऊ गहने की पेटी पर काशी यात्रा के लिए उधार माँगा। जब उसने रकम देनी मंजूर कर ली तो पेटी जमा करते समय कंकाली ने चुपके से पत्थर भरी पेटी सरका दी और रकम लेकर घर वापिस आ गयी। इधर कलावती ने भी पंक को निकाल बाहर करने का निश्चय किया तथा चोचले दिखला कर उससे एक उधारनामा लिखवा लिया। इतना ही नहीं कंकाली भी उसे लूटने में नहीं चूकी और उसे डरा-धमका कर उसके पिता की सारी जायदाद का दस्तावेज लिखवा लिया। सारा माल लूट कर अब उसने कलावती के सामने पंक को सुनाकर उसको यह कहा कि उसके चाहने वालों में बहुत-से राव-रईस थे। एक दरिद्र की वहाँ आवश्यकता न थी। पंक यहाँ सुनकर बेहोश-सा हो गया पर कोई उपाय न था। इधर कलावती ने भी उसे सताना शुरू कर दिया। एक दिन सबेरे कंकाली ने पंक से कहा कि कलावती के लिए झगड़े में एक जवान मारा गया था, इसलिए पुलिस से बचने के लिए उसका भागना जरूरी था। बेचारे पंक के लिए सिवाय भागने के और कोई दूसरा रास्ता न था।

देशोपदेश

प्रथम उपदेश में खल की महिमा गायी गयी है। यह सबको छाँटने में कुशल है, व्यर्थ की बातों में चित्त लगाता है, शत्रुओं और मित्र को चकमा देता है, दूसरों को रोजी मारता है, भले आदमियों की निंदा करता है, भोजन का लालची होता है तथा सर्वदा झगड़ालू और गंदा बना रहता है। वह क्रूर, शुभ कार्य में अनिष्ट करता है, बुराइयों की ओर उसकी निगाह रहती है, वह किसी की तारीफ नहीं करता, राग-द्वेष और मद से वह भरा होता है तथा वह लोगों के कान में बदमाशी का मंत्र फूँकता है। पंडित खल और भी बुरा होता है, उसका प्रेम बेकार है।

दूसरे उपदेश में कंजूस को कोसा गया है। वह कठोर और निष्फल, अंत में विट का भोज्य होता है। धूल में सना कँजूस मुट्ठी भर अन्न पर जीता है। रिश्तेदार उससे विमुख होकर लौटते हैं। उसका दर्शन कल्याणकर नहीं होता। मालदार कंजूस को दबाना ही लाभकर है। उसका माल मता और स्त्री अंत में दूसरों के लिए हैं। नीरस कंजूस में मिठास कहाँ? वह नंगा और गंदा बना रहता है। काम में रुकावट पड़ने पर

भी वह एक पैसा नहीं खरचता। याचकों को वह गरदनियां देता है। उसके कपड़े पुराने-धुराने होते हैं। उसकी स्त्री को पड़ोसी न्योता देकर खिलाते हैं। अपने पिता के श्राद्ध के दिन वह सूतक अथवा ज्वर का बहाना कर लेता है। रिश्तेदारों के आने पर वह अपनी स्त्री से लड़ाई करके अनशन कर लेता है। गाने से उसे बैर है। पुरोहितों को कुछ भी देने में वह हिचिकता है। काम पड़ने पर वह अस्पृश्य के भी पैर पकड़ता है। पैसा खर्च होने के भय से वह उपकारी की भी बुराई करता है। उसके घर में हँसी-खुशी का नाम नहीं। वह सदा बीमार और गंदे दाँतोंवाला बना रहता है। वह धन को घड़े में भर कर गाड़ देता है। वह साठ बरस का पुराना चावल भी अधिक लाभ की आशा से नहीं बेचता। वह अतिवृष्टि और अनावृष्टि की कामना करता है।

तीसरे उपदेश में वेश्याओं की खबर ली गयी है। वह लोभी, लुटेरू और स्वच्छंद होती है। प्रेम और काम विहीन वह केवल अपनी ही परवाह करती है। वह नीचों की संपत्ति भोगती है, सबका साथ करती है और अंत में फलविहीन है। बूढ़ी हो जाने पर भी उसकी लालच कम नहीं होती। सुरत उसे नहीं भाता, पर बालक, वृद्ध, तपस्वी सबको एक-सा देखती है। वह साथ छूटते ही भागती है। अपनी फीस से ही वह सब कुछ लूट लेती है। चित्त के सद्भावों से वर्जित होती है। उसके घर प्रेमियों का आना जाना और बाट जोहना सदा लगा रहता है। वह कामियों की जड़ काट देती है। वह समय-समय पर बाला, प्रौढ़ा और वृद्धा बन जाती है। वह पंडित को मूर्ख, धनी को निर्धन, पवित्र को चोर बना देती है। पैसे के लिए ही वह अनवरत संगम करती है। उसका संगम हमेशा नीरस है। नौसिखुए के साथ वह कहानी कहने, शराबखोरी और झूठी नींद में बिताती है। बहाना बनाना उसका काम है। बुढ़ापे में वह खिजाब लगाती है तथा घी, दूध और मांस खाकर अपना यौवन वापिस लाने की कोशिश करती है। बुढ़ापे में वह बन-ठन कर निकलती है, गलित स्तनों को ढाकती है तथा घूँघट निकलाकर और छाती उभारकर चलती है। बीमार पड़ने पर गुरुओं से वह रक्षा सूत्र बँधवाती है तथा जंतरों का प्रयोग करती है। तीर्थों में भी सफेद कपड़े पहन कर वह अपना धंधा जारी रखती है। धन के लिए वह देवपूजा करती है तथा ज्योतिषियों से ग्रहफल पूछती है।

चौथे उपदेश में कुटनियों की खबर ली गयी है। वह वेश्याओं के धन की रखवाली करती है, प्रेमियों का खून चूसती है, भलेमानसों को कुराह पर ले जाती है, तथा जान पहचान और उपकार की परवाह नहीं करती। वह वेश्या का काम साधती है। पैसा वसूलने के लिए बूढ़ों को भी बेटा कहती है। रिश्तेवालों द्वारा इलाज करवा कर चंगी

होने पर वह उन्हें चोरी लगाती है। वह छूछों को निकालने की तदबीर साधती है और सबसे झगड़ा-झंझट मोल लेती है।

पाँचवें उपदेश में विट व्यंग का शिकार बनता है। वह गरीब और गुणहीन होकर भी कला का पारखी होता है। भोग, क्रोध ऊधम, परस्त्रीगमन उसे भाते हैं। वेश्याएं उस पर थूकती हैं। कुटनी की वह नाक काटता है। घूमने फिरने में उसे थकावट नहीं आती। हँसी उड़ाए जाने पर भी वह वेश्याओं के यहां घुसा रहता है, फांकेकशी करते हुए भी भोग लगाने का ढोंग रचता है। वह गरमी में गरम और जाड़े में सूती कपड़े पहनता है, सिर पर घोघी बांधता है। उसके दाढ़ी के बाल फड़फड़ाते हैं। पान खाकर वह गालियां बकता है। लोग उसके गंजे सिर पर चपत मारते हैं। खश की कुटिया में रह कर भी वह दक्खिनियों की नकल करता है। बूढ़ा विट अंधविश्वासी होता है। गरीब होने पर वह मैला कुचैला बन कर घूमता है।

छठें उपदेश में गौड़ देश के छात्रों की खबर ली गयी है। देश से आने के पहले वह ठठरी था। छूआछूत में उसकी प्रवृत्ति है। भोजन और जप उसके काम हैं। छात्रालय में माल खाकर वह जुआड़ी और मांसभोजी बन गया। पढ़ाई तो दूर रही, वह आलते से पैर के नख रंगता है, कामदार कपड़े पहनता है तथा कमर में छूरा खोंस कर मारपीट करता है। वेश्याएँ उससे दूर भागती हैं। पवित्रता का ढोंग रचते हुए भी वह वेश्या के यहाँ खाता-पीता है। मठ में वह गुंडई करता है। द्वादशी के व्रत का पारायण वह मछली खाकर करता है। रोगी छात्र का वह माल हड़प जाता है इत्यादि।

सातवें उपदेश में बुढ़ापे में ब्याह करने वालों की भद्द उड़ाई गई है। बूढ़ा अपनी जवान स्त्री की जी-जान से रखवाली करता है। लोग कहते हैं कि बूढ़ा परलोक के लिए विवाह करता है। साँस और आँख के रोग से पीड़ित बूढ़ा अपनी स्त्री के लिए ज्वर की तरह है। विवाह के समय कन्या का पिता वर के असमय में बूढ़ा होने की बात कहता है। विवाह हो जाने पर स्त्री उसे लात मारती है और उसे बाबा कह कर पुकारती है। उसके छूते ही वह दूर भागती है। जल्दी ही वह दूसरे से फँस जाती है। बूढ़ा पुंसत्व-शक्ति खोकर बाजीकरण की औषधियां खाता है, पर नतीजा कुछ नहीं निकलता। दूसरे से जब उसे पुत्र उत्पन्न होता है तो बूढ़ा उत्सव करता है। मरते समय उसकी गृहिणी केवल धन की बात पूछती है।

आठवें उपदेश में समाज के अनेक लोगों का भंडाफोड़ किया गया है। गुरु राग-द्वेष, मोह-लालच, दंभ का घर है। दीनारों की लूट ही उसके लिए दीक्षा है। गुरु शिक्षा देते हैं—इस कलियुग में खिलवाड़ ही से मोक्ष मिलता है।

कायस्थ देवताओं, ब्राह्मणों और सारी प्रजा को लूटकर गुरु के पास जाता है। प्रजा को लूट कर वह यज्ञ करता है।

पति को दास बनाकर दीक्षिता पत्नी गुरु के पास जाती है। छूआछूत में कट्टर होने पर भी वह गुरु की सुरत से अपने को धन्य मानती है। भोजन में देर होने पर वह घर लौट कर पति की मरम्मत करती है।

भट्ट शराब पीकर और प्याला लेकर गुरु के पास जाता है। नशे में बदहोश होकर वह वमन करता है, कुत्ता उसका मुँह चाटता है, पर दूसरे दिन इसके भट्टों के अभिवादन मात्र से ही वह शुद्ध हो जाता है।

बनिया जमा की रकम हजम कर जाता है, व्याज नहीं देता, माल पैदा करने का सर्वदा इच्छुक रहता है तथा गुरु का बराबर दर्शन करता है। धूल से सने मुख तथा गुड़ शहद घी से गंदा बना वह हाट का पिशाच लगता है। यह सब होते हुए भी वह गुरु जी के माल बहने का पनाला है।

सारस्वत मंत्र का अभिलाषी, पर असंस्कृत, काव्य का सनकी कवि भी गुरु जी के पास जाता है। व्याकरण की अशुद्धियों से भरी वह अंडबंड कविताएं करता है। रात भर वह सूखे श्लोकों से अपना जी कुढ़ाता है।

बूढ़ा धातुवादी कफ और साँस से पीड़ित, मरने के करीब होने पर भी गुरु के पास जाता है। घरिया खोलकर बने सोने से लोगों को अमीर बनाने की आशा देने वाला वह निर्धन रहता है। पारा सिद्ध करने के फेर में वह अतिसार से मर जाता है।

श्वेतार्क गणपति बनाकर, मंत्र सिद्ध करने के फेर में जुआड़ी मछली मांडा और सिंदूर लेकर गुरु के पास जाता है। वह हमेशा फाँकेकश और बीमार बना रहता है।

गुरु का चेला यज्ञ में केवल भोजन-भट्ट का काम करता है और बराबर गुरु की जय-जयकार करता है।

गुरु का बेसुरा बीनकार चेला अपने साज के साथ यज्ञ में जाता है और दिन भर में सुर मिलाकर लोगों का कान फोड़ता है, पर वाहवाही के लिए शिष्यों का मुँह निहारता है।

बीमारों को लूटकर, फुटकर श्लोकों से अपना रोब जमाने वाला धूर्त, मूर्ख, निन्दनीय वैद्य गुरु के यहां जाता है। अपनी बात के बांधने से वह लोगों में भय उत्पन्न करता है तथा सन्निपात के रोगियों को मारता है।

मैला-कुचैला निर्गुट फटे मोजे तथा चूने-हल्दी से रंगी पगड़ी पहनकर गुरु के यहां जाता है। भट और कुटुंबी द्वारा चरे हुए मालवाला, सैकड़ों कर्ज के कागज लिख कर कर्ज से दबा हुआ वह देश निकाले के भय से वर्ष भर में एक बार राजदरबार जाता है।

नकियाते स्वर से लंबे वाक्य और अन्वयविहीन, अशुद्ध लिखे पदों को कवि खर्रे से पढ़ता हुआ गुरु के यहाँ जाता है। व्याकरण की अशुद्धि दिखलाने पर वह लोगों से नाराज होता है।

गोलमाल अक्षर और टेढी पंक्ति लिखनेवाला, लिखते समय शब्दों को तोड़ने वाला, अक्षरों को इधर-उधर करनेवाला तथा अर्थ बिगाड़नेवाला लेखक गुरु के पास जाता है। तंत्र-मंत्रहीन जटाधर साधु भी यज्ञ में पधारते हैं। उनकी धोई-धाई सुगंधित जटा वेश्याओं की तकिया बनती है। वह खूब शराब छानता है।

पवित्रता का ढोंग साधनेवाली, स्नान-दान में निरत विधवा गुरु के यहां जाती है। मृत पति के उद्धार के लिए वह अपने को गुरु को सौंप देती है।

नर्ममाला

क्षेमेन्द्र ने नर्ममाला में कायस्थों की हँसी उड़ायी है और कड़ी आलोचना की है। उनका कहना है कि कश्मीर के राजा अनंत ने कायस्थों का घोर दमन किया। कायस्थों को सारे झगड़े-फसाद की जड़ कहा गया है। छोटी जात के बेईमान चालबाज कायस्थों की हर जगह पहुँच थी। कायस्थोत्पत्ति के बारे में क्षेमेन्द्र ने एक सुंदर कहानी गढ़ी है। प्राचीन काल में विष्णु द्वारा असुर विजय होने पर उनका गणनापति दुखी हो गया। अखाद्य खाकर उसने हजार वर्ष तप किया। इस पर प्रसन्न होकर स्वयं कलि ने उसे पृथ्वी पर जाकर देवताओं से बदला लेने का वर दिया। वर के फलस्वरूप देवताओं की पूजा बंद हो गयी, ब्राह्मणों की रोजी मारी गयी तथा यज्ञ बंद हो जाने से देवता नष्ट हो गये। दैत्यों के नाश होने पर आकाश (दिवि) में रोने (रुद्) से उसका नाम दिविर पड़ा। इस तरह से कलजुग से वर पाकर दैत्यों का गगनापति पृथ्वी पर उतरा। वह देवताओं तथा गायों को लूट कर खाने पीने लगा। देव नाग और मनुष्यों की नित्य और नैमित्तिक क्रियाएं उसने बंद कर दी। बाद में वह अपनी करनी से डर कर महाव्रती बन गया। व्यथा कम होने पर वह परदेस चला गया और वहां से कालांतर में लौट आया। पहले वह गांव में नियुक्त हुआ पर बाद में गणनाधिपति का वह गृहकृत्य बन गया तथा अपने लुटेरू साथियों की मदद से सारी पृथ्वी उजाड़ दी। उसके दूसरे साथी लोगों को तंग करने के लिए हाथ में लाठियां लेकर घूमने लगे।

मंदिर से निकल कर वह नियोगियों की सभा में पहुँचा। वहां मंदिरों को उजाड़ने वाले खुफिया को आते देखा और उसको अपने बगल में जगह दी। बैठते ही उसने मंदिरों के बारे में खुफिया खबर देनी शुरू की और उनमें जमा माल का ब्योरा बताकर सलाह दी कि वह माल लूटने के लिए ऐसे परिपालक की नियुक्ति करे जो गोहत्या और ब्रह्महत्या

को कुछ नहीं समझता हो और जनता की लूट में ही दत्तचित्त रहता हो। अब भला मरीच को कहाँ चैन, फौरन परिपालक उपस्थित किया गया। मरीच के हुक्म से उसने मंदिर लूट लिये तथा लोगों के दरवाजे तोड़ कर मालगुजारी की वसूली के लिए घरों के बरतन-भांड़े उठा लिये।

कायस्थ को अब एक लेखकोपाध्याय की आवश्यकता पड़ी। गरीब होते हुए भी उसको अपनी मुंशीगीरी का घमंड था। उसकी गरीब स्त्री ने अपने पति का बहुत दिनों बाद भाग्य लौटा देखकर गणेश की पूजा की। नियुक्त होने पर लेखक ने अपने मालिक के हुक्म से जबर्दस्ती वसूली के लिए अनेक हुक्मनामे लिखे तथा उसके लिए वह जबर्दस्ती वस्तुएं वसूल करता था। कुछ दिनों में उसका अभिमान इतना बढ़ा कि वह मालिक के हुक्मनामें को भी फाड़ कर फेंकने लगा।

खजांची का तो कहना ही क्या था? भट्टों और भागवतों के बीच सुलह कराने के लिए वह मध्यस्थ बना था पर ब्राह्मणों और मंदिरों को लूटना ही उसका काम था। उसने पहुँचते ही शरदकाल की साढ़े चार लाख की वसूलियाती का चिट्ठा परिपालक के पास पेश किया और मालिक के संतोष दिखलाने पर, उसने अपना अनुभव बतलाकर, किस तरह उसने मंदिर के एक बड़े तांबे के घड़े को धीरे-धीरे बेचकर और उसकी जगह छोटी छोटी वस्तुएं रखकर उसे चट कर गया, उसने उसे मंदिर के कोटारों के लूटने का उपदेश दिया।

मार्गपति (व्यापारी) पहले बड़ा गरीब था तथा अपने सामर्थ्य के अनुसार दान धर्म और पूजा करता था पर नियोगी होते ही उसका घर माल से भर गया और उसकी स्त्री की जवानी खिल उठी। गांव जाते समय उधार माँगे सरोसामान के साथ, जिन्हें लौटाने की इच्छा उसे न थी, वह भाड़े के टट्टू पर उछलता-कूदता चलता था। गांवों को लूटना ही उसका धर्म था। वह लोगों को सूली चढ़ाने, उनका घर उजाड़ने और मारपीट में कुशल था। पांच-छह मजदूर बराबर उसका माल ढोते रहते थे। वह अपने मालिक के रियायती पत्रों को फाड़कर फेंक देता था, पर राजपुरुष के आते ही वह गरीबी का बाना दिखलाता था।

ग्राम दिविर जालिया था, जो जाल बनाने में अपना सानी नहीं रखता था। शराब पीने की उसे लत थी। अंगुलियों से अक्षर मिटाकर चरचराती कलम से उसे लिखने की आदत थी। ब्राह्मणों और देवताओं को वह लूटता था और जनता को लूट कर उसने खाक में मिला दिया। धन पैदा करते ही उसकी दुश्चरित्रा स्त्री घमंड करने लगी तथा अच्छे गहने कपड़ों को भी वह तुच्छ समझने लगी। जिसे कच्ची शराब पीने भी

को न मिलती थी, वह अब कस्तूरी की शराब पीने लगी और उसे पड़ोसियों के लड़के कुलीन समझने लगे।

दूसरे परिहास के आरंभ में पारदारिक प्रकरण आता है। कायस्थ की स्त्री की लुनाई तथा शृंगार-पटार देख कर विट उसको फँसाने के चक्कर में आने लगे। एक दिन वे एक सूने मंदिर में इकट्ठा होकर उसे बस में करने की तदबीरें सोचने लगे। एक ने कहा—वृद्ध और ईर्ष्यालु पति होने से उसका पाना सहज है। दूसरे ने कामशास्त्र की बात चलाकर उससे परिचय बढ़ाने की बात चलायी। पर तीसरे ने कहा कि उसके पति जालिम कायस्थ ने बहुत से बदमाशों को सर कर दिया था फिर उनकी बात ही क्या थी। फिर भी राजा के साले से उसकी दोस्ती होने से सबके बच निकलने की संभावना थी। उसको फँसाने की तदबीर से वह कायस्थ की स्त्री के यहां रोज-आने जाने वाली बौद्ध भिक्षुणी के यहां गया।

एक दिन उस कायस्थ की पत्नी ने एक मुस्टंडे मूर्ख विदेशी विद्यार्थी को देखा और उस पर फिदा हो गयी। कायस्थ के घर वह मासिक वेतन पर बच्चों को पढ़ाने के लिए नियुक्त हुआ। पढ़ाना-लिखाना तो उसके लिए साढ़े बाईस था पर वह स्त्रियों को बराबर घूरा करता था। वह कातने बुनने इत्यादि में व्यस्त रहता था। बच्चों के उपाध्याय कहते ही वह उन पर नाराज हो कर गालियां देता था। अपना भोलापन दिखाकर उसने नियोगी के घर की सब स्त्रियों को खराब कर दिया और इसके बाद विटों इत्यादि का वे बराबर संग करने लगीं।

कुछ दिन बाद मालटाल लिए हुए नियोगी अपनी प्रिया से मिलने के लिए वापिस आया पर उसकी स्त्री उसकी शकल देखते ही चिढ़ गयी और सिर दर्द की नकल साध कर पलंग पर पड़ रही। उसके इलाज के लिए सबेरे वैद्य जी पधारे। मूर्खता में वे अपना सानी नहीं रखते थे, तथा बीमारों के लिए तो वे काल थे। शिकायत करने पर रोग का कारण खाने पीने में बदपरहेजी कह कर टाल देते थे। बड़े तपाक के साथ उन्होंने निदान किया कि उसकी धातुएँ बिगड़ गयी थीं और इलाज था दही शक्कर का भोजन।

वैद्य के बाद कायस्थ की आज्ञा से ज्योतिषी आया। ज्योतिष के ज्ञान के नाम से वह कोरे पुलिंदे बांधे फिरता था तथा बीमारी, बुराई-भलाई, मित्रलाभ इत्यादि सब के बारे में फलादेश करता हुआ वैद्यक मिश्रित ज्योतिष का प्रचार करता था। नियोगी की स्त्री का हालचाल सुनकर व्यर्थ ही में उसने राशिचक्र बनाकर फलादेश किया कि उसके सिर यक्ष चढ़ा था और उसकी शांति के लिए शुक्र पूजा आवश्यक थी।

जब वैद्य ज्योतिषी आ-जा रहे थे उसी समय नियोगी को अपने सहायक से समाचार मिला कि उसकी आज्ञा से गायें पकड़ ली गयी थीं और गांववालों से पूरी दंड वसूली

की आशा थी। एक फांकाकशी करने वाला ब्राह्मण मर चुका था और उसकी स्त्री को गिरफ्तार करके सारे मालमता पर मुहर लगा दी गयी थी। वह उसके आने की राह जोह रहा था।

लेख पढ़कर नियोगी को बड़ी खुशी हुई। अब उसने अपनी स्त्री की रक्षा के लिए शाक्त यज्ञ करने का निश्चय किया। उसके लिए गुरु न्योते गये और वह बदमाश वेश बनाकर चेले-चाटियों के साथ वहां पहुँचा। शराब पीने, मांस खाने और दुराचार में वह अपना सानी नहीं रखता था। उसने यज्ञ के लिए सामान की तालिका लिखवा दी और दूसरे दिन आने का वादा करके वापिस चला गया।

यज्ञ में न्योता पाकर कायस्थ का लुटेरू और व्यभिचारी ससुर आया। वह ब्राह्मणों को देखने को अपशकुन मानता था पर चंडालिन के देखने को शकुन। अदालत में उसकी खूब चलती थी। उसके साथी अधिकरण भट्ट बदमाशी में अपना सानी नहीं रखते थे। लोगों को मारना पीटना और घूस लेना ही उनका काम था।

यज्ञ में कायस्थ के रिश्तेदार और स्त्रियां भी थीं। तरह-तरह के सामान का ढेर लग गया। गुरु के शिष्यों ने भग लिंग विभूषित मण्डल बना दिया। इसके बाद दो शिष्यों की मदद से तथा भैरवाचार्य, कुलाचार्य, पाशुपत, मंत्रवादी, रासायनिक इत्यादि के साथ गुरु जी पधारे और पूजा आरंभ हो गयी। नियोगी ने अपनी विधवा बहन को याग कर्म में लगा दिया। दीक्षा के अवसर पर हाट के तपस्वी, वेश्या, शल्यहर्ता और बूढ़ा बनिया गुरु की खुशामद करने लगे। यह सब होने के बाद शाम को शिवकुंडिका बनाकर गुरु उसके शिष्य तथा दूसरों ने खूब शराब पी और मस्त होकर नाचने-गाने और विचित्र आकृतियाँ बनाने लगे। गुरु फटे स्वर में वीन के साथ एक देशी पद गाने लगे। इसके बाद दीपनिर्वाण के साथ रति महोत्सव हुआ।

इसी बीच में एक दूत ने आकर खबर दी कि राजा का गृहकृत्य महत्तम गहरी रकम लेकर चंपत हो गया तथा खबर फैलते ही परिपालक गिरफ्तार हो गया था। नियोगी भी भागने में ही कुशल था। पर जैसे ही वह भागने को तैयार हुआ गिरफ्तार करके जेल पहुँचा दिया गया। वहां से किसी तरह वह एक वेश्या से छुड़ाया गया। अब वह लोगों की खुशामद करने लगा तथा भीख मांगने लगा और नीचों से पिटते-पिटाते एक दिन पाखाने में गिरकर उसकी मृत्यु हो गयी।

(४)

दंभ और धार्मिक प्रक्रियाओं का हमेशा से चोली दामन का साथ रहा है। शुचि और आत्मशुद्धि के नाम पर जिन आचार-विचारों का सृजन हुआ वे ही कालांतर में

ढोंग मात्र रह गये। मध्यकाल में तो, जैसा पुराणों से पता चलता है, धार्मिक दंभ जीवन का एक अंग ही बन गया, तथा धर्म के नेता पूजा-पाठ, स्पृश्यास्पृश्य, दान दक्षिणा, व्रतोपवास इत्यादि को ही धर्म मान बैठे। क्षेमेन्द्र ने कला विलास में ऐसे ही दांभिकों का भंडाफोड़ किया है। अपनी पैनी बुद्धि से उन्होंने बकदंभ को व्रत नियम में संलग्न, कूर्म दंभ को गुप्त नियमों से आवृत, मार्जार दंभ को गुप्त गति, दृष्टि और नियम युक्त कहा है (क० वि० १।४८)। दांभिक का उन्होंने बड़ा ही सुन्दर चित्र खींचा है। हलकी दाढ़ी बाल और कटे नाखून, बढ़े बाल, जटा, लंबी दाढ़ी, बराबर मिट्टी से हाथ धोते रहना, बहुत कम बोलना, सँभल कर जूते रखना, मोटे गांठ की पवित्री, पीठ पीछे सोने के सिकरी, बगल में कपड़े का आंचल दबाने से फँसे हाथ, अंगुलियां नचाकर वादों में प्रवृत्ति, जप करते हुए ओठ चलाना, गलियों की भीड़ पर ध्यान देना, तीर्थ में नाटकीय ढंग से चिल्लू से आचमन और स्नान तथा सबको रोककर बारबार कान छूना, दाँत किटकिटाकर शीतलजल में स्नान के कष्ट का आभास देना, लंबा तिलक लगाकर सब देवों की पूजा का ढोंग, सिर से कहीं फूल न गिर जाय इस पर बराबर ध्यान—ये सब दांभिक के लक्षण हैं (क० वि० १।५०-५५) शुचि का दंभी शौचाचार में झगड़ालू, व्यर्थ मिट्टी खराब करने वाला और अपने जैसों से ही मिलने वाला होता था (क० वि० १।६०) तथा अहिंसा का दंभी, सब कुछ हड़प कर जमा की रकम पर आँख गड़ाता था (क० वि० १।.१)।

कला विलास में दांभिकों के बाह्य रूप का भी सुंदर चित्र खींचा गया है। दांभिक मुंडित, जटिल, छत्रधारी, दंडी, गैरिक वस्त्रधारी, भस्म रमाने वाला, गंजा, मोटा, पतला, मुनि समान रूपधारी, दुपट्टे से सिर ढँकने वाला अथवा ऊँची पगड़ी बाँधने वाला होता था (क० वि० १।६२-६३)। पुस्तक पर कुशपूली, शून्य कमंडलु, कुटिल शृंग, दंड, कृष्णाजिन, खनित्र, कानों में कुश की मोटी पवित्रियां, हाथ में पवित्री, कुश से वेष्टित मुंडित सिर तथा शिखर में खुसा हुआ फूल, काष्ठ स्तब्ध ग्रीवा, जप से चलते ओठ, समाधि में लीन आँखें, हाथों में रुद्राक्ष की माला तथा मिट्टी का पात्र, मौन रह कर भी आँखें सिकोड़ कर हुंकार भरते हुए, मुँह बिगाड़ कर मन की बात करना तथा दूसरे की छूत से बचना, ये दंभी की खास बातें थीं (क० वि० १।६८-७२)। यों तो मध्यकाल में दंभ का देशभर में प्रचार हुआ पर बंगाल में तो उसने अपनी विजय पताका फहरा दी। वाह्लीकों के वचन में, प्राच्य और दाक्षिणात्यों के व्रत नियम में, काँगड़ावासियों के अधिकार में और बंगालियों की सब बातों में घुस गया (क० वि० १।८६-८७)।

क्षेमेन्द्र द्वारा दंभ की व्याख्या में मध्ययुग का हिन्दू समाज आ जाता है। शायद अहिंसा दंभ में जैनों की ओर इशारा है। गौड़ों से क्षेमेन्द्र काफी नाराज थे और उन्हें वे

दंभियों का सिरताज मानते थे। समय बहुत बदल गया है पर मध्यकालीन धार्मिक दंभ का चित्र आज दिन भी भारत में धूमिल नहीं हुआ है।

मध्यकालीन धर्म में पाखंड, अंधविश्वास तथा जंतरमंतर ने अपना विशेष स्थान बना लिया था। ये बातें प्रायः सभी धर्मों में, चाहे वे शैव हों या वैष्णव, बौद्ध हों या जैन, प्रचलित थीं। इन धर्मों का तत्वचिंतन पक्ष तो मजबूत था पर जहां तक क्रियापक्ष का संबंध है वे बहुत कमजोर और घृणित बन चुके थे। अंधविश्वास और धर्म के नाम पर कुत्सित यौनाचार किसी विशेष वर्ग तक सीमित न रह कर सारे समाज का एक अंग बन गया था। धर्म के ठेकेदारों ने, चाहे वे हिन्दू हों अथवा बौद्ध, इन विश्वासों और क्रियाओं को अपने धर्म ग्रंथों में बेसमझे-बूझे स्थान दिया और इस तरह उन्हें सत्य मान कर लोग गुमराह हुए। मध्यकाल में क्षेमेन्द्र ही एक ऐसे व्यक्ति थे जिन्होंने इन धार्मिक अनाचारों और लोकसम्मत अंधविश्वासों का खुल कर विरोध किया और लोगों को उनसे बचने की सलाह दी। कश्मीर का इतिहास और नैतिक पतन की कहानी उनके सामने थी और वे यह भी जानते थे कि ये बुराइयां भारत की किसी भौगोलिक सीमा तक ही स्थिर न रहकर सारे देश में फैलकर जन-जीवन को कलुषित कर रही थीं तथा उनके विरोध से ही देश का कल्याण था। पर इतिहास इस बात का साक्षी है कि उनकी पुकार केवल अरण्यरोदन ही रही।

समयमातृका में क्षेमेन्द्र ने इन मध्यकालीन ठगहारियों और अंधविश्वासों की ओर ध्यान आकर्षित किया है। कंकाली एक साहसिक वेश्या थी। उसने अपनी भ्रमण यात्राओं में अनेक रूप धारण किये और धर्म का ढोंग रचकर लोगों को ठगती फिरी। कन्यारूप में वह पुरजनों द्वारा पर्वों पर पूजी जाती थी (स० मा० २।५)। भैरवसोम नामक किसी जोगी के साथ रहते हुए आँखों में काजल, शरीर में भस्म रमा, सफेद बिल्लौर की माला गले में डाल तथा कंचुक से कुचों और बाहुओं को ढँक कर पूरी जोगिन बन गयी (स० मा० २।५९)। बौद्ध धर्म भी उससे बचा नहीं। हारित बिहार में वह वज्रघंटा नाम की भिक्षुणी बन गयी। हाथ में भिक्षापात्र ले लिया। पुराने काषायवस्त्र पहन लिये और पके बाल मुँडा डाले। लोगों को मंडल की शिक्षा देती हुई वह घर-घर स्त्रियों में दुःशील फैलाने लगी। वह वेश्याओं को वशीकरण के प्रयोगों की, बनियों को धन बढ़ाने की और मूर्खों को मंत्रवाद की शिक्षा देती थी (स० मा० २।६२-६४)। बाद में वह किसी राह चलती लड़की को पकड़कर उसके शरीर में घी पोतकर झूठ-मूठ उसके तुरत होने वाले विवाह की बातचीत चलाकर घर-घर भीख माँगती फिरी (स० मा० २।७९)। समय पड़ने पर उसने ज्योतिषी बनने का भी ढोंग साधा। वर्णा नाम से वह षडाष्टक और नक्षत्रों का झूठमूठ विचार करके विवाह संबंध मिलाने लगी। लोगों

में उसने अपने को गणविज्ञानिका (रम्माल्) होने का ढोंग रचा (स० मा० २।८३-८४)। कंकाली देवतावेश का भी ढोंग साधती थी, पर देवता केवल भेंट ही माँगते थे (स० मा० २।८४)। कुंभा देवी नाम से वह नंगी और पगली बनकर कुत्तों से भेटती थी (स० मा० २।८६)। उसने कटिघंटा नामक नशे में बेहोश एक तपस्वी के सात घंटे चुरा लिए (स० मा० २।८९)। कंकाली का ढोंग एक ही धर्म तक सीमित नहीं था। कहीं वह अपने को योग से परिचित बताती थी, कहीं अपने को ब्रह्मवादिनी कहती थी, कहीं अपना एक मास का उपवास बतलाती थी, कहीं अपने को तीर्थयात्री कहती थी। इस तरह वह सबकी पूजनीय बन गयी। चन्द्र और सूर्यग्रहण की गति बनाकर तथा मूर्खों की श्रद्धनीया बनकर राजमहल में उसने पैसे कमाये (स० मा० २।९४-९५)। राजा को सेना स्तंभन का चकमा देकर लड़ाई की रात सोना लेकर वह चंपत हो जाती थी (स० मा० २। ९४)। कंकाली ने केदार में तर्पण, गया श्राद्ध तथा गंगा स्नान की बात करके और अपना पुण्यफल बंधक रखकर सार्थों से पैसे वसूले (स० भा० २।९७)। एक बार वह डाकुओं को छायाविहीन बनाने का चकमा देकर चंपत हो गयी (स० मा० १।९८)। वह बिलसिद्धि में श्रद्धा रखने वालों के गहने कपड़े छीनकर उन पाताल के लालचियों को अंधे कूओं में ढकेल देती थी (स० मा० २।१००)। वह कहती फिरती थी—मैं हजार वर्ष की हूं, मैं धातुवाद जानती हूं, मेरी वाणी सिद्ध है, त्रिपुररहस्य मेरी मुट्ठी में है (स० मा० २।१०३)।

कलाविलास में भी धूर्तों की खबर ली गयी है तथा अंधविश्वासों की खिल्ली उड़ायी गयी है। गणक या ज्योतिषी राशिचक्र फैलाकर ग्रह चिंता की नकल करते हुए बहुत देर बाद प्रश्न का उत्तर देता है (क० वि० ९।५)। सोने का इच्छुक धातुवादी अपना सब कुछ खोकर दूसरे धनिकों को चौपट करता है। वह नंगा गंदा दुबला बन कर कहता फिरता है—मुझे शतवेधी और सहस्रवेधी सिद्ध हैं। बुढ़ापे में रसायनी धूर्त पुनः बाल उगाने की कथा से गंजों को ठगता है (क वि० ९।७-९)। कोई कामी नारी को वश में करने के लिए तारक और शंकर की आराधना के लिए बेल का होम करके उसके धुएँ से अंधा बन जाता है (क० वि० ९।१०)। खेचरी मुद्रा सुख साध्य है, प्रयत्न से आकाश कुसुम भी हाथ लग सकता है, मच्छरों की हड्डियों में बहुत सी सिद्धियां बसती हैं, काले घोड़े की लीद से बनी बत्ती के सहारे आकाश में इन्द्र के महल देखे जा सकते हैं तथा मेढक की चर्बी पोतकर मनुष्य अप्सराओं का प्यारा बन सकता है—ऐसी अनर्गल बातें कहकर धूर्त लोगों को ठगते हैं (क० वि० ९।११-१३)। कामतंत्र के मूल रति का ज्ञान न होने पर भी वशीकरण गुरु स्त्रियों को रक्षायंत्र बाँटते फिरते हैं (क० वि० ९।१४)। राह चलते रथ्यागुरु हाथ में धन रेखा है, उसका पति चलचित्त है, यह कहकर

कुलवधुओं का हाथ मलते हैं (क० वि० ९।१५-१६) कहीं कन्या के बंधे अंगूठे पर पानी की बूंद में लोगों का भ्रम देखता है पर उसे इन्द्रजाल की ठगहारी का पता नहीं चलता (क० वि० ९।१७)। कहीं नागार्जुन लिखित कक्षापुट में लिखित युक्ति को धूप देने का बुत्ता देकर धूर्त लोगों को ठगते हैं (क० वि० ९।१९)। इन्हें यक्षीपुत्र कहा गया है। मंत्ररहित साधारण धूप से हबुआता हुआ धूर्त लोगों के जूते खाकर जीविकोपार्जन करता है (क० वि० ९।१८)। भस्म रमाए वेश्या, वृद्धा भिक्षुणी, हबुआने वाली ज्योतिषी स्त्री, ये स्त्रियों का चरित्र नष्ट करती हैं (क० वि० ९।२३)।

देशोपदेश में भी जन-विश्वास के अनेक उल्लेख हैं। स्त्रियां और वेश्याएँ वश्य योग (दे० ३।३१) में विश्वास करती थीं। बीमार होने पर भूत की शंका से गुरुओं से सूचक और रक्षा मांगती थीं (दे० ३।३८), मस्तक और कंठ में बहुत से जंतर पहनती थीं और स्वप्नोपश्रुति में विश्वास रखती थीं (दे० ३।३९)। तकलीफ पड़ने पर गणकों से ग्रह-स्थिति पूछी जाती थी (दे० ३।४४)। सिद्ध नष्टच्छाय, अंजनसिद्ध, कुठभक्षी, धातुवादी और भूतावेशी माने जाते थे (दे० ३।४७)। बाल कंकाली देवी (दे० ४।९) और महिष का बलिदान चाहनेवाली महाकाली (दे० ४।२१) की लोग पूजा करते थे। विट रसायन, बिलज्ञान, असंगत योगशास्त्र और गंध युक्ति कथा में पंडित होते थे (दे० ५।२७)। कौल धर्म का अनुयायी जात-पांत को न मानने वाला भट्ट शराब और मछली का भोग लगाता था (दे० ८।११-१३)। जुआड़ी श्वेतार्क गणपति का पूजन करके मछली माँडा लेकर गुरु के पास जाता था (दे० ८।२३)। नर्ममाला में बौद्ध श्रमणिका को वशीकरण मंत्रों की जानकार, जारों की दूती, पतिव्रताओं को बहकाने वाली और गंगा को भी तुच्छ माननेवाली कहा गया है। (नर्म० २।२९-३२)। ज्योतिषी धीवर से वर्षा अवर्षा का कारण पूछने वाला, ग्रह नक्षत्र का अज्ञानी, तीन बरस में तेरा कुछ न होगा, ज्वर और नेत्र पीड़ा होगी, अतर्कित लाभ होगा, मैं तेरा कामलारोग मंत्र से दूर कर दूंगा, ऐसा कहने वाला था। वह धूलि पटल पर राशिचक्र बनाता था (नर्म २।८२-९१)।

क्षेमेन्द्र के समय में भी लोगों का यक्षों पर काफी विश्वास था और उनका लोगों पर आवेश होता था। यक्ष आने-जाने वालों से भरी बावड़ी के पास नहीं फटकते थे। (स० मा० १।१८)। घर में आने में पटु यक्ष बाहर निकालने पर भी पुनः वापिस आ जाता था (स० मा० ५।४९)। यह भी विश्वास था कि नंगी होकर सूने घर में स्नान करते समय स्त्रियों को यक्ष पकड़ लेते थे (नर्म २।९१)। नकली धूप से यक्षी बताने वाले को यक्षीपुत्र कहा गया है (क० वि० ९।२०)।

यक्ष और यक्षिणी-साधना मध्ययुग के बौद्ध और कुछ वैष्णव तंत्रों के अंग बन गये थे। आर्यमंजुश्रीकल्प में यक्ष साधन के लिए तीन मास तक दही भात के होम की विधि है। अंतिम रात को वट वृक्ष की समिधा से पूर्णाहुति देते ही कुबेरादि यक्ष आ उपस्थित होंगे, उनसे प्रति दिन एक यक्ष भेजने को कहना चाहिए। वे दूर से स्त्रियां लाकर सवेरे उन्हें अपने घर पहुँचा देंगे। उनकी पीठ पर चढ़ कर जहां चाहे जाया जा सकता था तथा वे रसायन देते थे। एक सप्ताह तक अशोक पुष्प के होम से यक्षिणी उपस्थित होकर माता, भगिनी या भार्या की तरह व्यवहार करेगी।[२०] यक्षों को बस में करने के लिए गुग्गुल की गुलियों की धूप आवश्यक थी।[२१] जयाख्य संहिता में यक्षिणी साधन का दूसरा उपाय दिया गया है। रेशमी वस्त्र पर गहने कपड़े पहने एक सुंदरी यक्षिणी बनायी जाती थी। फिर उपवास के मंत्र पढ़कर आधी रात में उसे गुगुल की धूप दी जाती थी। सातवीं रात को पट फाड़कर यक्षिणी पैदा होकर कहती थी——मैं तेरी माता बहन या स्त्री क्या बनूं। माता रूप में वह मनचाही वस्तु देती थी, बहिन रूप से खजाने। वह लोक, अलोक और अंतरलोकों की सैर कराती थी तथा दिव्यौषधियां और तरह-तरह के रस देती थी।[२२]

प्राचीन साहित्य में यक्षावेश के अनेक उल्लेख मिलते हैं। क्षेमेन्द्र ने देवतावेश और चेटावेश के जो उल्लेख किए हैं वह आजकल भी पर्वतीय प्रदेशों और उत्तर भारत में जारी हैं। पूजा के बाद देवता अपने मनोनीत के सिर आते हैं और भूत भविष्य की बात बतलाते हैं। अंगूठें पर पानी की बूंद में भूत भविष्य की घटनाएँ देखना, जिसे आज हाजरात करते हैं, लगता है इसी यक्ष पूजा का एक अंग था।

क्षेमेन्द्र के युग में और आज भी यह विश्वास है कि घर में गड़े खजाने की रक्षा नागिन करती थी (स० मा० १।२७, दे० ६।१)।

क्षेमेन्द्र रसायनवादियों से बेतरह नाराज थे। रसायनी और धातुवादियों का मुख्य उद्देश्य सोना और औषधियाँ बनाना था। अलबीरूनी ने भी इस कीमियागरी की जांच पड़ताल की, पर इस विद्या के गुप्त होने से उसे विशेष पता न चला। फिर भी बातचीत से उन्हें यह मालूम हुआ कि भारतीय रसायनशास्त्री धातुवादी थे। अलबीरूनी

---

२०. आर्यमंजुश्रीकल्प, पृ० २९३-४९, गणपतिशास्त्री द्वारा संपादित, त्रिवेन्द्रम, १९२०।

२१. वही, पृ० २९७।

२२. जयाख्य संहिता, पृ० ७७-८५, एंबर कृष्णामाचार्य द्वारा संपादित, बड़ौदा, १९३१।

कहते हैं—कीमियागरी की तरह ही एक विशेष शास्त्र हिन्दुओं की अपनी देन है जिसे वे रसायन कहते हैं। यह कला अधिकतर वनस्पतियों से औषधियों के निर्माण तक सीमित थी। रसायन सिद्धान्त के अनुसार, उससे असाध्य रोगी भी निरोग हो जाते थे, जवानी वापिस मिलती थी, सफेद बाल काले हो जाते थे, इन्द्रियां सतेज हो उठती थीं, काम शक्ति जाग उठती थी और आयु काफी बढ़ जाती थी। अलबीरूनी का रसायन पर विश्वास न था।[२३] उनके अनुसार रसायनशास्त्र से सोना बनाने के लोभी, बालकों को भी मारने में नहीं हिचकिचाते थे।[२४]

रसायन साधन का उपाय जयाख्यसंहिता[२५] में दिया गया है। एक युवक ब्राह्मण अथवा क्षत्रिय का शव लाकर सूने घर में उसे नहलाकर पूजना चाहिए। फिर शव को बैठा कर उसके सामने जप करना चाहिए और एक सौ बार सरसों फेंकना चाहिए। इसके बाद शव उठ कर, मैं क्या करूं, पूछता है, रसायन बनाता है और मनचाही बात पूरी करता है।

क्षेमेन्द्र ने रसायनिक अथवा धातुवादी का जीता-जागता चित्र खींचा है: वह अपना सब खोकर दूसरों को चौपट करता है। कमजोर और गलीज बना हुआ कहता फिरता है—मुझे शतवेधी और सहस्रवेधी सिद्ध हैं। गंजों को बाल उगाने की बात कहकर भी वह उन्हें ठगता है (क० वि० ९।७-९)।

धातुवादी योगों में सुवर्ण घटित पारद बनाने का योग भी था (स० भा० १। २९-३०)। वह बराबर लोगों को सोने से भरने की बात करता था और अतिसार रोग को मलशुद्धि मानता था (दे० ७।२०-२२)।

क्षेमेन्द्र ने जिन धातुवादियों को कोसा है उनकी हँसी उद्योतन सूरि ने भी उड़ाई है। कुवलयमाला में धातुवाद संबंधी अनेक परिभाषाएं आई हैं जिनका समझना आसान नहीं है। कथा प्रसंग इस प्रकार है। कुवलयमाला के साथ कुवलयचंद एक बार विंध्याटवी में रात बिता रहे थे। रात के दूसरे पहर में कुवलयचंद ने एक गुफा में आग जलते देखी। आग का कारण लौकिक अथवा अलौकिक था यह जानने के लिए कुवलयचंद उस गुफा की ओर अग्रसर हुए। वहाँ छिपे-छिपे उन्होंने कुछ लोगों को बातचीत करते देखा। एक ने कहा—"अरे, आग की लपटें तो देख। क्या वे पीली लाल सफेद अथवा काली हैं?" इस पर दूसरे ने कहा—"अरे, इसमें देखने की क्या बात है। ज्वाला के निम्नलिखित

---

२३. सचाऊ, अलबेरूनी, भा० १, पृ० १८८-१८९।

२४. वही, भा० १, पृ० १९३।

२५. जयाख्य संहिता, २६।७२-७६।

लक्षण हैं। तांबे से वह लाल होती है, सोने से पीली, चांदी से सफेद, लोहे से काली, कांसे से निर्धूम। जितना ही मंहगा द्रव्य होता है उतनी ही सुंदर ज्वाला होती है और जितना ही सस्ता द्रव्य होता है उतनी ही गंदली ज्वाला।" एक बोल उठा—"अरे यह अग्नि-कर्म निपुण ही जाँच सकते हैं। राधा-वेध (नाचती पुतली की आँख वेधना) के समान यह दुर्लक्ष्य है। राँगा कोमल आग से पिघलता है, तेज भभकती आग से सोना का स्फोटन होता है पर मृदु बंग की विधियाँ भी बहुत से लोग नहीं जानते। जब घरिया के अंत से आग की तरह धातुरस निकले वही ठीक है। पर स्निग्ध ज्वाला धातुपाक के लिए ठीक नहीं।"

राजकुमार कुवलयचंद को फौरन पता चल गया कि तृष्णा-तरु के पिशाच की तरह गिरि गुहा में घूमनेवाले धातुवादी थे। कुमार ने उनमें खलबली न डालने का निश्चय किया और छिपे-छिपे ही उन्हें देखता रहा। वे आपस में बोले—"अब धातु के परिपाक का समय है। धातु निषेक डाल कर अब द्रव्य बाहर निकालो।" यह कह कर उन्होंने घरिया में चूर्ण योग डाला, डालकर उसे बाहर निकालकर उसमें निषेक डाला। पर जब घरिया खोली गयी तो उसमें से केवल तांबा निकाला। धातुवादियों में निराशा फैल गयी और वे शोकाकुल होकर कहने लगे—"हमारे जीने को धिक्कार। अरे भट्टो, कहीं सामग्री का जुगाड़ तो ठीक नहीं था जिससे सोने की जगह तांबा बन गया।" एक ने कहा—"अरे यह योग आजमूदा है, यह सुप्रसिद्ध क्षेत्र है, उपाध्याय कुशल है, नरेन्द्र (कीमियागर) निपुण है, ओषधियां सरस हैं, लग्न शुभ है, हमने बलिकर्म कर लिया है, केवल हमारा पूर्व जन्म का पुण्य नहीं है।"

रो-धोकर जब वे अपने गांव जाने को तयार हुए तब कुवलयचंद ने उन्हें जाने से रोका। एकाएक उसे देखकर धातुवादी घबरा उठे। कुमार ने संबोधन करके कहा—"अरे भागो मत। मैं भी नरेन्द्र हूं। कौतूहलवश यहां आ गया हूँ। मैं राक्षस नहीं।" यह कह कर कुमार ने 'सिद्धि सिद्धि' कहा। उन्होंने 'सुसिद्धि सुसिद्धि' कह कर उसका स्वागत किया और वासस्थान पूछा। कुवलयचंद ने अपने को अयोध्यावासी बतलाया। उन्होंने उसकी बात पर विश्वास करके पूछा—"आप अवश्य सिद्ध हैं, रसबद्ध हैं अथवा अर्थक्रियावसिद्ध हैं।" अपने को सिद्ध साबित करने पर जमात ने कहा—"आप जरूर सिद्ध हैं क्योंकि सर्वलक्षणयुक्त, गंभीर-सत्व तेज सम्पन्न-यथेच्छा भोग करने और देनेवाला ही सिद्ध होता है। क्या आपने साहस अंजन, आयु मंत्र-तंत्र, यक्षिणी, योगिनी, राक्षसी और विद्याधरी सिद्ध किया है? क्या आप विद्याधर हैं? आप हमें रोक क्यों रहे हैं?" कुवलयचंद ने अपने को जादूगरी से दूर बतलाया पर धातुवादियों ने इस पर विश्वास करने से इन्कार कर दिया। उनसे पिंड छुड़ाने के लिए कुवलयचंद ने एक कहानी गढ़ी

जिसके अनुसार एक मंत्र से उसने यक्षिणी कुवलयमाला को सिद्ध किया था। धातुवादियों से पूछने पर पता चला कि सोना बनाने में उनकी सिद्धि बेकार चली गयी थी। इस पर कुवलयचंद ने सोचा—नहीं जानता कि किन द्रव्यों और निषेकों से धातुपाक होता है। फिर भी अपनी होशियारी दिखलाने को उसने कहा—"अरे यहीं खेत है, यहां कैसे पिंडी रोपी, प्रतिपाक के निषेक की क्या व्यवस्था की ?" इसके बाद जैन धर्म की श्रेष्ठता प्रतिपादन करने के लिए उद्योतन सूरि ने कुवलयचंद द्वारा सोना बनाने की बात कही है।[२६]

इसी प्रकरण में कुछ आगे चलकर कुवलयचंद ने कुवलयमाला से तीन तरह के धातुवादियों यथा किरियावाइ (क्रियावादी), णरिंद (नरेन्द्र) और धाउव्वाई (धातुवादी) का उल्लेख किया। क्रियावादी योग-युक्ति का प्रयोग करते थे, नरेन्द्र रसबंध (पारदबंध) में निपुण होते थे और जो क्षेत्र से धातु लेकर खार युक्ति से आग में तपाते थे उन्हें सब लोग धातुवादी कहते थे। क्रिया में अनेक भेद होते थे यथा निर्बीज, पादबीज, अर्द्धक्रिया, प्रगट पाद तथा उत्कर्षित। हेमतार भिन्ना में दो विकल्प होते थे यथा काष्ठ क्रिया (जिसमें काष्ठौषधियों का प्रयोग होता था) और सरसा (जिसमें पारद का प्रयोग होता था)। धातुमूल क्रिया में पाकनिषेक द्रव्य एक होता था अथवा मिला हुआ। नरेन्द्रों की भाषा में निम्नलिखित शब्द आते थे—नाग, गंधक, घोस (कांसा), तार हेमनिक्खा, सीसा, त्रपुष, तांबा, कांसा, सोना-रूपा, लोहा, आर (पीतल), सूययकुण्डी (?) कलक, नागनी-भ्रमरादि।[२७]

मध्यकाल में सिद्धों की अलौकिक शक्तियों पर, यथा, उनके छायाविहीन होने, अंजन सिद्ध, धातुवादी और भूतावेशी होने पर लोगों का विश्वास था और उनके करिश्मों के लोग कायल थे। गुह्य समाजतंत्र[२८] के अनुसार सिद्ध अनेक समयों की सिद्धि से जहां चाहे जा सकता था, विद्याधरों का राजा बन सकता था, गुम हो सकता था, एक से हजारों को बोध दे सकता था तथा सब सिद्धियों को प्राप्त कर सकता था। वह सब कुछ सुन सकता था और सबके मन की बात जान सकता था।

सिद्धों की जादूगरी में अंजन का अपना स्थान था। जयाख्य संहिता[२९] के अनुसार

---

२६. उद्योतन सूरि विरचित कुवलमाला, पृ० १९५-१९६, डॉ० ए० एन० उपाध्ये द्वारा संपादित, बंबई, १९५९।

२७. वही, पृ० १९७-१९८।

२८. गुह्य समाजतंत्र, पृ० ५७, श्री बी० भट्टाचार्य द्वारा संपादित, बड़ौदा, १९३१।

२९. जयाख्य संहिता, २८।९८-१२७।

नेत्र मंत्र के साधन के बाद सोने की सलाई से अँजन आंजने से जमीन में गड़ी निधियां नागलोक, पाषाण और वृक्षों में रहने वाली यक्षिणियां और यक्ष सिद्ध होते थे। आकाशचारी सिद्ध को डाकिनी, भूत, बेताल और सारा संसार दिखलायी देता था। शत्रु की गतिविधि देखी जा सकती थी। आर्यमंजुश्रीकल्प के अनुसार श्रोतांजन, नीलोत्पल, कुष्ठ, और चंदन एक साथ एक तांबे के बरतन में रखकर चन्द्रग्रहण के समय जप करने से उसमें धुआँ उठने पर उसका अंजन लगाने से मनुष्य लुप्त हो सकता था।[३०] अंजन की साथी गुलिका थी। जयाख्य[३१] के अनुसार वह रोचना, केसर, हड़ताल, मैनसिर और चक्रा के मेल से बनती थी तथा एकादशी के रोज संपुट में सितार्क बिछा कर बासने तथा दश अयुत मंत्रपाठ के बाद गोली हाथ में लेने पर जहां चाहे पहुँचा जा सकता था। गुह्य समाजतंत्र (पृ० ९८-९९) के अनुसार संपुट में विष्ठा रखकर एक सौ बार फूंक कर मनुष्य अथवा कुत्ते या घोड़े का मांस कपूर चंदन रोली अगर केसर इत्यादि में मिलाकर गोली बना कर उसे त्रिलोह से वेष्टित करके मुँह में रखने से व्यक्ति अंतरध्यान हो जाता था।

मध्यकालीन मूर्खताभरी दुनिया में बिलसिद्धि के चमत्कार पर लोगों का प्रभाव था। 'समयमातृका' में बिलसिद्धि के बहाने गहने कपड़े लूट कर लोगों को अन्धे कुएं में ढकेल कर मार डालने की बात कही गयी है (स० मा० २।१००)। इसी बिलसिद्धि को बाण ने हर्षचरित में असुर विवर प्रवेश कहा है और इसकी साधना करने वाले आचार्य वातिक कहलाते थे। असुर विवर में प्रवेश करने के लिए भूमि में बने किसी गड्ढे में उतर कर साधना की जाती थी। जयाख्य संहिता में इसे बैखरी सिद्धि कहा गया है।[३२] विवर के द्वार पर थाला लेपकर तिल, घी, गुगूल, खीरनी की लकड़ी और दूब से विधिपूर्वक होम होता था। एक लाख आहुतियों के बाद वैखरी सिद्ध हो जाती थी और यजमान पाताल पहुँच कर अमृत पीता था तथा नागकन्याओं के साथ सानंद भोग करता था। जया की मंत्रसिद्धि से भी बिलसिद्धि होती थी। खैर के अभिमंत्रित मूसर से बिल द्वार पर जाकर आठ बार ठाँका जाता था। ऐसा करते ही पाताल का रास्ता खुल जाता था। वहां पहुँच कर वह दानवों पर विजय प्राप्त करके अमृत पीता था और नागकन्याओं के साथ भोग करके उसी रास्ते बाहर निकल आता था।[३३] मंजुश्रीमूलकल्प के

---

३०. आर्यमंजुश्री, पृ० २९५।

३१. जयाख्य संहिता, २६, ६७-७१।

३२. वही, पृ० २६, ५६-५९।

३३. वही, २६।१२४-१३८।

अनुसार मंजुश्री के प्रभाव से कूप और सुरंगों के रास्ते पाताल पहुँचा जा सकता था।[३४]

मध्यकाल में यह भी विश्वास था कि मंत्र से सेना स्तंभन किया जा सकता था (स० मा० २।९६)। इस विश्वास के फलस्वरूप कितनी हिन्दू सेनाएं हारी होंगी कहा नहीं जा सकता। इतिहास इस बात का साक्षी है कि सिंध में देबल की लड़ाई में (७११ ई०) मुहम्मद बिन कासिम को पता चला कि शहरपनाह के बीच एक मंदिर था जिसके रक्त पताका स्तंभ के मूल में ब्राह्मणों ने सेना रोकने के लिए सेना स्तंभन मंत्र गाड़ रखा था। मुहम्मद ने तुरत बलिस्ता के प्रधान को स्तंभ मूल को तोड़ देने की आज्ञा दी। जादू गायब हो गया और अरब सेना के हाथ विजय रही।[३५] गुह्य समाजतंत्र के अनुसार माहेन्द्र मण्डल के बीच यमान्तक की कल्पना से सेनास्तंभन होता था।[३६] जयाख्य के अनुसार युद्ध के समय अभिमंत्रित सरसों फेंकने से शत्रु सेना गरमी से व्याकुल हो जाती थी और उसे आसानी से मार भगाया जा सकता था।[३७]

तत्कालीन विश्वासों में वशीकरण और मोहन मंत्रों का भी स्थान था। विश्वास था कि बाल पर वशीकरण चूर्ण फेंकने से स्त्रियां वश में हो जाती थीं (स० मा० १।१९)। वेश्याओं की कलाओं में वशीकरण औषधियों का प्रयोग भी है। (क० वि० ४।१० दे० ३।३१)। वशीकरण के जंतर बाँटने वाले खास गुरु होते थे (क० वि० ९।१४) तथा बौद्ध भिक्षुणियां वशीकरण मंत्रों की जानकार मानी जाती थीं (नर्ममाला, २।२९-३२७)। जयाख्य संहिता[३८] के अनुसार अपने बायें हाथ से सात बार अभिमंत्रित फूल स्त्री के हाथ में देने अथवा लेने से वशीकरण होता था। चन्द्रमण्डल में स्थित मंत्र के ध्यान से क्रोधी वश में होता था तथा अभिमंत्रित तिलक लगाने से राजदरबार में आदर होता था।

यों तो क्षेमेन्द्र ने सभी धर्मों के बाह्याचारों पर आक्षेप किये हैं पर तत्कालीन कौलाचार पर उनका विशेष रोष था। देशोपदेश में कौलाचार्य की हँसी उड़ाई गयी है। वह राग-द्वेष, मोह से भरा तथा चालबाज है। पैसे की बरबादी ही उसके लिए दीक्षा है। हिचकी लेते हुए वह कहता है—कलयुग में मोक्ष सुलभ है। उसके पास

---

३४. मंजुश्रीमूलकल्प, पृ० १७६।

३५. कैंब्रिज हिस्ट्री ऑफ इंडिया, भाग २, पृ० २-३।

३६. गुह्य समाज, पृ० ६६-६७।

३७. जयाख्य, २६।८६-८८।

३८. वही, २६।२४-३०।

जाने वालों में सब कुछ लूट कर यज्ञ कराने के इच्छुक कायस्थ, बेवकूफ पति की छूआछूत में विश्वास करने वाली दीक्षिता पत्नी, जात-पांत में अविश्वासी, मांस भोजी और शराबी ब्राह्मण, लुटेरा और गंदा बनिया (दे० ८।१-१६) मूर्ख कवि (दे० ८।१७-१९) धातुवादी (दे० ८।२०-२२), जुआड़ी (दे० ८।२३-२५), कोरे भगत (दे० ८।२६), यज्ञ के माल पर मौज उड़ाने वाले खुशामदी चेले (दे० ८।२७-२९), बेसुरा पर अभिमानी बीनकार (दे० ८।३०-३२), ठग वैद्य (दे० ८।३३-३५), कर्ज से दबा गंदा निर्गुट (दे० ८।३६-३८), व्याकरण के ज्ञान से खफा पंडित (दे० ८।३९-४२), भ्रष्ट लेखक (दे०-८।४३-४५), जटाधारी परवेश्यागामी शैव साधु (दे० ८।४६-४८) तथा गुरु को आत्म-समर्पण करनेवाली विधवाएं होती थीं (दे० ८।४९-५८)।

कायस्थ द्वारा यज्ञ के लिए आहूत कौलाचार्य के स्वरूप वर्णन से भी क्षेमेन्द्र की कौल धर्म पर अनास्था का पता चलता है। गुरु ठग, लालची और स्त्रीगामी था। उसके आधे सिर पर सिंदूर पुता था और बाकी में बिन्दु और उपबिंदुओं का तिलक। हाथ में फूल का गुच्छा था। उसकी जूड़ी हलकी और कानों में केसर पुती थी। उसकी ठुड्डी बड़ी थी, आँखें शीशे की तरह थीं और बोली तोतली थी। वह शराब का घड़ा क्षण भर में समाप्त कर सकता था। मांस और मदिरा की गंध से वह गंदा बना रहता था (नर्म २।१००-११३)। आते ही उसने यज्ञ के समान का पुर्जा लिख दिया। यज्ञ के समय शिष्यों ने मंडल पूर दिया और अनेक ठगों से घिरे गुरु ने यज्ञ आरंभ कर दिया (नर्म २।११०-२०)। नियोगी की बाल विधवा भगिनी याग परिचर्या में लग गयी (नर्म २।२१-४५)। दीक्षा के समय भट्ट तापस, वेश्या, शल्यहर्ता और एक बूढ़ा बनिया अपने-अपने काम से गुरु के पास आये (नर्म २।४६-८५)। रात में गुरु ने शिष्यों के साथ भोजन करके शराब पी और यज्ञार्थियों ने प्रसाद लिया। बाद में भैरवी चक्र का समा बंध गया और मतवाले स्त्री पुरुष नाचने गाने और रति क्रीड़ा में संलग्न हो गये (नर्म २।७६-९०)।

कौलाचार अथवा वाम मार्ग के मुख्य सिद्धान्तों और उत्तर भारत में उसके प्रसार की चर्चा पहले हो चुकी है और प्रबोध चन्द्रोदय ने उस मत के बारे में जो कुछ लिखा है उसका भी उल्लेख कर दिया गया है। कौल-कापालिक तांत्रिक और शैव धर्मों के अंतरगत बीभत्स फिरके थे। कर्पूर मंजरी (अंक १, २२ से) में भैरवानन्द अपने को कौल कहता है और अपने धर्म का सिद्धान्त कहता है—

> **रंडा चंडा दिक्खिया धम्मबारा भज्जं मंसं पिज्जए खज्जए अ**
> **भिक्खा भोज्जं चम्मखण्डं च सेज्जा कौलो धम्मो कस्स णो भाइ रम्मो**

—विधवा, दीक्षिता धर्मदारा, मद्य मांस का पीना खाना, भिक्षा भोजन, चर्म खंड पर सोना, ऐसा रम्य कौलधर्म किसे नहीं भावेगा।

देवसेन ने भावसंग्रह में भी कौलों का कर्पूरमंजरी में वर्णित जैसा ही चित्र खींचा है—

रंडा मुंडा थंडी सुंडी दिक्खिदा धम्मदारा,
सीऐकंता कामासत्ता कामिया सादियारा
मज्जं मंसं मिट्ठ भक्खं भक्खियं जीव सोक्खं च,
कउले धम्मे विसये रम्मे तंजिहो सग्गमोक्खम्।

यामुनाचार्य रचित आगम प्रामाण्य (करीब १०५० ई०) के अनुसार कापालिक यज्ञोपवीत धारण करते थे, शरीर में भस्म रमाते थे, चूडामणि, कुंडल और हार पहनते थे। नर कपाल और दंड ग्रहण करते थे। क्षेमीश्वर रचित चंड कौशिक के चतुर्थ अंक में कापालिक के वेष में धर्म अवतरित होता है। उसका वेष तो आगम प्रामाण्य के कापालिक जैसा ही है पर उसमें उसकी सिद्धि, बेतालों पर अधिकार, अंजन, गुलिका तथा रसायन और धातुवाद की तारीफ की गयी है।[३९]

सोमदेव के अनुसार कुलाचार्य अथवा तांत्रिकमत सब तरह के विहित और अविहित खान-पान को मोक्ष का साधन मानता था। मांस मदिरा के सेवन के उपरान्त बायीं ओर बैठी धर्मदारा के साथ शिव पूजा की जाती थी।[४०]

मालती माधव अंक प्रथम के टीकाकार जगद्धर के अनुसार महाव्रती और कापालिक एक थे। वे अपने मनोरथों की पूर्ति के लिए भूतों को नरमांस का उपहार देते थे। अभिलेखों से पता चलता है कि महाव्रतियों का अच्छा संगठन था। पुलकेशी के भतीजे नागवर्द्धन के लेख से पता चलता है कि इगतपुरी के पास एक ग्राम का दान कपालेश्वर की पूजा और वहां रहने वाले महाव्रतियों के भिक्षा के लिए दिया गया। श्रीपर्वत कापालिकों का मुख्य पीठ था।

मध्य युग में मंदिरों, तीर्थों और ब्राह्मणों की बड़ी महत्ता थी। देवमंदिर केवल आराधना के स्थल ही न रह कर कला संस्कृति तथा कुछ सामाजिक संस्कारों के क्षेत्र बन गये थे। अधिकतर देव मंदिरों के पास देवोत्तर संपत्ति के सिवा और भी काफी मालमता होता था जिसे समय-समय पर शासक और उनके अधिकारी हथियाने में

---

३९. यशस्तिलक एंड इट्स कल्चर, पृ० ३५५-५६।
४०. वही, पृ० २०४।

आनाकानी नहीं करते थे। क्षेमेन्द्र ने कश्मीर में प्रचलित देव मंदिरों की व्यवस्था और समय-समय पर उनकी लूट का उल्लेख नर्ममाला में किया है। कुछ अधिकारी तो देवताओं को दाना-पानी का मुँहताज बना देते थे (नर्ममाला १।१३-१४)। वे गायों का भोजन और नमक तक काटने में बाज न आते थे (नर्म १।२६), देवों और नागों की नित्य और नैमित्तिक वृत्तियों को रोक देते थे (नर्म, १।२८), मंदिर लूटने के बराबर चक्र रचते रहते थे (देवगृहोच्चाटन चक्रिक—नर्म १।४७)। खुफियों की मदद से उन्हें पता लगता था कि देव मंदिरों की संपत्ति, वस्त्रालंकार इत्यादि की क्या हालत थी (नर्म १।५२-५३)। गृहकृत्य की आज्ञा से परिपालक बहुत से मंदिरों पर दखल जमा लेता था (नर्म १।६५) तथा वसूली के लिए प्यादों के साथ उन पर धावा बोल देता था। मंदिरों के धनिकों के भाग जाने पर वह लोगों के घर लूट लेता था (नर्म १।६५-७०)। इस लूट में गंजदिविर का भी हाथ होता था। एक ऐसे ही गंजदिविर का उल्लेख क्षेमेन्द्र ने किया है। भट्टों और भागवतों के बीच छत्र भंग की व्यवस्था के लिए वह मध्यस्थ बन कर आया। उसने पहुँचते ही पहले तो छमाही वसूली की बात चलायी और फिर मंदिर के परिपालक से कहा—मेरे और आपके कुलगुरु एक होने से मैं आपकी मदद करना चाहता हूँ। मंदिर की प्रबंध समिति (चक्रिका) के सदस्य सब देवद्रव्य और सेवकई (पार्षदी भुक्ति) हड़प जाते हैं। अब जो कुछ बचता है उसे आप हड़प जाइए। मुझे ही देखो, पहले मैं इस देव मंदिर में एक ताम्रपात्र लाया, बाद में उसी से क्रमशः एक घंटा, घटी, घंटिका और अंत में मजीरा बने और इस तरह पुराने घंटे का कुछ भाग बच गया। शिव मंदिर में बहुत से अन्न के कोठार हैं, उनकी आप खरीदी बेची करिए, बाकी देख लूँगा (नर्म १।८९-९५)। परिपालक ने उसकी सलाह मानकर मंदिर को लूट-लाट कर खुक्ख कर डाला।

क्षेमेन्द्र के उल्लेखों से पता चलता है कि कायस्थों और ब्राह्मणों में पटरी नहीं खाती थी और अपने स्वत्वों की रक्षा के लिए ब्राह्मण बहुधा भूख-हड़ताल कर देते थे। विजयेश्वर के मंदिर में भूख-हड़तालियों की मृत्यु के बाद उन्हें घसीट कर फेंक देने की बात आती है (नर्म १।३९-४१)। भूख-हड़तालियों को मनाने के लिए राज्य जो वृत्ति देता था उसे भी परिपालक हजम कर जाते थे (नर्म २।९८)।

ताकतवरों के विरुद्ध अपनी बात मनवाने के लिए कमजोरों की भूख-हड़ताल (प्रायोपवेश) का उल्लेख कल्हण ने राजतरंगिणी में अनेक बार किया है।[४१] सैनिक

४१. तरंग, ४।८२, ९९; ५।४६८; ६।२५, ३३६, ३४३; ७।१३, १०८८, ११५७; ८।५१, ११०, ६५८ इत्यादि।

अथवा नागरिक समूहों के हाथ में भूख-हड़ताल विषमताओं को दूर करने के लिए एक मजबूत हथियार था पर ब्राह्मण और पुरोहितों द्वारा प्रायोपवेशों की कल्हण ने हँसी उड़ाई है। अभी हाल तक ब्राह्मणों द्वारा धरना देकर अपनी बात मनवाने की प्रथा जारी थी। पर इन घटनाओं में बहुधा राजनीतिक कारण भी आ जाते थे। यशस्कर को राज्य दिलवाने के लिए ब्राह्मणों ने प्रायोपवेश किया, भूख-हड़ताल करके उन्होंने दिद्दा (९८०-१ से १००३) को तुंग को हटाने के लिए बाध्य किया। प्रायोपवेश के कारण ही हर्ष ने (१११२-११२०) ब्राह्मणों को विष्टि से मुक्ति दी। जब सुस्सल (१११२-११२०) राजकर्म से विमुख हुआ और डामरों का अत्याचार असहनीय हो गया तो राजा को ठीक रास्ते पर लाने के लिए ब्राह्मणों ने भूख-हड़ताल की।

मंदिरों की लूटपाट और मूर्तियों को बेचना और गलाना केवल कश्मीर तक ही सीमित नहीं था। यशस्तिलक चंपू[४२] में एक मंत्री के विरुद्ध यह अभियोग लगाया गया है कि उसने देवताओं की मूर्तियाँ गलवा कर उनकी जगह साधारण मूल्य की मूर्तियाँ रखवा दीं, यहाँ तक कि एक मूर्ति बेच कर उसने एक उत्सव चला दिया। कश्मीर में तो यह प्रथा बहुत साधारण हो गयी थी। शंकरवर्मन् (रा० त० ५।१६९) ने साठ मंदिर तोड़े। कलश ने ताम्रस्वामी नामक सूर्य की तांबे की मूर्ति हटवा दी और विहारों की मूर्तियाँ लूट लीं (रा० त० ७।६९६)। हर्ष के समय तो मूर्तियों की लूट अपनी चरम सीमा पर पहुँच गयी थी। उसने मूर्तियां लूटने के लिए एक खास अधिकारी की नियुक्ति की जिसका नाम देवोत्पाटन नायक था (रा० त० ७।१०८७)।

देवालयों की लूट देश के इतर भागों में भी प्रचलित थी। यशस्तिलक चंपू[४३] में कहा गया है कि यशोधर के मंत्री ने अग्रहार यानी ब्राह्मणों को दान में दिये ग्राम और देवयोग यानी देवता के ग्राम, क्षेत्र इत्यादि अपना लिए। कश्मीर में तो यह प्रथा खूब चलती थी। राजतरंगिणी (५।८८) के अनुसार अवंतिवर्मन के मंत्री शूर ने भूतेश के देवग्राम के लूटने के अपराध में एक डामर को फाँसी दिलवा दी। पर कश्मीर के कुछ राजे जैसे शंकरवर्मन् (८८३-९०७), कलश (१०६३-९९) और हर्ष (१०९९-११०१) स्वयं देव संपत्ति लूटने के दोषी थे। कल्हण को इस बात का दुःख था कि हर्ष के गुणी और वृद्ध मंत्री गौरक ने अर्थ नायक का पद स्वीकार करके देव संपत्ति छीन ली (रा० त० ७।११०३-०४)।

---

४२. हंडीकी, वही, पृ० ११८।

४३. वही, पृ० ११७।

(५)

इतिहास इस बात का साक्षी है कि मध्यकालीन भारत में शासन व्यवस्था की कमजोरी और मजबूती का श्रेय स्वयं राजा को था। अगर राजा चरित्र का दृढ़ हुआ तो शासन व्यवस्था सुचारु रूप से चलती थी, अगर वह विलासी और कमजोर हुआ तो अराजकता का चारों ओर बोलबाला हो जाता था तथा राज कर्मचारी और सामंत अपनी मनमानी करने लगते थे। जहाँ तक कश्मीर के इतिहास का संबंध है चरित्रवान और दृढ़ प्रतिज्ञ शासक कम ही हुए। कश्मीर के अधिकतर शासक चारित्रिक कमजोरियों के शिकार थे जिनके फलस्वरूप राज कर्मचारी मनमानी करने में जरा भी नहीं चूकते थे। अर्थ सब को भाता है पर निरंकुश राजाओं के लिए तो वह जीवन की तरह आवश्यक था। इस अर्थ का प्रधान स्रोत था प्रजा से तरह-तरह के कर वसूल करना और उसके वसूलने में बड़ी ही सख्ती से काम लेना। राजा की अर्थलोलुपता का प्रभाव उसके कर्मचारियों पर पड़ता था और वे प्रजा के लूटने के अनेक नये नये तरीके ईजाद करते थे। जो कुछ मिलता था उसमें से अधिक हिस्सा कर्मचारियों की जेब में चला जाता था। उनकी दृष्टि में ग्रामों को उजाड़ कर निर्धन करने वाले, दंड प्रतिषेध करने वाले को मार डालने वाले, सब कुछ लूटने वाले नियोगी ही काम के आदमी थे (नर्म० २।४२-४३)। उनकी तो कहावत ही बन गयी थी—पीड़िता प्रस्नवन्त्येव प्रजा गुग्गुलबीजवत् (नर्म० २।४४)—गुग्गुल के बीज के समान प्रजा दबाने पर ही तेल देती है। राजाओं की क्रूरता और लालच, डामरों की बगावत तथा कर्मचारियों के उत्पीड़न से संत्रस्त प्रजा को लक्ष्य करके क्षेमेन्द्र ने कहा—

> खलेन धनमत्तेन नीचेन प्रभविष्णुना।
> पिशुनेन पदस्थेन हा प्रजे क्व गमिष्यसि। —दे० १।१७

राजकर्मचारियों में क्षेमेन्द्र के सबसे बड़े आक्षेप के निशाने कायस्थ हैं। क्षेमेन्द्र के काव्यों में कायस्थ किसी जाति विशेष का द्योतक न होकर प्रायः राजकर्मचारियों का द्योतक है जिनमें गणक, परिपालक, लेखकोपाध्याय, गंजदिविर, नियोगी, दिविर, गृह-कृत्य इत्यादि सभी वर्ग के कर्मचारी आ जाते हैं। कायस्थों के प्रति क्षेमेन्द्र की कुटिल दृष्टि के कई कारण हो सकते हैं। साधारणतः राजादेश के पालन कराने का भार राज-कर्मचारियों पर होता था और कर इत्यादि वसूल करने में जो कड़ाई बरती जाती थी उसका सारा दोष उसके माथे पड़ता था। इसके सिवाय मध्ययुग में ब्राह्मणों को अग्रहार, पार्षदी भुक्ति, यज्ञादि से काफी आमदनी होती थी। राजाज्ञा से अथवा अपने मन से, जब कायस्थ उनके इन वसीलों को छीनने का प्रयत्न करते थे तो दोनों की शत्रुता

होना अवश्यंभावी था। क्षेमेन्द्र का कायस्थों के प्रति रोष शायद इसी भावना का द्योतक है। पर इस रोष में चाहे जातीय भावना कितनी ही छिपी हो, सत्यांश भी काफी है।

कलाविलास के पंचम सर्ग में तो कायस्थों के दुर्गुणों की तालिका दी हुई है। मोह कायस्थों के मुख और लेख में बसता है। उसके देखते ही भरी फसल नष्ट हो जाती है। जनता के लिए वह मानो काल है। कायस्थ रूपी कालपुरुष लाठियों से लोगों को पीट कर हिसाब लगाते हुए भूर्जपत्र लिए हुए घूमते रहते हैं। कायस्थ की कलम से झरती हुई मसि की बूंदें मानो राज्यश्री के आंसू हों। उसके कुटिल अंकन्यास लोगों को ठगते हैं तथा उसकी भूर्जपत्र पर लिखी टेढ़ी-मेढ़ी लिपि (कुटिलालिपि) मानो कुंडली मारे सर्प की तरह लगती है। चित्रगुप्त का वह बुद्धिमान वंशज रेखा मात्र के हेर फेर से सहित को रहित कर देता है। उसकी गुप्त कलाओं का कोई पता नहीं पा सकता। टेढ़ी लिपि लिखना (वक्र विन्यासकला), गुप्त आँकड़ों की जानकारी (सकलांक निमीलन कला), हर बात में दखल देना (सततप्रवेश), लोगों को अपने बस में करना (संग्रहलोक); व्यय बढ़ाना, लेने वाली वस्तु को पहले से ही बाँटने की ब्योंत बाँधना (ग्राह्यपरिच्छेद कला), कर्ज लेना-देना (देयवनादान), बाकी निकालने की तरकीब (शेषस्यविवेककला), जमा-जत्था हजम करना (संकलितराशिसर्वभक्षणकला), उपज छिपाना (उत्पन्न-गोपनकला), माल खराब कर देना और गायब कर देना (नष्टविशीर्णप्रदर्शन कला), खरीद कर खाने की नकल करना (क्रयमाणैर्भरणकला), योजनाएं दिखलाकर चिट्ठे में घाटा दिखलाना (योजनचर्यादिभिः क्षयकला) तथा कागज-पत्र जला देना (क० वि० ५१-१८) कायस्थ की कलाएँ हैं।

क्षेमेन्द्र का कायस्थों के विरुद्ध घृणा का स्रोत नर्ममाला में पूरी तरह से बह निकला है। कायस्थों की उत्पत्ति के संबंध में भी क्षेमेन्द्र ने एक कथा गढ़ी है। विष्णु द्वारा दैत्यों के हार जाने पर दैत्यों के गणनापति ने वैतरणी के किनारे घोर तप किया। उनकी तपश्चर्या से प्रसन्न होकर स्वयं कलि ने उसे कलमास्त्र देखकर वरदान दिया कि वह पृथ्वी पर जाकर देवताओं और ब्राह्मणों का सर्वनाश कर दे। उसका नाम दिविर इसलिए पड़ा कि वह दैत्यों के नष्ट होने पर आकाश (दिवि) में रोया (रोदित)। पृथ्वी पर उसका जन्म कसाई और कुदाल चलानेवाले की स्त्री से हुआ। शरीर में स्याही पोते, सेवा काल में चापलूस, लालची और ठग उसके लड़के दिविर पृथ्वी में फैल गये। उनके हाथों में स्याहीभरी कलम और भूर्जपत्र तथा बगल में बस्ते होते थे। स्वयं कायस्थ ने सब को लूटना आरंभ कर दिया और समयांतर में वह गृहकृत्य हो गया (नर्म १।९-३२)। उसके सहायक सात नियोगी और आठ अर्दली थे।

कायस्थ की सबसे बड़ी महत्वाकांक्षा गृहकृत्याधिपति अथवा गृहकृत्यमहत्तम बनने की थी। गृहकृत्य की नियुक्ति सबसे पहले शंकरवर्मन् ने की (रा० त० ५।१६७)। यह स्थान एक गजवर के कब्जे में होता था और उसके मातहत पांच दिविर काम करते थे (रा० त० ५।१७६)। इस विभाग की आमदनी का मुख्य जरिया ग्रामों पर दंड और तौलों के मनमाने घटाने बढ़ाने से था। चक्रवर्मन् के समय में ऐसे ही गृहकृत्य की नियुक्ति की सूचना मिलती है। मंत्री तुंग प्रजा पालन के लिए प्रसिद्ध था, बुद्धिभ्रम के कारण उसने भद्रेश्वर नामक एक नीच कायस्थ को अपना एक सहकारी नियुक्त किया। पहले वह गोबर बेचने जैसा छोटा काम करता था। बाद में वह भिश्ती बना, फिर वह दिविरों की दावातें ढोने लगा। तुंग ने पवित्रचित्त धर्मार्क को हटाकर भद्रेश्वर को गृहकृत्य बना दिया। इस दुष्ट ने देव, ब्राह्मण, गौ और अनाथों की वृत्तियाँ बंद कर दीं। अतिथि और राजा के अधीन दूसरे भी उसके कोपभाजन बने (रा० त० ७।३७-४३)। लगता है गृहकृत्य का पद गृह मंत्री जैसा था और उसके अधीन सेना नागरिक तथा धमार्थ विभाग होते थे। उसके अधीन सात नियोगी और आठ अर्दली (भट्टमुख्य) होते थे (न० मा० १।३३-३७) जिनका काम होता था, लोगों को लूटना-पाटना और मारना।

नर्ममाला से गृहकृत्य के रूप पर और प्रकाश पड़ता है। वह धार्मिकता का ढोंग रचकर देव मंदिर में स्तोत्र पाठ करता था, पर ध्यान उसका सदा लूट-पाट की ओर ही लगा रहता था (न० मा० १।३९-४४)। घूसखोरी से उसका घर सदा भरा रहता था। राजा का घरखर्च जिसमें मंदिरों, ब्राह्मणों, गरीबों को दान, जानवरों को चारा, राजकर्मचारियों का वेतन इत्यादि मदें आ जाती थीं, उसके अधिकार में होती थीं, और वह अपने कर्मचारी स्वयं नियुक्त कर सकता था। गृहकृत्य विभाग से संबंधित निम्नलिखित कर्मचारी होते थे:

नियोगी—इस शब्द का प्रयोग क्षेमेन्द्र ने अधीक्षक के अर्थ में किया है। गृहकृत्य के अधीन सात नियोगी होते थे (न० मा० १।३५)। गृहकृत्य की सभा में वे उपस्थित रहते थे (नर्म, १।४५)। सरदी में लगान वसूली के समय उन्हें गहरी रकम मिलती थी (स० मा० १।४९)।

पिशुन—चाक्रिक, पुंश्चलक, गृहकृत्य के अधीन भेदिये होते थे जिनका काम गृहकृत्य को मंदिरों इत्यादि में इकट्ठी रकम की खबर देना होता था। ऐसे ही एक भेदिये का क्षेमेन्द्र ने जीता-जागता चित्र खींचा है। उस नियोगी कार्यदूत के पैरों में अशुभ था, मंदिर लूटने की कतरब्योंत में वह होशियार था। उसका इतना प्रभाव था कि गृहकृत्य ने स्वयं उठकर उसको स्थान दिया। उसकी कृपा से ही दूरस्थ होते हुए भी नियोगी हजारों आखें और कान वाले हो जाते थे। उसने आते ही विजयेश्वर, वाराह,

और मार्तण्ड के मंदिरों में इकट्ठी संपत्ति का ब्योरा बतलाया और परिचालक द्वारा उसके हरण की युक्ति बतायी (नर्म १।५१-५४)।

परिपालक—यह अधिकारी गृहकृत्य का सहायक होता था। लगता है इसका चुनाव उसकी कठोरता पर ही निर्भर होता था। अपवादों से वह न डरने वाला, पातकों से निःशंक, अपनी बुद्धि के बल ही प्रसिद्ध होता था। ब्रह्महत्या और गोहत्या उसके लिए कुछ न थी। उसकी गर्दन अकड़ी थी तथा निगाह टकटकी लगाए। वह मोटा ताजा और क्रोधी था। उसने पीले-हरे रंग की पगड़ी (शिरः शाटक) और कुरता (कंचुक) पहन रखा था। परिपालक बनने पर वह असंख्य प्यादों के साथ वसूलियाती (अर्घवेला) के लिए निकला। उसकी आज्ञा से मंदिर लूट लिये गये तथा सिपाहियों ने घरों के दरवाजे तोड़ कर, बरतन भांड़े लेकर स्त्री और बच्चों को रोते-बिलखते छोड़ दिया (नर्म १।५४-७०)।

लेखकोपाध्याय—यह अधिकारी परिपालक का प्रधान लेखक होता था और इस बात में हमेशा प्रयत्नशील रहता था कि उसके मालिक का भला हो। उसके पास गुप्त कागज-पत्र रहते थे। लेखकोपाध्याय बनने के पहले वह भूखा-नंगा था। दुपट्टी फटी पुरानी थी, और सूखे जूते मंगनी के थे। पर गरीब होने पर भी उसे अपनी मुंशीगीरी का गर्व था। पति के लेखकोपाध्याय बनने पर उसकी गरीब पत्नी ने गणेश की पूजा की। अपने मालिक के हुक्म से उसने जबर्दस्ती वसूलियाती के लिए हुक्मनामे लिखे। परिपालक को जो कुछ भी सामान की जरूरत पड़ती थी उसके लिए वह हुक्मनामे जारी करता था। लेखपत्रों को पढ़ते हुए वह अजीब तरह से मुँह बनाता था। वह हिसाब-किताब लिखने में पटु होता था (नर्म० १।७१-८१)।

गंजदिविर—यह अधिकारी परिपालक के नीचे अर्थ विभाग का अध्यक्ष होता था। वह परिपालक के सामने आय-व्यय का छमाही चिट्ठा (शरत्षण्मास कल्पना) पेश करता था। आय मद्धे उसमें साढ़े चार लाख दिखलाया गया था। देव ब्राह्मणों की वृत्तियाँ वह काटने वाला था। उसे इस बात की शेखी थी कि जिन-जिन अधिकारियों ने उसका विरोध किया, उन्हें भाग जाना पड़ा। उसने परिपालक को सलाह दी कि किस तरह मंदिरों की संपत्ति हड़प ली जाय क्योंकि उसे पार्षद खाये जा रहे थे—उसने यह भी सलाह दी कि मंदिर में जमा धान की खरीद बेच से भी परिपालक रकम पैदा कर सकता था (नर्म, १।८३-९६)।

मार्गपति अथवा व्यापारी—यह अधिकारी विषय अथवा परगने का अधिपति होता था। वह ग्रामों की देखभाल, उनके हिसाब-किताब का निरीक्षण तथा सड़कों की देखभाल करता था। उसे दीवानी और फौजदारी मुकदमों को सुनने का भी

अधिकार था। नर्ममाला के अनुसार वह पहले एक बड़े ही गंदे घर में रहता था जिसकी हौदी टूटी थी और दरवाजे लड़खड़ाते थे। वह फटा कंबल सिर पर बाँधता था, पुराने जूते पहनता था, देवालय में स्तोत्र पढ़ता था, ब्राह्मणों को सिर नवाता था। काम मिलते ही उसका घर बरतन-भांड़े से भर गया। तरह-तरह के मँगनी के सामान उसके साथ चलने लगे जिन्हें लौटाने की उसे इच्छा न थी। घोड़े पर ऐंठ कर वह बैठने लगा। ग्रामों में वह लूट लो, बाँध दो, मार डालो, घर उजाड़ दो, यही कहता था। हमेशा बेगार मजदूर उसकी सेवा में लगे रहते थे। अपने मालिक की रियायती आज्ञाओं का भी वह पालन नहीं करता था (नर्म १।९७-१२७)।

ग्राम दिविर—इसका काम आधुनिक पटवारी अथवा लेखपाल जैसा था। जाल-फरेब उसका काम था। वह शराब पीता था तथा देव ब्राह्मणों के नित्य नैमित्तिक गायब करते हुए भी शिव भक्ति के स्तोत्र गाता था। घूस की रकम से घर भरने पर उसकी स्त्री रियासत दिखलाने लगी (नर्म० १।१२८-१४०)।

खाशपति अथवा तृणरक्षक—वह नियोगी का सहायक होता था। नियोगी के नाम एक पत्र से उसकी करतूतों का पता चलता है—भेड़ों के बहाने दस गायें पकड़ ली गयीं जिनमें पांच मर गयीं और शेष खलिहान में हैं। उनके छुड़ाने वालों को जल्दी करने पर भी तीन दिन लग जायँगे। वे नहीं आये तो आपका लाभ है क्योंकि उन पर दंड लगेगा। घी के कुप्पे के संबंध में जो ब्राह्मण जेल में बंद था वह चल बसा। उसकी स्त्री को बांध कर मैंने उसके घर पर मुहर लगा दी है, इत्यादि (नर्म० २।९८९९-)।

आस्थान दिविर—उसके हाथों में सब कुछ होता था। उसके कान पर चढ़ी कलम और हाथ में भूर्जपत्र का उल्लेख है। शराब और वेश्या उसके व्यसन थे, पर दिन में वह नहा धोकर जप ध्यान से अपनी पवित्रता प्रकट करता था तथा शकुन अपशकुन का बराबर ध्यान रखते हुए वह दफ्तर (आस्थान मंडप) जाता था। उसके कलम से झरती स्याही की बूंदें, लुटी पृथ्वी की काजल मिली हुई अश्रुबूँदों जैसी दीख पड़ती थी। (नर्म० २।११६-१३२)।

अधिकरण भट्ट—इन्हें आस्थान दिविर या पेशकार का साथी कहा गया है। ये सोंटी और बंधन के भय से लोगों को अदालत में खींच कर लाते थे। वे खूब घूस लेते थे तथा हारने वालों को जिता देते थे और जीतने वालों को हरा देते थे। सांठगांठ ही उनका धर्म था। जालसाजी से वे बाज नहीं आते थे। (नर्म, २।१३३-१४५)।

नगराधिप-नगराधिकृत—इस अधिकारी के कर्तव्य आज के शहर कोतवाल जैसे होते थे। चोरी करने के अभियोगी इसके सामने पेश किये जाते थे (स० मा०

२।१६)। नगर में वेश्याओं को लेकर जो खून-खराबी होती थी उसकी वह जांच-पड़ताल करता था (स० मा० ८।१२२-१२३) तथा वह बराबर नागरिकों के चरित्र स्खलन पर भी निगाह रखता था। समय-समय पर उसे सैनिक कर्तव्य भी पालन करने पड़ते थे।

सस्यपाल—इस अधिकारी के क्या कर्तव्य होते थे, इसका तो ठीक पता नहीं चलता पर शायद यह फसलों की निगरानी करता था (नर्म० २।१४२)।

प्रासादपाल—लगता है यह देव मंदिर का कोई अधिकारी था, जिसके जिम्मे मंदिर का प्रबंध होता था। ऐसे ही एक प्रासादपाल को मंदिर के गर्भ-गृह में घुसा कर लूट लिये जाने का उल्लेख है (स० मा० २।१९)। एक अधिकरण भट्ट का पहले ग्राम गणेश मंदिर के प्रासादपाल होने का भी उल्लेख है (नर्म, २।१४३)।

दूत—क्षेमेन्द्र के काव्यों में दूत शब्द का प्रयोग हरकारे के अर्थ में हुआ है। अधिकरण भट्ट एक समय संधि-विग्रहिक कायस्थ की चक्रिका (कार्यकारिणी) का एक मामूली-सा दूत था, जो द्रंग देश में अनेक बार आने-जाने से भट्ट बन बैठा (नर्म, २।१४३-१४४)। उसकी बँधी कमर, फटा कंबल और धूल से सने पैर उसके मामूली पद के द्योतक थे (नर्म, २।९२-९३)। दूत को हरकारे के अर्थ में धावक भी कहते थे (स० मा० ७।४०)। कश्मीर के पर्वतीय प्रदेश में रक्षा अट्टालकों के सैनिक बचाव के लिए द्रंगाधियों की नियुक्ति होती थी। घाटी से इनका संबंध स्थापित करने के लिए धावकों की बड़ी आवश्यकता होती थी।

बंधनपाल—आधुनिक जेलर। चोरी का माल लेकर छिपाने पर सिपाहियों ने (शठचेटक) कंकाली को बाँधकर कारागृह (बंधन) में बंद कर दिया, पर वहां उसने बंधन-पाल से मित्रता कर ली और एक दिन जब वह नशे में बेहोश था, उसकी जीभ काट कर तथा अपनी बेड़ियाँ हटाकर वह भाग खड़ी हुई (स० मा० २।४८-५१)।

अदालती कागज-पत्र के संबंध में भी कई शब्द आये हैं। धनधारणपत्रिका (स० मा० ८।९५) से शायद मतलब भरण पोषण की रकम के संबंध का एकरारनामा था। उज्जासपत्रिका (स० मा० ८।९६) में, लगता है, दी जाने वाली रकम और वस्तुओं की पूरी फिहरिस्त वसूल करने वाले का नाम के सहित होती थी।

अश्वशालादिविर—यह अधिकारी घुड़साल का प्रबंध करता था। खूब कागज पत्र लिख कर वह दिन भर लोगों को लूटता था और रात भर खूब सोकर सवेरे नहाने के बहाने मदिरा की दाह मिटाता था (स० मा० २।३७-३९)।

अदालत—समयमातृका में एक जगह तत्कालीन दीवानी अदालत का चित्र खींचा गया है। कंकाली ने अपने पति अश्वशाला दिविर का घर बेचना चाहा।

(वेश्मविक्रयदान) पर उसके पुत्रों द्वारा आपत्ति उठाने पर वह मठिमट्ठों (वकीलों) से उपसेवित अधिकरण में पहुंची। वहां घूसखोर भट्टों की साजिशों (कूटस्थादिभिः) से उसे मनचाही संपत्ति की डिगरी (जयपट्टक) मिल गयी (स० मा० २।४१-४२)।

डामर—कश्मीर के इतिहास में डामरों अथवा सामंतों का विशेष स्थान था। जब भी राजा की शक्ति क्षीण पड़ जाती थी, डामर बगावत कर बैठते थे और उन्हें दबाने के लिए काफी शक्ति लगानी पड़ती थी। ललितादित्य मुक्तापीड़ की सलाह थी कि प्रजा के पास अधिक धन और जमीन होने से उनके भयंकर डामर बनने की संभावना थी (रा० त० ४।३४८)। डामर कश्मीर के किसी विशेष भाग में न होकर सब जगह होते थे। बाण भट्ट ने हर्ष की सेना में डामरों के होने का उल्लेख किया है। ये चारभट भी कहे जाते थे जो जान हथेली में लेकर सदा मरने मारने पर तैयार रहते थे। दानपत्रों में चारभटों का अग्रहार ग्रामों में प्रवेश निषिद्ध माना गया है।[४४] कश्मीर के इतिहास में चारभट शब्द की जगह डामर शब्द ही प्रयोग में आया है। समयमातृका में कहा गया है कि कंकाली प्रतापपुर के निवासी डामर समर सिंह की रखैल बनी। उसका माल खा पीकर उसने अपने प्रेमी को बंधुओं से लड़ने को उकसाया और उसमें वह मारा गया। फिर वह उसी के भाई की रखैल बन गयी और जब राजाज्ञा से वह मारा गया तो वह उसका माल लेकर चंपत हो गयी (स० मा० २।२१-२७)।

(६)

क्षेमेन्द्र की दृष्टि इतनी पैनी थी कि मध्यकालीन संस्कृति का कोई प्रधान अंग उससे बच कर न निकल सका। इसी के फलस्वरूप क्षेमेन्द्र ने यदा कदा तत्कालीन आर्थिक परिस्थिति और व्यवसायों के जीते-जागते चित्र खींचे हैं। निःसंदेह ये चित्र तत्कालीन व्यवसायों का पूरा खाका नहीं उतारते पर जो भी अधूरे चित्र मिलते हैं, उनसे मध्यकालीन व्यवसाइयों, उनकी चालबाजियों पर प्रकाश पड़ता है। क्षेमेन्द्र ने व्यापारियों और व्यवसाइयों के जो चित्र खींचे हैं उनमें उनकी कमजोरियों की हँसी उड़ायी गयी है तथा उनकी कंजूसी बेईमानी गंदगी इत्यादि की निंदा की गयी है। पर इससे यह माने नहीं निकाले जा सकते कि सभी व्यापारी बेईमान थे। तथ्य तो यह है कि मध्यकालीन भारतीय संस्कृति, धर्म और कला के परिरक्षण और परिवर्धन का श्रेय इन्हीं व्यापारियों व्यवसाइयों को था। समय के अनुसार इनके चरित्र में अंध-विश्वास और जाल-फरेब बढ़ गया था और इनके इन्हीं चारित्रिक दोषों की क्षेमेन्द्र ने खिल्ली उड़ाई है।

---

४४. वासुदेव शरण अग्रवाल, हर्षचरित, पृ० १५६।

व्यापारियों के चरित्र का मुख्य दोष लालच है जिससे वे कार्य और अकार्य की ओर ध्यान नहीं देते। क्षेमेन्द्र के अनुसार सत्व, प्रशम, तथा तप इत्यादि से लोभ विजित होकर व्यापारियों (किराट) के हृदय में घुस गया (क० वि० २।३)। ऐसे व्यापारी क्रय विक्रय, कूट तुला तथा माल जमा करने में (निःक्षेपरक्षण) तथा व्याज के बहाने लोगों को दिन दहाड़े लूटते थे (क० वि० २।४) पर इस लूट के बाद भी तीन कौड़ियां खरचने में उनकी जान निकलती थी। पौराणिक कथाएं वे सुनते थे पर दान धर्म के नाम देते कुछ नहीं थे। द्वादशी, पितृदिवस, संक्रांति तथा सूर्य और चन्द्रग्रहण के अवसर पर वे खूब नहाते थे पर याचकों को देखते ही कतराकर गली से भाग निकलते थे। माल बेचते समय वे जवाब नहीं देते पर जमा करने वाले के हाथ में रकम देख कर खूब बातें करते थे और धर्म कथा कहते थे। अगर जमा करने वाला भद्रा की बात चलाता था, तो बनिया कहता था कि वह भद्रा जमा करने वाले के लिए अच्छी थी (क० वि० २।९-१५)। बनिए तरह-तरह के नये कपड़े (नवांशुक), कस्तूरी, चंदन, कर्पूर, और मिर्च के व्यापार से काफी लाभ उठाते थे (क० वि० २।२३)। कश्मीर में केसर के व्यापार में काफी लाभ था। कंकाली ने ऐसे ही एक व्यापारी को लूटा था (स० मा० २।८)।

एक चतुर पर बेईमान बनिए के संबंध में कला विलास से कुछ और सूचनाएं मिलती हैं। वह खड़िया हाथ में लेकर हिसाब किताब करता था (क० वि० २।२३)। जब जमा करने वाला देश यात्रा से लौटने पर अपनी जमा की हुई रकम वापिस मांगता था तो वह उसे पहचानने से भी इन्कार कर देता था और कहता था—बता, तूने कब किसे कहां रकम दी। मेरे प्रसिद्ध कुल में भला कोई रकम क्यों जमा करेगा और फिर जमा करके उसे छिपायेगा क्यों। खैर, किस दिन तूने रकम जमा की, उस दिन का लेखा स्वयं देख ले। अरे, मेरे पुत्र के पास खाता रहता है। पुत्र के पास जाने पर वह उसे पिता के पास भेज देता था। राजा के पास फरियाद करने पर भी बनिया रकम जमा करने की बात नकार गया (क० वि० २।२७-३६)।

समयमातृका में एक कंजूस बनिए का बड़ा सुंदर चित्र खींचा गया है। पंक के बनिए बाप को ठगने के लिए कंकाली बाजार में पहुँची। बहुत धनी होने पर भी और अधिक धन पैदा करने की लालच से वह ग्राहक की तलाश में ऊँची गद्दी (वृसी) पर बैठा था और उसके हाथ में तीन तरह की बहियां थीं (कोटित्रय लेख्यसंपुटी हस्तः)। वह अर्थियों के लिए अंधा, बंधक की रकम पर सूद छुड़वाने वालों के लिए बहरा तथा माल का बहुत कम दाम लगाने वाले के लिए गूँगा था। वह बाल के तेल से चीकट तथा चूहे से काटी गयी एक आधी टोपी (टुप्पिका) पहने था। उसकी फटी

ऊनी चादर लंबे मोटे कंचुक के छोरों पर लहरा रही थी। उसके पैरों में मोजे पट्टी थे तथा उसकी दाढ़ी में गाँठ लगी थी (स० मा० ८।५३-५६)। घर खर्च के लिये माँगने आयी दासी को वह मारने को तैयार था। कंकाली ने अपनी कन्या से उसके पुत्र के विवाह की बात चलायी और स्त्रीधन सहित अपना घर उसके नाम लिख देने तथा अपना सब माल मुहरबंद (मुद्रामुद्रित) कर देने को कहा। कंकाली द्वारा भोजन के लिए निमंत्रण देने पर उसने यह कह कर कि दूसरे का भोजन न करने का उसने नियम ले रखा था डेढ़ रुपये थमा दिये। खाने पीने के बाद उसने कंकाली का माल अपना समझ कर उसके घर के व्यय का भार संभाल लिया। पहले ही दिन उसकी दासी को उसने एक तोला तेल, दो तोला नमक और शाक भाजी के लिए दो कौड़ियां दीं। कंकाली ने भी इसका पूरा बदला लिया। एक ही तरह के उसने दो संदूक बनवाये। उनमें से एक में उसने गहने भरे और दूसरे में पत्थर तथा उन्हें ढाँक कर बनिए के पास पहुँची तथा एक पेटी दिखला कर कहा कि उसमें जड़ाऊ गहने थे। गहने दिखला कर उसने पेटी पर मुहर लगा दी तथा उस पर तीर्थ-यात्रा के बहाने उधार लेकर बातचीत के सिलसिले में पेटी बदल दी (क० वि० ८।५२ ८९)।

क्षेमेन्द्र की बनिया पर वक्र दृष्टि का पता देशोपदेश से भी चलता है। उसे जमा-की रकम डकारने वाला, बात छिपाने में चतुर, ब्याज लेने में उस्ताद, माल पैदा करने में सतत प्रयत्नशील, धूल, गुड़, शहद, घी और तेल से गंदा बना कहा गया है। पर विधाता ने उसके माल के खपत का रास्ता गुरु को बनाया था (दे० ८।१४-१६)। व्याधिकाल में वह खुशी से नाचता था और केवल द्रव्यनाम से ही अज्ञात तृण काष्ठ इत्यादि बीमारों को बेचता था (नर्म, ३।७२)।

बनियों के बाद सोनार ही क्षेमेन्द्र के वाग्बाण के शिकार हुए हैं। वे सोना चुराने में दक्ष होते हैं। सोना लेते समय उनका कस मद्धिम (मंदरुचि) बैठता है पर बेचते समय तेज (परुषकषा)। सोना तौलते समय वे चिकने (सोपस्नेहः), चिपचिपे (स्वच्छः), मोम भरे (सिक्थक मुद्रः), रेतीले (बालुका प्रायः) बटखरे काम में लाते हैं (क० वि० ८।४-५)। वे दोपरती (द्विपुटा), खुली (स्फोटविपाका), सोना पी जाने वाली (सुवर्ण रसपायिनी), तमैली (सुताम्र), तथा सीसे और काच चूर्ण ग्रहण करने वाली घरियाँ (मूषा) व्यवहार करते हैं (क० वि० ८।६)। उनकी तराजू सोलह तरह की होती थी, यथा—बांके कांटेवाली (वक्रमुखी), नीची ऊंची (विषमपुटा), छेदीली (सुषिरतला), पारा भरी (न्यस्तपारदा), नरम पत्तर से बनी (मृद्वी), बगल कटी (पक्षकटा), गांठ पड़ी डोरी वाली (ग्रंथिमती), मोम भरी, बहुत सी डोरियों वाली (बहुगुणा), आगे

झुकी (पुरोनम्रा), हवा से डगमगाती (वातभ्रांता), हल्की (तन्वी), भारी (गुर्वी), तेज हवा में धूल इकट्ठा करनेवाली (परुषवात धृतचूर्णा), निर्जीवा और सजीवा (क० वि० ८।७-८)। उनकी फूँकें यथा धीमी, जोरदार, बीच से टूटती हुई, फुफकार भरी, तथा सी-सी भरी साभिप्राय होती हैं (क० वि० ८।९)। वे छल्लेदार धुँवासी, चटकती, चिनगारीदार तथा पहले से ताँबा मिली आग व्यवहार में लाते हैं (कवि० ८।१०)। प्रश्न करना, विचित्र बातें करना, भीतर की ओर दुपट्टे का पल्ला खींचना, सूरज देखना, हँसना, मक्खी हाँकना, तमाशा देखना, अपनों से खिलवाड़, जलपात्र तोड़ना, बार-बार बाहर जाना उनकी चेष्टाएं हैं (क० वि० ८।११-१२)। सोना लूटने की उनकी निम्नलिखित जुगतें हैं—गढ़े घाट वाले गहने को आग में तपाना, हल्की गोबर की आँच में लवणक्षार के अनुलेप से कृत्रिम वर्ण के प्रकाशन में व्यग्रता, एक पलड़े में कान्त लौह लगाने से खाली तराजू भी भरी दिखलाने की कला, लाख भरते समय (प्रतिवद्धेजतुयोग्ये) चुपके से सोने के कण गायब करना, ओप (उज्ज्वलन) के समय पत्थर पर ज्यादा सोना घिस देना, एक समान विचित्र आभरणों को सफाई से बदल देना, चासनी में मिलावट, खोने और चोरी जाने का बहाना, कमी पूरा करने की माँग तथा सारा माल लेकर चंपत हो जाना (क० वि० ८।१३-१८)।

वैद्य—प्राचीन भारत में वैद्यों का व्यवसाय काफी ईमानदार और विद्वत्ताभरा माना जाता था, पर मध्यकालीन भारत से जैसे संस्कृति के अनेक अंग क्षीण हुए उसी तरह वैद्यों की भी दुर्गति हुई। इसके माने यह नहीं होते कि मध्यकाल में अच्छे वैद्य थे ही नहीं। वैद्यकशास्त्र के मध्यकालीन इतिहास में अनेक वैद्यों के नाम आदर से लिये जा सकते हैं। पर साधारण वैद्य अपनी वैज्ञानिक दृष्टि खो चुके थे। वे अंट-संट नुस्खों और तांत्रिक प्रयोगों तथा रोगियों से पैसे लूटने से बाज नहीं आते थे। कलाविलास में तो क्षेमेन्द्र ने वैद्यों को धूर्तों की श्रेणी में रखकर उनकी हँसी उड़ाई है। वे भारी लालची होते हैं। नाना औषधियों के परिवर्तन से और अपनी विद्या अजमाने के लिए हजारों रोगियों को मारकर फिर सिद्ध बनते हैं (क० वि० ९।२-६४)। समयमातृका में कलावती नाम की वेश्या अपनी माता को मारने का दोष एक वैद्य को लगाती है। उसने उसे रसवती नामक औषध दी जिसे उसने लालच से सब खा ली। उसे सब जगत पीला दिखलायी देने लगा और पागल होकर उसकी मृत्यु हो गयी। (स० मा० १।२८-३१)।

गणिकाओं का गुरु नापित वैद्यों को कुटनियों का यम कहता है। वैद्य रोगी रूपी पशु का शिकारी है तथा विट और चेट उसे यम कहते हैं (स० मा० १।३७-३९)। नर्ममाला में वैद्य को विद्याविहीन, अनेक लोगों को मारने वाला, बहुत से घरों में घूमने

से पसीने-पसीने, औषधियों के नुसखे (संकेतनामचीरिका) लिए हुए कहा गया है। वह अर्थ की चिकित्सा करता है प्राणों की नहीं। उसे प्राणाचार्य कहना वृथा है। वह केवल खाने-पीने को दोष देता है। नगरोत्सव, यात्राओं और विवाहों में अतिभोजन से जनता की बीमारी वैद्य के अच्छे शनि की कृपा है। स्त्रियों के प्रति उसका व्यवहार ठीक नहीं होता। कामासक्त स्त्री की बीमारी का वह निदान करता है—इसकी बुद्धि जड़ है, धातु विषम है, शक्कर दही खाना ही इसका इलाज है (नर्म, २।६८-८०)। क्षेमेन्द्र ने एक जगह चक्षु वैद्य की खबर ली है। वह किंशारुकी वर्तिका से शस्त्र-क्रिया करके सबको अंधा बना देता है। ग्रीष्म में अक्षि कोप बहुत बढ़ जाने से उसे खूब रकम मिलती है (नर्म, ३।५९-६०)।

और देशों की तरह मध्यकालीन भारत में भी शल्य चिकित्सा का भार नापितों पर होता था। क्षेमेन्द्र ने उनकी चिकित्सा की हँसी उड़ायी है। वह दुर्लेपों से छोटे फोड़े को थाली बराबर कर देता था। नाक जोड़ने के लिए वह भग की पेशी काम में लाता था (नर्म, ३।६१-६३)। वह कटी नाक को सी भी देता था (स० मा० ४।१६)। आधुनिक प्लास्टिक सर्जरी का यह एक बहुत पुराना उल्लेख है।

क्षेमेन्द्र के काव्यों में अनेक रोगों के नाम आये हैं। त्रिदोष से रोगी अपनी चेतना खो देता था (स० मा० १।३०)। छोटे बच्चों के ज्वर आने पर धाय को उपवास कराने के विधान का उल्लेख है। इसमें धाय को बचाकर पानी पीने, अन्न न खाने और आँवला का रस पीने की व्यवस्था थी (स० मा० २।७२)। रक्त-छाया, पांडुमुख, प्रसवों से कृशता (दे० ३।३८), अधिक खाने से विषूचिका (दे० ४।२३), अतिसार, शोथ (दे० ४।२८) इत्यादि रोगों के उल्लेख मिलते हैं।

समयमातृका में और व्यवसायों के नाम आये हैं। कंकाली मुकुलिका नाम से देवताओं के लिए धूप दीप और नैवेद्य बेचती थी (स० मा० २।८१)। उद्यानपाल और पौष्पिक फूल इत्यादि बेचते थे (स० मा० ७।४०)। कंकाली ने तक्षक यात्रा से कल्यपाली बनकर शराब बेची (स० मा० २।८८)। वेश्याओं के यहाँ ऐसे छोटे-मोटे व्यवसाइयों की भीड़ लगी रहती थी। इनमें शांखिक (स० मा० ७।३२), कल्य-पाल (स० का० ७।३४), भरतभाषाज्ञ और गायक (स० मा० ७।३७), सूपकार, कुंभकार। छत्रधर, एक्केवान (युग्यवाहन) (स० मा० ७।३८), आरामिक, नाविक (स० मा० ।३९), चर्मकृत्, धावक (स० मा० ७।४०) इत्यादि हैं।

मध्ययुग के कलात्मक व्यवसायों में गायकों का एक विशिष्ट स्थान था पर क्षेमेन्द्र उनकी कला से नाराज थे। कलाविलास में तो उन्होंने गवैयों की पूरी फजीहत की है। चिकने गलेवाले गायक लोगों को लूटते हैं। बिखरे बालोंवाले अपने बहुत

से बच्चों तथा घड़े कपड़े गाड़ी पर लादकर राजाओं को लूटने के लिए घूमते हैं। ये गायक चोर हा-हा करके, पा पा ध ध नि नि ग म सा धा धा मा मा स मा स गा धा मा गाकर, विचित्र कपड़े पहन कर और विकृत मुद्राएं बनाकर हाथ से मृदंग लिए घूमते रहते हैं। आमंत्रण, जय-जयकार हुंकार तथा पद-पद अपनी तारीफ करते हुए वे गाते हैं। वे केवल दांत निपोरकर गाते ही नहीं, असामी फांसकर उन पर हँसते भी हैं। जुए में हार कर वे सब कुछ खो देते हैं। तारीफ के पुल बांधकर वे लोगों को फंसाते हैं पर लाखों कमाने पर भी कहते हैं—इस दोगले ने क्या दिया। कान के ये भूत राजाओं के दिल चुरा लेते हैं इसलिए उन्हें राज्य में घुसने न देना चाहिए। गायकों का एक सुर से गाना मानों कुठांव में पड़ी लक्ष्मी का रोना है (क० वि० ७।१-२६)। लगता है म्लेच्छ गायकों से, जिनसे तुर्क गायकों से तात्पर्य हो सकता है, वेश्याएं फीस लेने में डरती थीं (स० मा० ३।२६)। इसका कारण शायद उनका उद्धत व्यवहार हो। देशोपदेश (८।३०-३२) में एक कौल गुरु के वीनकार शिष्य की हंसी उड़ायी गयी है। कन्धे पर तुंबवीणा लेकर अपने घर्घर गीतों से, वह आये हुए देवता को भी भगा देता है। उत्कंठित श्रोतावर्ग के सम्मुख बड़ी मुश्किल से सारे दिन के बाद साज मिलाकर वह घिस्-घिस् करके तार रगड़ते हुए उनके कान में दर्द पैदा करता है। अपने को नारद और तुंबुरु समझने वाला वह व्यर्थ की टंकार करके साधुवाद के लिए घड़ी-घड़ी श्रोताओं का मुंह निहारता है।

(७)

क्षेमेन्द्र के काव्यों से मध्यकालीन भारतीयों की रहन-सहन, ठाटबाट, खान-पान, वेषभूषा, शिक्षा तथा कुछ सामाजिक कुरीतियों इत्यादि पर भी प्रकाश पड़ता है। इन उल्लेखों से भारतीय जीवन का पूरा चित्र तो स्पष्ट नहीं होता पर उस पर आंशिक प्रकाश अवश्य पड़ता है। क्षेमेन्द्र ने जिस जीवन का चित्र खींचा है उसमें समाज के निम्न कोटि के व्यक्ति ही अधिक आते हैं जिन पर कठोरतापूर्वक प्रहार करना ही उनका उद्देश्य था, इसीलिए मध्यकालीन मार्गीय संस्कृति का उनके काव्यों में अधिक वर्णन नहीं है। जात-पांत छूआछूत तथा अंधविश्वासों से ग्रसित समाज की जो कुछ बुराइयाँ उन्हें दिखलायी दीं, उन्हें उधेड़ कर उन्होंने सामने रख दिया है। कठोर व्यंग के प्रहार से उनकी भाषा कहीं-कहीं अश्लील हो गयी है पर संस्कृत में श्लील और अश्लील के बीच कोई सीमा निर्धारित नहीं थी।

मध्यकालीन भारत की सामाजिक दशा का चित्र दिखलाते हुए, क्षेमेन्द्र ने उसके ऐसे अनेक पहलुओं पर प्रकाश डाला है जिनसे तत्कालीन चारित्रिक पतन पर प्रकाश

पड़ता है। स्त्री पुरुषों के ये चित्र चाहे हमारे मन को कितना ही धक्का पहुँचा दें, लगता है वे वास्तविकता से बहुत दूर नहीं थे। वृद्धों की स्त्रियों और विधवाओं के चारित्रिक पतन का तो क्षेमेन्द्र ने वर्णन किया ही है पर कुलटा स्त्रियों के चरित्र में जो कमजोरियाँ थीं उनकी भी क्षेमेन्द्र ने खुल कर और तीखे शब्दों में भर्त्सना की है। पर इससे यह माने नहीं निकाल लेना चाहिए कि समाज की सभी वर्ग की स्त्रियों का चारित्रिक स्तर नीचा था। कलाविलास (३।२०-२८) में क्षेमेन्द्र ने कहा है कि कुलटा स्त्रियां किस तरह लोगों को मूर्ख बनाकर अपना काम साधती हैं, वे कहती कुछ हैं और करती कुछ हैं। वे वेश्याओं की तरह खिड़की से ताकती-झांकती हैं तथा पति को मूर्ख समझ कर उनका काम स्वयं संभालती हैं। कुलटाओं की श्रेणी में वृद्ध की स्त्री, दासी, नियोगी की स्त्री, नाटक के पात्रों की स्त्रियां, कंजूस की स्त्री, सार्थवाह पत्नी, कलाकुशला, जूए और आपानक की शौकीन, गोष्ठी की शौकीन स्त्री, युवकों की इच्छुक, दूसरों के गुणगान करने वाली और गीत की प्रेमी कुलटाओं की साथिन, शूरों की पक्षपाती, घर के काम से सुस्त, बहुरूपिया, हाजिरजवाब, झूठी, निर्लज्ज, रस भरी बातें करने वाली, सतीत्व का बहाना करने वाली, यज्ञ तीर्थ मंदिर वैद्य और ज्योतिषी के घर जाने वाली, भोजन पान में खर्चीली तथा यात्रा की प्रेमी, भिक्षु और तापसों की भक्त, दर्शन और दीक्षा की प्रेमी, स्त्रियां आ जाती हैं।

क्षेमेन्द्र कायस्थों से विशेष असंतुष्ट थे और शायद इसीलिए उन्होंने कायस्थों की स्त्रियों के चरित्र की खुलकर निंदा की है। उसकी स्त्री मारे अभिमान के जमीन नहीं देखती थी, सास ससुर से उसका मेल नहीं खाता था। परिहास और गीतवाद्य में उसका प्रेम था। सुगंधियों की वह शौकीन थी। वह कंचुक न पहन कर स्तन दिखलाती थी तथा उसकी सिर की चादर आधी खिसकी होती थी। वह नखरे से लोगों को देखती रहती थी। उसे फँसाने की तदवीर बांधने के लिए विट शून्य देवकुटी में इकट्ठे हुए (नर्ममाला, २।१-९)।

क्षेमेन्द्र के काव्यों से यदा-कदा मध्यकालीन घर, खाद्य, वेष-भूषा, तथा बरतन भांडे और आराइश की वस्तुओं पर भी प्रकाश पड़ता है। आस्थानी आजकल की बैठक की तरह होती थी जहां खाने-पीने के बाद लोग मित्र मंडली के साथ बैठते थे (क० वि० १।११)। चूने से लिपा पुता आंगन (अंगनं), और सिन्दूर से रंगा भीतरी घर (उदरमंदिर) मकान-मालिक के ऐश्वर्य का द्योतक था (नर्म० १।१०६)। उसी तरह गंदे पाखाने और रस्सी से बंधा टूटे दरवाजे वाला घर दरिद्रता की निशानी माना जाता था (नर्म० १।९८-९९)।

वेष-भूषा संबंधी अनेक उल्लेख क्षेमेन्द्र के काव्यों में आये हैं। समयमातृका में एक कंजूस बनिए की वेषभूषा का चित्र खींचा गया है। चूहे से कुतरी बेढंगी उसकी टोपी (टुप्पिका) थी। एक ऊनी चादर (ऊर्णा प्रावरण) उसके मोटे कंचुक पर लहरा रही थी। उसके चौड़े, ढीले, धूमिल और फटे मोजों या जूतों (मोचोट) से उसकी जांघें और घुटने खुले रह जाते थे (स० मा० ८।५४-५६)। पर उसी बनिए का पुत्र रईसी पोशाक पहनता था (स० मा० ७।१४-१७)। उसके कानों में बड़े मोतियों की बालियां (बालक), सोने की सिकरी में चार सोने से मढ़े जंतर (हेम रक्षा) थे, उसके बालों में माता द्वारा रखे हुए सरसों के दाने थे तथा पैरों में लाज-बर्द की दो बड़ी गुरुरियों (राजावर्त गुलिक) से सजे कड़े (कटक) थे। वह बड़ी किनारों वाली (दीर्घाञ्चलदशां) पटी को संभाल रहा था।

देशोपदेश में क्षेमेन्द्र ने एक विट की वेष-भूषा का चित्र खींचा है। उसके हाथों में सूई (सूचीहस्तः), तागा (सूत्रधारः) थे। वह गरमी में मोटे वस्त्र (स्थूल वसन), और जाड़े में मलमल (तनुतरांबर) पहनता था तथा उसके पाजामें (पिंग) पर वेश्याओं के हाथ के केसरिए थापे लगे होते थे। उसका दुपट्टा (पट) विलेपन से सना होता था। वह अपने पट पल्लव से सिर पर घोघी (कनटोप) बनाता था। उसकी दाढ़ी के जाल (श्मश्रुवेष्टन) से एक्के-दुक्के बाल निकल रहे थे तथा उसके नकली घुंघराले बाल थे (कृत्रिम कुंचित)। गरीब होने पर भी वह दाक्षिणात्यों की ऐंठ से शेखी हाँकता था (दे० ५)।

गौड़ देश के विद्यार्थियों की क्षेमेन्द्र ने काफी शिकायत की है। छुआछूत के भय से वे अपने कपड़े का आंचल बगल में दबाकर चलते थे (कक्षाकृतांचलः) (दे० ६।९)। उनके घिसे नख आलते से रंगे होते थे और वे नकाशीदार वस्त्र (चित्रांबर) (दे० ६।१०) और पगड़ी (शिरःशाट) पहनते थे (दे० ६।२०)।

निर्गुट भी विट की तरह एक चरित्रहीन पुरुष होता था फिर भी वह वेषभूषा में रईसों की नकल करता था। उसकी सफेद पगड़ी (शिरःशाटांक) हल्दी से रंगी होती थी और उसके बदशकल मोजों के तार निकले होते थे (खंजनी) (नर्म० १०।३७)।

नर्ममाला में क्षेमेन्द्र ने छोटे बड़े सभी कायस्थों की वेषभूषा के सुंदर चित्र खींचे हैं। नियोगी नमदे अथवा पट्टू के छोटे टुकड़ों से बनी टोपी, जो किनारों पर ऊंची थी, पहने था (सुसूक्ष्मदलविन्यासविभागोन्नतटुप्पिकम्) (न० मा० १।४७)। उसका मृदु अंगरखा (अंगरक्षक) नीला था और उसकी तूलपटी चमेली और कस्तूरी से आमोदित थी (न० मा० १।४८)। परिपालक की पोशाक में हरित-पीत रंग की पगड़ी (शिरःशाट) और कंचुक मुख्य थे (न० मा० १।६२)। अपनी गरीबी में लेखको-

पाध्याय की पगड़ी (शिरःशाट) में अनेक छेद होते थे, बगल में उसकी ऊनी चादर (तूस्तक) लहराती थी और उसके अंगरखे (अंगरक्षक) में बहुत से प्योंदे (चक्रलिका) लगे थे। उसकी फटी पुरानी धोती (पटी) का आंचल बगल में खुंसा होता था और उसके पुराने जूते मंगनी के होते थे (न० मा० १।७२-७३)। एक अध्यापक के सिर पर जूड़े, ललाट पर चंदन तिलक और पैरों में मयूरोपानह का उल्लेख है (न० मा० २।२४)।

क्षेमेन्द्र ने पटी का उल्लेख बहुत बार किया है। पटी से धोती और दुपट्टा दोनों ही का बोध होता है। एक जगह एक कंजूस के पितामह द्वारा पटी और परदादा द्वारा शाटक खरीदने का उल्लेख है (दे० २।१४)। शायद यहां पटी से दुपट्टे और शाटक से चादर का मतलब हो सकता है। समयमातृका (८।१२४) में कुटनी नायक से कहती है—अपनी तूल पटी फेंककर ऊनी चादर (तूस्ती) से अपने को ढांक ले। यहां भी ठीक पता नहीं चलता कि पटी से धोती अथवा दुपट्टे का मतलब है।

मार्गपति के सारोसरंजाम में स्नान शाटिका, पाजामा (संपुटी) टोपी (टुप्पिका), योग पट्ट, धुले हुए सफेद कपड़े (न० मा० १।११०-११२) और मयूरोपानह (न० मा० १।१२४) के उल्लेख हैं। ग्राम दिविर के कर्परी यानी पाजामा पहनने का उल्लेख है (न० मा० १।१३७)। पगड़ी के लिए उन्नत-शिखर-वेष्टन शब्द आया है (क० वि० १।६३)।

क्षेमेन्द्र द्वारा वेष-भूषा के वर्णनों में कुछ शब्दों की व्याख्या आवश्यक है। पिंग (दे० ५।१३७) यानी पाजामा डॉ० अग्रवाल[४५] के अनुसार एक तरह का सलवार था जिसे जंघाला भी कहते थे। पिंगा इस देश में मध्य एशिया से आने वाला एक तरह का रेशमी वस्त्र था जिनसे शायद पिंग बनता था।

मोचोट शब्द का प्रयोग मोजा अथवा बूट के लिए हुआ है और इसकी व्युत्पत्ति फारसी मुजा से, जिसका अर्थ मोजा अथवा बूट होता है, की जा सकती है। देशीनाममाला (६।१३९) के अनुसार मोच का अर्थ अर्धजंघाली यानी आधे जंघे तक पहुंचने वाले बूट से है। तूस्त, तूस्तक अथवा तूस्ती का ठीक अर्थ पता नहीं चलता, पर इन शब्दों का संबंध आधुनिक तूस से हो सकता है। आज के तूश पश्म के बने होते हैं पर क्षेमेन्द्र के समय तूस्त एक साधारण ऊनी चादर थी।

क्षेमेन्द्र के समय, लगता है, दुशाला बिनना एक कुटीर उद्योग था। कायस्थ के घर में एक शिक्षक अपना समय कातने (कर्तन) नकाशी बनाने (लिख ने) तथा

---

४५. हर्षचरित—एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० १४८-४९।

टुकड़ों पर तूजियों से नकाशी बिनने (सूचीपट्टिकावानं) का काम करता था (नर्म० २।४५)। आज दिन भी कश्मीर में शाल बिनने की यही प्रक्रिया है।

क्षेमेन्द्र के काव्यों से स्त्रियों की वेषभूषा पर अधिक प्रकाश नहीं पड़ता। समयमातृका में कंकाली समय के अनुसार तरह-तरह के कपड़े पहनती थी। जब लड़की थी तो वह अपने उभारदार कुच कंचुक (सकूट कुचकंचुक) से ढांकती थी (स० मा० २।१०)। युवती होने पर उसने अपना बाल रेशमी फीते से बांधा (पाटल पट्टक) और उसकी ओढ़नी नाक तक पहुंचती थी (नासाधावधि वाससा) (स० मा० २।५४)। योगिनी के रूप में उसने अपने अंग में भस्म पोती, आंखों में काजल आंजा, स्फटिक की माला गले में डाली तथा एक कंचुक से अपनी बाहुएं और स्तन ढंके (स० मा० २।५९)। धाय के रूप में उसने मूंगे की माला, कुंडल और बाजू पहने तथा एक मोटा कंबल, ओढ़ा, (कंबलघना) जो नितंबों पर से होकर एड़ी तक पहुंचता था (स० मा० ८।७०)। एक मजदूरिन के रूप में वह अपनी मोटी कमर रस्सी (दाम) से बांध कर काम पर जाती थी (स० मा० २।९१)। ऊँचे पहाड़ों पर वह वस्त्रों से अपना मुख ढंक लेती थी (वसनावगुंठितमुखी) और एक मोटे कंबल (घनकंबल) से अपना शरीर (स० मा० २।९३)।

कुलटा शरीर पर सुगंधित द्रव्य मलकर, कंचुक एक तरफ रखकर अपना घूंघट आधा कर देती थी (अर्धस्रस्तशिरोशुक) (नर्म, २।३)।

समयमातृका (५) में क्षेमेन्द्र ने रंगों पर प्रकाश डाला है। कुसुम प्रयत्न से स्थायी बन सकता है। हल्का कुंकुम ही सुहावना लगता है। गरम होने पर ही लाक्षा पकड़ता है। तेल काषाय का दुश्मन होता है। हल्दी उड़ जाती है पर नील स्थायी रहता है।

क्षेमेन्द्र के काव्यों में स्त्रियों के, विशेषकर वेश्याओं के श्रृंगार-पटार के अनेक उल्लेख आये हैं। श्रृंगार में कर्पूर और चंदन का विशेष स्थान था (स० मा० १।१४; ३।२३)। ललाट पर नील तिलक की प्रथा थी (स० मा० २।१०६)। श्रीखंडोज्ज्वल-मल्लिका-तिलक (स० मा० ६।२८) का उल्लेख है। लगता है चंदन का यह तिलक चमेली के फूल के आकार का होता था। प्रसाधन के समय अगर धूप जलायी जाती थी (स० मा० २।५)। वेश्याओं के प्रसाधन में मोती के गहने और माला से सजा (धम्मिल्ल जूड़ा) होता था जिन्हें वे दर्पण में देखती थीं। उनके हाथ में पान का बीड़ा भी होता था (स० मा० ६।४-६)। समयमातृका, ७।४३ में वेश्या के श्रृंगार में कपोलों पर कस्तूरी का स्फुट और कुटिल पत्रांकुर, ललाट पर कस्तूरी का तिलक तथा शरीर पर केसर के लेप का उल्लेख है। कभी-कभी शौकीन पुरुष भी आलते से अपने नख रंगते थे (दे०

६।९)। आज की तरह बाल धोने के लिए त्रिफला काम में आता था (दे० ७।४७)।

स्त्री और पुरुष दोनों ही बालों में खिजाब लगाते थे। बूढ़ी कंकाली खिजाब (रंगाभ्यंग) लगाकर नयी-नवेली बन गयी (स० मा० २।४४)। बुढ़ापे में वेश्याएं खिजाब लगाने (केशरंजन) में तत्पर रहती थीं (दे० ३।३१)। खिजाब (कृच्छानुरंजक) केवल सात दिन तक स्थायी रहता है (स० मा० ५।४३)। रंग से केश काला करने (रागेण कृष्णीकृतकेश) का उल्लेख है (स० मा० ६।२५)।

मध्यकाल में स्त्री पुरुष आभूषणों के बड़े शौकीन होते थे। क्षेमेन्द्र ने इन आभरणों के कई जगह उल्लेख किये हैं। वेश्याओं के गहनों में झनझनाती मेखला (स० मा० १।१४; ३।३७) का विशेष स्थान था। किंकिणी वेश्याओं को प्रिय थी (स० मा० ३।१३)। शंखलतिका और मूंगे की कंठी (विद्रुममालिका) स्त्रियाँ पहनती थीं (स० मा० २।६७)। शंखलतिका शायद शंख का बना हार होता था (स० मा० २।७)। सोने के छल्ले (हेमबालकबालिका) पहनने की चाल थी (स० मा० २।११; दे० ६।२९)। छल्लों से तीन पेंच पड़ते थे (स्थूलत्रिगुण बालकी) (दे० ६।२३)। कानों में ताडी और बाहुओं में नकाशीदार टिकड़े पहने (विभक्तसक्तवटक) जाते थे (स० मा० २।७०)। बच्चे के गले की सिकरी को हेमसूतिका कहते थे (स० मा० २।७३)। पुरुषों के आभूषण में कान के बाले (बालक), कंठाभरण में हेमरक्षा तथा राजावर्त मणि से सजे कड़े होते थे (स० मा० ७।१५)।

घर में व्यवहार करने के अनेक सामानों के उल्लेख हैं जिनमें करछुल (दर्वी), गद्दी (भृसी), कालीन (पटलिका), कुंडा, बरतन, दौरी (करंडिका) भी थे (नर्म० १।८०)। कायस्थ के साथ चलने वाले सामान में बांस की पेटियां (करंड), खाट (शयन); शक्ति, पीकदान (पतद्ग्रह), ताम्रपात्र, जूते, करवा (करिका), भूर्ज रखने के बस्ते (भूर्जभस्त्रा), स्रुक-स्रुवा, अक्षसूत्र, दावात (मषीभांड), दर्पण, स्नानशाटिका, पादुका, टोपियां, खड्ग, मंत्र-पुस्तिका, पंचांग (नक्षत्रपत्रिका) लोहित कंबल, पवित्र सूत्रक, तंत्री, सूची, कलम बनाने के लिए चाकू (कलमकर्तरी), लाख भरी रक्षा, धुरी, योगपट्ट, स्तोत्रमंत्र, गंगा की मिट्टी इत्यादि होते थे (नर्म० २।१०८-११२)। खाने पहरने के सामान में मेष, विहंगम, कमल, ककड़ी, द्राक्षामधु के घड़े, मूंग, घृत, मिर्च, अदरक, नमक, अखरोट, मायूरोपान, कंबल, कांसे और तांबे के बरतन होते थे (नर्म० २।१२३-१२५)।

कहीं-कहीं भोजन-पान के भी उल्लेख आये हैं। मछली का शोरबा, घी, दूध, लहसुन, प्याज इत्यादि पदार्थ पुष्टिवर्धक माने जाते थे (स० मा० २।२६; दे० ३।३२)। मत्स्य,

पूप और मधु लोगों का प्रिय भोजन था (स० मा० २।४९)। भांडा (भंडक) गरीबों का भोजन था (दे० ५।२०)। खाने से पिसे-कुटे सुस्वादु लड्डू (मोदक) (नर्म ३।७); खीर और दही होते थे।

सुरापान निन्दनीय होने पर भी शराब पीने की प्रथा समाज में प्रचलित थी। कला-विलास में क्षेमेन्द्र ने मद को सबसे बड़ा शत्रु माना है जिससे आविष्ट शरीर देखता सुनता नहीं (क० वि० ६।१)। यह शील को हर लेता है। वह अपने दूसरे में भेद नहीं करता। शराब पीकर सद् असद् का ज्ञान नहीं रहता। शराबी रोता है, हंसता है, गाता है और विलाप करता है। उसे अपनी स्त्री की चरित्रभ्रष्टता का भी पता नहीं चलता। वह नंगा होकर नाचता है और उसे अपना मूत्र पीने में भी संकोच नहीं होता (क० वि० ६।१५-२०)।

नर्ममाला (१।४७) में एक तरह की सस्ती शराब का नाम चाय है, इसके विपरीत कस्तूरिका मधु रईसों का पेय होता था। शराब के नशे में मतवालों का आपस में डींग हांकने का उल्लेख समयमातृका में आया है। कलावती के यहां शराब पीकर विट दून की लेने लगे—लड़ाई में मैं राजा का दाहिना हाथ हूं। मेरे सहाय से ही राज खड़ा है। मुझसे ही भरतनाट्य शास्त्र की हस्ती है। मेरी तराजू में रईसों की श्री बसती है। मैं अपनी गणित से त्रिलोक का वृत्त जानता हूं। मैंने राजा भोज की चिकित्सा की। मैंने अपनी सूक्तियों से राजाओं को प्रसन्न किया (स० मा० ।४६)।

मदिरापान, वेश्यागमन इत्यादि दुर्व्यसनों के साथ जूए का भी नाम आ जाता है। जूए में हारकर लोग नंगे बन जाते थे (क० वि० ७।११)। जुआड़ी अपनी जीत के लिए श्वेतार्क गणपति की पूजा करते थे और कौलगुरु को मछली और मांडे समर्पण करते थे (दे० ८।२३)। धूर्त जुआड़ी पासा फेंकने के तरीकों, गिनने और हस्तलाघव में निपुण होते थे। झूठे पांसे चलते थे। कंकाली द्वारा द्यूतशाला के सामने चुपके-चुपके नकली गोटी पांसे (कपटाक्षशलाका) बेचे जाने का उल्लेख है (स० मा० २।८०)।

मध्यकालीन उत्तर और दक्षिण भारत में सामूहिक शिक्षा मठों द्वारा दी जाती थी। उक्ति-व्यक्ति-प्रकरण से पता चलता है कि बारहवीं सदी में केदारेश्वर के साथ सन्नद्ध केदारमठ शिक्षा का एक प्रसिद्ध केन्द्र था जहां वेद-पुराण, काव्य-व्याकरण इत्यादि की शिक्षा दी जाती थी।[४६] रट्टराज के १००८ ई० के खरे पाटन वाले ताम्रपट्ट से पता चलता है कि आत्रेय नामक ब्राह्मण उपाध्याय को दान में एक ग्राम, एक शैव मंदिर

४६. उक्ति-व्यक्ति-प्रकरण, पृ० ७७।

की सेवा-पूजा, शैव साधुओं के अन्न वस्त्र और मठ के छात्रों के लाभ के लिए मिला।[४६] मौइसोर में बल्लिगावे में दक्षिण केदारेश्वर के मंदिर के साथ सम्बद्ध कोडिय मठ के ११६२ ई० के एक लेख में इसका उल्लेख है कि मठ में व्याकरण, न्याय, वैशेषिक, मीमांसा, सांख्य, बौद्ध दर्शन, लकुल सिद्धान्त, पुराण, धर्मशास्त्र, काव्य तथा नाटक पढ़ाए जाते थे, गरीब तथा विकलांगों के भोजन, वस्त्र तथा औषधियों का प्रबंध था।

ग्यारहवीं सदी में वाराणसी के साथ ही साथ कश्मीर भी शिक्षा का एक प्रधान केन्द्र था।[४८] लगता है देश-विदेश के छात्र कश्मीर में शिक्षा के लिए आते थे। क्षेमेन्द्र ने इन देसी छात्रों (मठदेशिक) की चरित्रहीनता पर काफी प्रकाश डाला है। वे पेट पर धोती चढ़ाकर (उदराबद्धवसनैः) और बालों की कसकर गांठ बांधकर वेश्यालयों में मारने मरने को तैयार हो जाते थे (स० मा० ३।१५)। छात्रों को स्याही भूर्जपत्र (मलपत्र) और अंगुलियां नचाने का गर्व होता था (क० वि० ६।३१)। देशोपदेश के छठे उपदेश में तो गौड़ के छात्रों की चरित्रहीनता की क्षेमेन्द्र ने बड़ी कटु आलोचना की है। गौड़ का छात्र देश से कंकाल बन कर आया पर छुआछूत में वह अपना सानी नहीं रखता था। जप पूजा व्रत उसके मुख्य काम थे। कुछ ही दिनों में उस तिलक-धारी ने सत्र भोजन और मालिश से अपना चोला बदल दिया तथा मांस, मदिरा, जूआ और वेश्या के फिराक में रहने लगा। पढ़ने-लिखने में वह पूरा मूर्ख था पर उसका ठाट निराला था। बगल में चादर का आंचल, अलक्तक से रंगे नख, सोने के गहने, रेशमी कपड़े उसकी भंगी के अंग थे तथा वह चरमराते जूते पहनता था। कमर में वह कटारी खोंसता था। सेवकों पर वह लाठी से प्रहार करता था। वेश्याओं की वह हमेशा ताक-झांक में रहता था और उसके साथियों में जुआरी, चर्मकार, नापित इत्यादि होते थे। छुआछूत के पक्षपाती उस गौड़ विद्यार्थी को वेश्या का जूठा भोजन पान ग्रहण करने में संकोच नहीं होता था। विधवाओं और परस्त्रियों की वह बराबर टोह में रहता था। लड़ाई-झगड़े से वह मठ का नाश कर देता था। व्रत का पारण वह मद्य-मांस से करता था। वह अपने माल का अधिक दाम मांगता था और दूसरे के माल का दाम कम आंकता था। बीमार छात्र का सामान वह दूसरों के साथ बांट खाता था। सत्रपाली के साथ संबंध जोड़ने में भी वह आनाकानी नहीं करता था।

नर्ममाला २।३३-५४ में भी विदेशी छात्रों की मूर्खता और चरित्रहीनता की काफी हंसी उड़ाई गयी है। मठ दैशिक चंदन का लंबा तिलक लगाता था, बड़ा जूड़ा

---

४७. एपि० इंडिका, ३, पृ० २९२।

४८. हांडीकी, यशस्तिलक चंपू, पृ० ३४८।

बांधता था और चरमराते जूते पहनता था। वह ब्राह्मणों के स्पर्श को भी वर्जनीय मानता था। वह दावात और भूर्जपत्र लिये घूमता रहता था। संयोगवश वह नियोगी के यहां लड़कों को पढ़ाने के लिए मासिक वेतन पर शिक्षक बन बैठा। लिपि न जानते हुए भी वह लड़कों को पढ़ाने लगा। वह उन्हें अंडबंड प्राकृत और संस्कृत की शिक्षा देने लगा पर उसका ध्यान केवल वेतन की वसूली पर था। वह फलकों पर पाठ लिखाता था पर अपना समय कातने और बुनने में लगाता था। जब बच्चे कुछ पूछना चाहते थे तो वह उन्हें गालियां देता था। उसने क्रमशः घर की सब स्त्रियों को बिगाड़ दिया।

विद्यार्थियों के जिस उद्धत व्यवहार का उल्लेख क्षेमेन्द्र ने किया है उसी तरह का, पर बहुत ही शिष्ट वर्णन उद्योतन सूरि ने कुवलयमाला (७७९ ई० में लिखित) में किया है।[४९] उनके वर्णन से आठवीं सदी की शिक्षा प्रणाली और मूर्ख विद्यार्थियों की आपसी बातचीत पर प्रकाश पड़ता है। कथा यह है कि विजयानगरी में कुमार कुवलयचंद ने एक बड़ा विद्यालय (मठं) देखा। पहले तो वह एक राजप्रासाद-सा लगा, पर पूछने पर पता लगा कि वह विद्यार्थियों के लिए एक बड़ा विद्यालय (सव्व चट्टाणं मठं) था। इस बात का निश्चय हो जाने पर कि उसके विद्यार्थी राजकुमारी कुवलयमाला के संबंध से बातचीत कर रहे होंगे कुवलयचंद उस विद्यालय में घुसा। भीतर उसे लाट, कर्णाटक, मालवा, कान्यकुब्ज, गोल्ल, महाराष्ट्र, सौराष्ट्र, ढक्क (पंजाब); श्रीकंठ (उत्तर प्रदेश में सहारनपुर के पास का प्रदेश) और सिन्धु प्रदेश के विद्यार्थी मिले। वे धनुर्वेद, गदका-फरी, छुरी चलाना, लाठी चलाना, कुश्ती, नियुद्ध, चित्रकला, गायन-वादन इत्यादि सीख रहे थे। विद्यालय में अनेक कक्षाएं थीं। इनमें से एक में विद्यार्थी व्याकरण शास्त्र निहित पद, प्रत्यय, लोपागम, वर्ण, विकारादेश, समासोपसर्ग, मार्गणा इत्यादि पढ़ रहे थे। दूसरी कक्षा में बौद्ध दर्शन में आए रस, गंध, स्पर्श शब्द, संयोग-मात्र-कल्पना, रूपस्थ, क्षण-भंग-भंगुर इत्यादि पढ़े जा रहे थे। तीसरी कक्षा में सांख्य दर्शन के आधार पर उत्पत्ति-विनाश, परिहारावस्थिति, नित्येक, समवाय-रूप, विशेषोपनीय, सुखदुःखानुभव का अध्ययन हो रहा था। चौथी कक्षा में वैशेषिक दर्शन में वर्णित द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य-विशेष, प्रशस्त रूप निरूपणावस्थित आत्मवाद प्ररूपमा इत्यादि की चर्चा हो रही थी। पांचवीं कक्षा में विद्यार्थी मीमांसा दर्शन के अनुसार प्रत्यक्ष; अनुमान, प्रमाण-षट्क-निरूपित नित्य जीवादिनास्ति, सर्वाणुवाद, पदविकल्पमान इत्यादि पढ़ रहे थे। छठी कक्षा में न्याय दर्शनोक्त प्रमाण-प्रमेय-संशय-

---

४९. उद्योतन सूरि कृत कुवलयमाला, पृ० १५०-१५२।

निर्णय-छल-जाति-निग्रहस्थान पढ़ा जा रहा था। सातवीं कक्षा में अनेकांतवादी जैन जीवाजीवपदार्थानुगत-द्रव्यस्थिति-पर्याय-नय-निरूपणा-विभागोपलब्ध-नित्यानित्य की चर्चा कर रहे थे। आठवीं कक्षा में लोकायतिक पृथ्वी-जलनानिलाकाश, संयोग विशेषोत्पन्न चेतन तथा नास्तिकवाद की चर्चा कर रहे थे।

अध्ययनरत दर्शन के विद्यार्थियों को देखकर कुवलयचंद विजयापुरी की शिक्षा पद्धति और आचार्यों की विद्या से बहुत प्रभावित हुए। पर उस विद्यालय में केवल दर्शन मात्र ही अध्ययन का विषय नहीं था। विद्यालय के एक दूसरे भाग में मंत्र, निमित्त, योग, अंजन, कुहक (जादू), धातुवाद, यक्षिणी सिद्धि, खत्त (?) योगमाल, मंत्रमाल, गारुड़ (सर्प विष दूर करने की विद्या), ज्योतिष, स्वप्नशास्त्र, रसबंध, रसायन, छंद, निरुक्त, पत्रच्छेद्य, इन्द्रजाल, हाथीदांत की कारीगरी, लेप्यकर्म, चित्रकर्म, कनककर्म, विषकर्मतंत्र, भूततंत्रकर्म, इत्यादि विद्याएं पढ़ाई जा रही थीं। बहत्तर कलाओं और चौंसठ विज्ञानों में निष्णात अध्यापकों को देखकर कुवलयचंद बहुत ही प्रभावित हुए।

विद्यालय के एक दूसरे भाग में राजकुमार ने विद्यार्थियों को वैदिक अध्ययन में लगा देखा। ये विद्यार्थी कुछ अजीब-से दीखते थे। चपतें खाने से मानो उनके सिर के बाल घुंघराले बन गये थे। पिटते-पिटते देह गढ़ गयी थी। उनके कंधे भरे थे और दूसरों का माल खा-खाकर वे मोटे ताजे दीख पड़ते थे। धर्म, अर्थ और काम से उनका कोई मतलब नहीं था और रिश्तेदार और मित्र सर्वदा उनसे दूर ही रहते थे। उनमें से कुछ तरुण और बाकी बालक थे। दूसरों की स्त्रियों को घूरना उन्हें प्रिय था तथा उन्हें अपने सौन्दर्य, देह और वाणी का अभिमान था।

उन वैदिक विद्यार्थियों को देखते ही कुलवलयचंद को यह भान हो गया कि वे दूसरों की बात में रस लेने वाले थे, इसलिए वे कुवलयमाला द्वारा उद्घोषित पद के एक पाद के बारे में अवश्य बातचीत करेंगे। इसके बाद विद्यार्थियों की आपस में बेसिर-पैर की बातों के सुंदर नमूने दिये गये हैं—

"अरे आरोट्ट, भूलने के पहले बोल तो। अरे जनार्दन, कह तो कल तूने कहां भोजन किया ?"

जनार्दन ने कहा—"अरे मैंने उस बदमाश बनिए (किराड) की बेटी को फंसाया।"

पहले ने कहा—"अरे उस महिला में क्या खास बात है ?"

जनार्दन बोला—"अहहा, अरे वह राजकुमारी, वह अपने संपूर्ण लक्षणों से गायत्री मंत्र-सी लगती है।"

दूसरा बीच में टपक पड़ा—"अरे कह तो वहां भोजन कैसा था ?"

एक दूसरे ने बेसिरपैर की उड़ाई—"अरे अछूते, मेरा भोजन तूने छू लिया। मैं तक्षक नाग हूँ वासुकि नहीं (मैं डसनेवाला हूं, मथकर अमृत देनेवाला नहीं)।"

एक बोला—"अरे क्यों वृथा परिश्रम करता है? बकबक छोड़। सिंह होकर भोजन छूने की बात करता है।"

एक दूसरा बोला—"अरे रे महामूर्ख, महानगर पाटलिपुत्र में रहनेवाले समासोक्ति क्या समझें।"

एक दूसरा बोला—"वह (बनिए की बेटी) मुझसे भी बढ़कर मूर्ख है।"

एक बोला—"किसलिए?"

जवाब मिला—"गँवार ही प्रचुर निपुणोक्ति कहते हैं।"

पहला बोला—"अरे मर भी, किसी तरह मेरा पिण्ड छोड़। हम सब विदग्ध हैं।"

दूसरा बोला—"वाह रे भट्ट, तू निश्चित रूप से विदग्ध है, पर तूने भोजन के समय छूया क्यों?"

पहला बोला—"अरे, केवल महामूर्ख ही वासुकि के हजार मुख की बात कहते हैं।"

कुमार ने सोचा—अहो, मैदान के बालक विद्यार्थियों की बातचीत असंबद्ध होती है, अक्षरों और आलाप का मेल नहीं खाता। अथवा दूसरों के अन्न पर मुस्टंड बने विद्या, ज्ञान-विज्ञान और विनयहीन इन हीन विद्यार्थियों (चट्टरसायणं) को दूसरा काम ही क्या है। यह सोचते हुए भी कुवलयचंद ने दूसरे विद्यार्थियों से पूछा–"अरे भट्टपुत्र, क्या तुम सब राजकुल की खबर नहीं रखते?"

वे बोले—"अरे व्याघ्रस्वामी, राजकुल की क्या खबर है?"

व्याघ्रस्वामी बोला—"पुरुषद्वेषिणी कुवलयमाला ने एक पाद पूर्त्ति के लिए सामने रखा है।"

यह सुनते ही एक विद्यार्थी ने ताल ठोंककर कहा—"अगर पंडिताई की बात है तो कुवलयमाला को मुझे वरना चाहिए।"

एक दूसरे ने ललकारा—"अरे तेरा कौन-सा पांडित्य है?"

उसने जवाब दिया—"मैं षडांग वेद पढ़ता हूँ, त्रिगुण मंत्र पढ़ता हूं, फिर मेरा पांडित्य क्यों नहीं?"

एक ने कहा—"अरे त्रिगुण मंत्र थोड़े ही विवाह करा सकता है। जो पाद के पूरे भाग पूरा करेगा वही उसे ब्याह सकता है।"

एक दूसरा बोला—"मैं सहृदय गाथा पढ़ सकता हूँ।"

सब बोल उठे—"क्यों रे व्याघ्रस्वामी; तू गाथा पढ़ सकता है?"

व्याघ्रस्वामी एक स्कंधक को गाथा कहकर पढ़ गये। उसे सुनकर एक विद्यार्थी ने

कुपित होकर कहा—"अरे मूर्ख, स्कंधक को तू गाथा कहता है। क्यों तू मुझसे गाथा पढ़ने को नहीं कहता ?"

उसने कहा—"अरे यजुस्वामी, तू गाथा तो पढ़।" पर यजुस्वामी गाथा की जगह एक श्लोक पढ़ गये। लोगों के एतराज करने पर उसने गाथा पढ़ी। सब लोग बोल उठे—"अहो, भट्ट यजुस्वामी गाहाविदग्ध पंडित क्या गाथा पढ़ता है। कुवलयमाला उसे ही ब्याहेगी।" पर इस वाहवाही में कोई बोल उठा—"अरे कुवलयमाला ने कौन सा पाद पूर्त्ति के लिए रखा है?" बेचारे यजुस्वामी घबराए—"अरे, मैंने राजांगण में उसे पढ़ा था, अब भूल गया। पर उसे सब जानते हैं।"

विद्यालय और विद्यार्थियों के उपर्युक्त चित्रण में कितनी सचाई है यह कहना तो संभव नहीं, पर हर युग में विद्यार्थी समुदाय का व्यवहार, चाहे बुरा हो अथवा भला, अपनी अहमियत रखता था। सभी विद्यार्थी संत बनने का दावा नहीं कर सकते थे और उनकी चारित्रिक कमजोरियां प्राचीन काल में भी वैसी ही रही होंगी जैसी आजकल। यह भी संभव है कि जैन होने के नाते उद्योतन सूरि ने वैदिक विद्यार्थियों की हंसी उड़ाई हो। विद्यार्थियों की, विशेषकर संस्कृत पाठशालाओं के विद्यार्थियों की ऊटपटांग बातचीत का जो चित्र कुवलयमाला में खींचा गया है अन्यत्र नहीं मिलता।

समाज की बिगड़ी हुई दशा का क्षेमेन्द्र ने पूरी तरह से दर्शन कराया है। देश में धूर्तों का बोलबाला था और जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में इनसे भेंट होती थी। कलाविलास में इन धूर्तों की तालिका दी हुई है (क० वि० ९।२४-७२)। तरुण धनी विधवा से मिला देने की लालच दिलवाकर धूर्त बेवकूफ को लूट लेते थे। रोजी (प्रत्यहवेतन) पर नियुक्त कारीगर (कारुशिल्पी) ठीक कामकाज करने में आनाकानी करते थे। घर के चोर वे सेवक या बंधुजन थे जिनकी खाने भर की तो कमाई होती थी और द्यूत मद्य और वेश्या पर काफी खर्च। न्याय-चोर अदालत में लोगों को लूटने वाले अधिकरण भट्ट थे। वृत्ति-चोर लोगों की वृत्ति मारने में मजा पाते थे। देश-चोर सब्जबाग दिखलाकर लोगों को विदेश यात्रा पर ले जाते थे। फेरी लगाने वाले व्यापारी धोखा देकर माल बेचते थे। अकेले में यह कहकर कि राजा तुम पर प्रसन्न है, राजसेवक दूसरों को ठगते थे। आज मैंने सपने में कमलहस्ता लक्ष्मी को तेरे घर में घुसते देखा और यह कहा कि मेरा भक्त तुझे खूब माल देगा, यह कह कर धूर्त बेवकूफों को ठगते थे। धूर्त नकली रुपये अथवा जालसाजी करके लोगों को लूटते थे। वे प्रोषितपतिकाओं को दृष्ट अदृष्ट का डर दिखला कर ठगते थे। कुछ धूर्त विदेश में खूब ठाट दिखलाकर जमा-जत्थे की रकम गायब करके रफूचक्कर हो जाते थे। अपने को हारे हुए राजपुत्र कह कर उनकी ठगी चलती थी। वे वेश्याओं को खोटे रुपये देकर ठगते थे इत्यादि।

(८)

वेश्या व्यसन, गोष्ठियां और आपानक इत्यादि भारतीय संस्कृति के—चाहे भले अथवा बुरे रूप में—अविच्छिन्न अंग रहे हैं। प्राचीन काल में अनेक बुराइयों के रहते हुए भी वेश्याएं और उनके संसर्ग में आने वाले नागरिक, कलाओं के पारखी माने जाते थे और उन्हें सुसंस्कृत वर्ग आदर की दृष्टि से देखता था। वेश्याओं और उनके ग्राहकों के साथी विट अपना सारा मालमता गंवाकर भी अपनी कलाओं और वाक्-पटुता के लिए प्रसिद्ध थे। पर मध्यकालीन भारत में जैसे भारतीय संस्कृति का बहु-मुखी पतन हुआ उसी के अनुरूप वेश-संस्कृति का भी पतन हुआ। वेश्याएं और कुटनियां लूट का साधन बन गयीं और विट बदमाशी के प्रतीक बन गये तथा खुशामद और ठग-हारी उनके पेशे।

क्षेमेन्द्र ने वेश संस्कृति की इस विकृत अवस्था का अध्ययन किया और उसकी बुराइयों को उधेड़ कर सबके सामने रख दिया। उन्होंने वेश्याओं के छल-छंद, कला-प्रियता, लूट-खसोट इत्यादि सभी अंगों का वर्णन किया है। उनके काव्यों से पता चलता है कि विटों का चारित्रिक पतन अपनी चरम सीमा को पहुंच गया था तथा वे लड़ाई-झगड़े और दंगा-फसाद के अड्डे बन गये थे। जिस सुसंस्कृत वेश का पता हमें गुप्तकालीन चतुर्भाणी से लगता है उसका बहुत ही हीन रूप हमें क्षेमेन्द्र के काव्यों में दीख पड़ता है। वेश की यह हालत केवल कश्मीर तक ही सीमित नहीं थी उसका पतन देश भर में हो चुका था।

कला विलास (४।३-११) में क्षेमेन्द्र ने अपने ढंग से वेश्याओं की चौंसठ कलाए गिनायी हैं जिनमें वेश व्यवहार, गीत, नृत्य, वक्रवीक्षण, काम परिज्ञान, ग्रहण, मित्रवंचन, पान केलि, सुरत, आलिंगन, चुंबन, निर्लज्जता, आवेग, संभ्रम, ईर्ष्या, रुदन, मान भंग, स्वेद, भ्रम, कंप, एकान्त में प्रसाधन, नेत्र निमीलन, निस्पंद, मरने का बहाना, विरह, असह्य राग, क्रोध रोकना, जननी के साथ नकली लड़ाई, अच्छे घर जाने की बाट जोहना, हरण, चोरी, गौरव शैथिल्य, निष्कारण दोष की बात करना, नकली दर्द का बहाना, अभ्यंग, रजस्वला होने का बहाना, रुखाई, गले में हाथ देकर निकाल बाहर करना, त्यक्त कामुक द्वारा धन कमाए जाने पर फिर से उसकी खुशामद, तीर्थ, उपवन, देव मंदिर की सैर, घर की देखभाल, वशीकरण, वृक्षायुर्वेद, केश रंजन, भिक्षु तापसों की सेवा, द्वीप दर्शन, कुटनपन, इत्यादि आ जाते हैं।

इन कलाओं के अध्ययन से पता चलता है कि इनमें अधिकतर कलाएं वेश्याओं की मानसिक प्रक्रियाओं और कामी को ठगने की द्योतक हैं। कामशास्त्र द्वारा अनुमोदित

वास्तविक कलाओं में तो केवल प्रसाधन, काम परिज्ञान, अभ्यंग, वश्यौषधियों का ज्ञान, वृक्षायुर्वेद, केश रंजन इत्यादि ही हैं। द्वीप दर्शन कला से शायद वेश्याओं द्वारा द्वीपांतर में यात्रा की ओर संकेत है। अपनी कलाओं से धन कमाना ही उनका मुख्य उद्देश्य था। थोड़े से धन के लिए वे अज्ञात नाम और वर्णवालों का साथ करती थीं, ठगहारियों द्वारा अर्जित कामियों का धन लूटती थीं। नीच घुड़सवार, फीलवान और सब लोगों को ठगने वाले शिल्पी उनके प्यारे होते थे (क० वि० ४-१२-१४)। वेश्याएँ (सार्थ रमणी) सोते हुए कामुकों की धोती तक लूट लेती थीं (क० वि० ९।६७)।

देशोपदेश के तीसरे उपदेश में भी क्षेमेन्द्र ने वेश्याओं की काफी बुराई की है, और उनकी हंसी उड़ाई है। वे लोभी, लुटेरी और स्वच्छंद होती हैं। प्रेम और काम विहीन होने से वे अपनी ही परवाह करती हैं। वे नीचों की संपत्ति भोगती हैं, सब का साथ करती हैं और अन्त में फल विहीन हैं। बूढ़ी होने पर भी उनकी लालच कम नहीं होती। वे बालक, वृद्ध और तरुण सबको एक-सा देखती हैं। वे साथ छूटते ही भागती हैं। अपनी फीस (भाटी) से वे सब कुछ लूट लेती हैं। चित्त के सद्भावों से वे वर्जित होती हैं। उनके घर में कामियों का आना-जाना और बाट जोहना बराबर लगा रहता है। वे कामियों की जड़ ही काट देती हैं। वे समय-समय पर बाला प्रौढ़ा और वृद्धा बन जाती हैं। वे पंडित को मूर्ख, धनी को निर्धन तथा पवित्र को चोर बना देती हैं। वे अपने उभरे कुच दिखला कर लोगों को ठगती हैं। पैसे के लिए वे अनवरत संगम करती हैं। यौवन उनके कमाने के दिन हैं। उनका संगम सब काल में नीरस है। नौसिखुए के साथ वे कहानी, शराबखोरी और झूठी नींद में रात बिता देती हैं। बहाना बनाना उनका काम है। बुढ़ापे में वे खिजाब लगाती हैं तथा घी, दूध और मांस खा-पीकर अपना ढला हुआ यौवन वापिस लाने की कोशिश करती हैं। बुढ़ापे में वे बन-ठन कर निकलती हैं, गलित स्तनों को ढांकती हैं और घूंघट निकाल कर छाती उभार कर चलती हैं। बीमार पड़ने पर वे गुरुओं से रक्षा सूत्र बंधवाती हैं तथा बराबर जंतरों का प्रयोग करती हैं। तीर्थों में भी सफेद कपड़े पहन कर वे कमाती हैं। वे धन के लिए देवपूजा करती हैं तथा ज्योतिषियों से ग्रह फल पूछती हैं।

नर्ममाला में क्षेमेन्द्र ने वेश्याओं के अंधविश्वासों और ठगहारियों पर प्रकाश डाला है। कौल गुरु के पास वे अपने यहां घटस्थापन करने का निमंत्रण देने जाती थीं। गुरु उन्हें कामियों को लूटने के लिए वशीकरण चूर्णों का प्रयोग बतलाते थे तथा उन्हें रक्षा सूत्र देते थे (न० मा० ३।५४-५८)।

क्षेमेन्द्र के 'समयमातृका' का कथानक तो वेश्या जीवन पर ही आश्रित है। उससे मध्यकालीन वेश्या जीवन के बहुत से पहलुओं पर खासा प्रकाश पड़ता है। कुचों की

कठोरता, भ्रुवों की कुटिलता और नेत्रों की कालिमा से वेश्या वृत्ति का पता चलता था (स० मा० १।७)। अपने व्यापार के अनुरूप वे प्रसाधन कला में निपुण होती थीं। वे मेखलाएं पहनती थीं, तथा कपूर और चंदन रस से लिप्त होती थीं (स० मा० १।१४)। उनके कंचुक स्तनों पर नुकीले होते थे (स० भा० २।७)। बुढ़ापे में वे खिजाब से अपने बाल काले करती थीं (स० मा० २।४४) तथा यत्नपूर्वक अपने कुच उठाती थीं, बालों में लाल रेशमी फीतियां बांधती थीं, आंखों में सरल और स्थूल अंजन व्यंजना करती थीं और आधी नाक तक घूंघट खींच लेती थीं (स० मा० २।५४)। ललाट पर नीला तिलक लगाती थीं (स० मा० २।१०६)। चंदन के तिलक मल्लिका के आकार के होते थे (स० मा० ६।२८)। श्रृंगार के समय सखियां उसे घेरे रहती थीं। एक हार सजाती थी, दूसरी उसके कंठ में डालती थी, तीसरी वलय युगल संभालती थी, चौथी मेखला देखती थी और पांचवी उसके शरीर में चंदन रस लगाती थी (स० मा० ३।३७)। शिकार की खोज में वे खूब सज-धज कर राजपथ पर स्थित कोठों पर बैठती थीं। उनके आभूषणों में मोती के गहने तथा झनझनाती हुई कांची होती थीं। हाथ में पान के बीड़े तथा धम्मिल की माला तथा दर्पण उनके श्रृंगार के मुख्य अंग होते थे (स० मा० ६।४-६)। कस्तूरी का पत्रभंग उनके गालों पर बना रहता था, चंदन का तिलक ललाट पर बालों से सटकर होता था और देह में केसर लगी रहती थी (स० मा० ७।१०)।

क्षेमेन्द्र ने मध्यकालीन वेश का बहुत ही जीता-जागता चित्र खींचा है (स० मा० ३)। संध्या होते ही वेश्याओं के प्रसाधन से निकले काले अगर की धूप से सारा चकला भर गया तथा चन्द्रोदय होते ही मदनोत्सव प्रारंभ हो गया। शराब के लोभी विट वेश्याओं के घरों के सामने की गलियों में चक्कर मारने लगे। दरवाजों पर कान लगा कर कुटनियां ग्राहकों के आसरे खड़ी थीं जो खुटका होते ही चौंक पड़ती थीं। वेश्याएं दिन में कामुकों द्वारा पारित्यक्त मालाएं तथा पान की पीक से भरे फर्श को पोंछ-पोंछ कर और शय्या सजाकर दूसरों की बाट जोह रही थीं। एक वेश्या दूसरी से कहती थी—बयाना लेकर फिर तू कैसे दूसरा सौदा कर रही है। चकले में हुज्जत होने पर मठदेशिकों ने कमर कस ली। कुटनी दो बयाने ले लेने पर तीसरे ग्राहक के आने पर एक दूसरी की खोज करती थी। कोई वेश्या पुराने के न आने से दुखी हो रही थी तो कोई फिर से धनी बने पुराने कामुक की खुशामद कर रही थी और अपनी खाला की शिकायत। कुटनियां नकली यारों पर खनखना रही थीं। कोई वेश्या नशे में बदहोश टकहियों (क्षुद्रा) से अपना घर भर जाने पर अपने प्रेमी के साथ अपनी सखी के घर जा रही थी। कोई पालतू बिल्ली को बुलाने के बहाने दूसरी गली में कामुक की ओर इशारा कर रही थी। एक पास में है, दूसरा आ गया, अब मैं क्या करूं—ऐसा दूसरी

वेश्याएं अपनी माता से पूछती थीं। कोई बुड्ढी अपनी नौची की उमर पर तरस खा रही थी। कुछ वेश्याएं अपनी सूनी सेज देख कर बहाना कर रही थीं—बाहर म्लेच्छ गायक घूम रहे हैं। अज्ञात से भाड़ा नहीं लेना चाहिए। मना करने पर भी दरिद्र कामुक के आने पर एक दूसरी सिर दर्द का बहाना करके रो रही थी। कुछ कुटनियां बेवकूफ पर धनी कामुकों की तारीफ का पुल बांध रही थीं। कोई कुटनी यह कह कर कि उसकी पुत्री किसी अधिकारी के पुत्र की रक्षिता है, तीन गुना भाड़ा वसूल कर रही थी। कोई कुटनी विट से भाव-ताव पटा रही थी तो कोई अपनी बेटी को किसी अधिकारी द्वारा ले जाये जाने का बहाना करके दरिद्र कामुक को टरका रही थी। कोई वेश्या टक्क (पंजाबी) से पूरी फीस वसूल न होने की, सेनापति से दुश्मनी की तथा कायस्थ से न मिलने पर देव मंदिर की रोजी मारी जाने की बात कह रही थी, तो कोई कामी को लूटने के लिए अपनी प्रेम गाथा गा रही थी। कोई विट वेश्या द्वारा घर में न घुसने दिये जाने पर उसे गालियां दे रहा था। कोई वेश्या केवल गुणीजनों से ही अपने संसर्ग की बात कह कर डींग हांक रही थी (स० मा० ३।१०-३६)।

रात भर मौज लेकर सबेरे जब कामुक वेश से वापिस लौटते थे और वेश्याएं उनके संबंध में बातचीत करती थीं, उस समय का भी क्षेमेन्द्र ने सुंदर खाका खींचा है। सबेरा होते ही कामुक बुझे दीप की तरह वेश्याओं के घरों से निकल रहे थे। मुर्गे की बांग सुनते ही एक जटा-जूटधारी पाशुपत अपनी प्रेमिका के घर से गलियों के रास्ते अपने मठ की ओर भगा। कुछ विट एक वेश्या के घर रात का बचा माल उड़ा रहे थे। एक विट के दरवाजे पर एक वेश्या अपने रात की मौज की वृथा डींग हांक रही थी। एक वेश्या गणनायक द्वारा गहने तोड़ दिये जाने पर अपनी खाला के सामने कलप रही थी। एक बुड्ढी ग्राम नियोगी को संदेसे दे रही थी। एक विट के साथ शराब पीने के लिए निकली वेश्या के आगे-आगे शराब का घड़ा लिए और एक मेढ़ा खींचते हुए एक पुरुष चल रहा था। चीनी वस्त्र न मिलने पर एक वेश्या अपने यार से लड़ रही थी। मेढ़े का मांस अधिक खा जाने से विषूचिका हो जाने पर एक कुटनी वैद्य के लिए चिल्ला रही थी और लोग उसकी हंसी उड़ा रहे थे। एक वैद्य सबेरे मिली सुपारियां अपनी रक्षिता को दे रहा था। एक गायक द्वारा रात में बरतन भांडे तोड़ दिये जाने पर वह सबेरे वेश्याओं के पैर पकड़ रहा था। एक बनिए को बुत्ता देकर वेश्या उसकी कसम खा रही थी। बाप के घर चोरी करने वाले प्रेमी को उसकी प्रेमिका छिपा रही थी। एक श्रोत्रिय से केवल एक मूठी सूखा आटा मिलने पर एक वेश्या उसे गाली दे रही थी। एक खाला कामुक से चुराया हुआ भोजन चुपके-चुपके खा रही थी। अपने प्रेमी से लड़ाई करके बेहोश एक वेश्या को कुछ गहने दिलवाकर मनाने का प्रयत्न कुछ सखियां

कर रही थीं। बाल में खिजाब पोते एक गुरु वेश्या के यहां यज्ञ कराने जा रहे थे। लोगों का नाश करने वाला एक आस्थान भट्ट फटे कपड़े पहने एक्के पर जा रहा था। घोड़े पर चढ़ा एक अधिकारी वेश्या को घूर रहा था। एक धूर्त कुटनी के आदेश से वेश्या की खुशामद कर रहा था तथा एक जौहरी के बेटे की भी उस पर निगाह थी (स० मा० ६।८-३१)।

समयमातृका में वेश्याओं द्वारा नये ग्राहक फंसाये जाने का भी सुंदर वर्णन है। कंकाली नेपंक नामक एक रईस बनिए के बेटे को कलावती की ओर निहारते देखकर उसे फंसाने की कोशिश शुरू कर दी। वह ताड़ गयी कि खूब सजाधजा पंक, जिसकी पान की पीक से देह चितकबरी बन रही थी, जिसके पैरों में लाल जूते थे, जो डगमगा कर चल रहा था तथा जो देखने में भोला-भाला था, कलावती का शिकार बन सकता था। उसने फौरन नापित कंक को उसके पास दूत बनाकर भेजा (क० वि० ६।३१-३६)। चतुर नापित उसे फांस लाया और कलावती सजधज कर उससे मिलने के लिए तैयार हो गयी। पंक खूब सजधज कर उसके पास गया। बहुत चूना पड़े पान खाने से मुंह कट जाने पर वह सी-सी कर रहा था। उस अवसर पर द्रव्यक्षय-दीक्षा-यज्ञ के सात ऋत्विज महाविट भी उपस्थित थे जिनमें निर्गुट कायस्थ, भरताचार्य, तुलाधर, गणक, वैद्य और कुटिलक थे। वेश्या के घर पंक के पहुंचते ही महफिल जम गयी। वह सिखे-सिखाए मजाक करने लगा तथा कंकाली ने महाविटों की कपट स्तुति आरंभ कर दी। लगता है ऐसे अवसर पर उपस्थित लोगों में आगंतुक द्वारा पान बाँटने की प्रथा थी। इनमें कलावती की धाय, नापित कंक, शांखिक, एक महाव्रती, स्थलपति का पुत्र, कल्पपाल, कलावती का बहनोई, मामा, भाई, कलावती का दत्तक पुत्र, भरत भाषाज्ञ, गायक, रसोईदार, कुम्हार, छत्रधर, एक्केवान, ग्रह शांति करानेवाला ब्राह्मण, भारापिक, नाविक, उद्यानपाल, पौष्पिक, मोची, धावक, चांडाली, डोम्ब, गुरु, सखी इत्यादि थे। पान की लूट के बाद विटों ने खूब शराब पी। कलावती ने पान देकर इन सब को विदा किया और अपने प्रेमी के साथ वितान, शुभ्रोपधान, तथा चीन प्रच्छद से सजी शय्या युक्त शयनगृह में प्रवेश किया (स० मा० ७)।

वेश्याओं के छलछंदों का समयमातृका में विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। कंकाली द्वारा कलावती को उपदेश में ये बातें स्पष्ट हो जाती हैं। वेश्याओं को पहले मित्र बनाने चाहिए फिर उनकी मार्फत कामुकों का मन, गुण, हृदयाकर्षण के उपाय, शील, प्रेम तथा विरक्ति जानना चाहिए। धनी कामुकों के मित्रों को प्रच्छन्न रति से भी संतुष्ट करना चाहिए। निम्नलिखित व्यक्तियों को प्रेमी बनाना चाहिए—बिना बाप का धनी एकलौता बेटा, कायस्थ, स्पर्धा करने वाला बनिए का बेटा, हमेशा

बीमार अमात्य के वैद्य का पुत्र, नपुंसकता के प्रवाद को दबाने का इच्छुक, मतवाला, धूर्त, निरंकुश राजपुत्र, कामुक द्विज का गंवार बेटा, मालदार गायक, यात्रा से तुरत लौटा सार्थवाह, देवपरायण रईस, गतानुगतिक मूर्ख, शास्त्र का घमंडी पंडित तथा रोज शराब पीने वाला व्यक्ति (स० मा० ५।६०-६७)।

वेश्या पहले समय न मिलने का बहाना करती है और फिर सिर दर्द और बीमारी का। धनी की वह पत्नी की तरह सेवा करती हैं। फिर स्वयं नखक्षत लगाकर प्रेमी में संदेह करके उससे झगड़ती है, खाला की निंदा करती है और स्वयं दूती बनती है। उसे विदेश यात्रा की सलाह देती है। स्वप्न में उसका नाम लेती है तथा उससे पुत्र की कामना करती है, प्रेमी के विरह में प्राण जाने की बात चलाती है। उसका प्रेम बने रहते वह उसका माल चूस लेती है और माल चुक जाने पर उसे निकाल बाहर करती है (स० मा० ५।७०-७८)।

कामुक के घर से न निकलने पर वह उसके साथ कठोर व्यवहार करती है। ताने मारती है, उसे सेज पर नहीं आने देती, उसकी निर्धनता और दूसरों की दौलत की तारीफ करके कलह और उपवास करके वह उसे काफी दिनों तक पास नहीं आने देती। अगर वह फिर भी न माने तो वह उसकी गरीबी की भर्त्सना करके उसे अपना घर छोड़ने को मजबूर करती है। पर वह खाली हाथ नहीं बैठती, पहले चूसे हुए पर फिर से धन पैदा करने वाले प्रेमी को वह अपने नखरे-चोंचले से पुनः फांसती है (स० मा० ५।७९-८९)।

पंक के प्रति कलावती के व्यवहार से यह बात स्पष्ट हो जाती है। पहले तो उससे विवाह की बात चलाकर कलावती ने उसकी रकम अपने नाम लिखवा ली। इसके बाद कंकाली उसके निकालने की तदबीर सोच कर उससे बोली—तुम जवान हो पर मेरी बेटी जल्दी ही बूढ़ी हो जायगी। उसे गर्भ की भी आशंका है, अगर ऐसा हुआ तो उसका यौवन नष्ट हो जायगा और उसे भीख मांगने के सिवाय कोई चारा नहीं रह जायगा। इसलिए तुम उसके नाम अपनी जायदाद लिख दो। उसने वैसा ही किया, पर बात यहीं समाप्त नहीं हुई। कुटनी के इशारे से नापित कंक ने कलावती से कहा—अरी कलावती, तेरे लिए ठाकुर का पुत्र देवगृह के खजाने का कायस्थ और महामात्य होड़ लगा रहे हैं, फिर क्यों तू इस दरिद्र के फेर में पड़ी है। बनिए का बेटा यह सुन कर बहुत दुखी हुआ पर वह कर ही क्या सकता था। अब कलावती ने अनेक बहाने करने शुरू किए—आज मेरा व्रत है, आज मेरे मित्र के बेटे का चूड़ाकरण है। यह कहकर वह उसे टरकाने लगी। अन्त में कंकाली ने अंतिम चाल चली। उसने पंक से कहा—वेश के झगड़े में खून हो गया है। राजा धनियों का खून सूंघता

रहता है इसलिए तू यहां से भाग जा। बेचारा पंक राजा के डर से उसी समय कलावती को छोड़ भाग खड़ा हुआ (स० मा० ८)।

पर वेश्याओं के उपर्युक्त छलछंदों से यह न मान लेना चाहिए कि हमेशा उन्हीं की पौ बारह पड़ती थी। उनके बारे में चोर के घर सीनाजोर की कहावत चरितार्थ होती थी। कभी-कभी बहुत सेवा करने पर भी शिकार निकल भागता था। अकसर वे झूठी बातों के फेर में फंस कर ठग ली जाती थीं। किसी से गहरी रकम ऐंठने पर शहर कोतवाल से खबर पाकर राजा उन पर चोरी का इल्जाम लगाता था। कभी-कभी प्रतिस्पर्धिनी वेश्याएं उनके कामुक छीन लेती थीं। गरीब युवकों पर फिदा होकर अपने धनी प्रेमियों को खो बैठती थीं। मित्रों के बहकाने में आकर कामुक उन्हें छोड़ देते थे। उनके अनखने स्वभाव से तंग आकर कामुक कभी-कभी विवाह कर लेते थे। कभी-कभी टुटपुंजिए मामूली गहने कपड़े देकर उन्हें ठग लेते थे। कभी-कभी उनके प्रेमी उनके बाल पर वशीकरण चूर्ण फेंक कर उन्हें ठग लेते थे। कुछ प्रेमी प्रकट में धन की लालच दिखलाकर पर दिल में दुश्मनी रखकर उन्हें ठग लेते थे। कभी-कभी उनका माल लुट जाता था (स० मा० ११४-२४)।

वेश्याओं की विभूति का प्रधान कारण उनकी माताएं अथवा कुटनियाँ होती थीं। वे मालदार असामियों को फंसाने में उनकी मदद करती थीं और खुख प्रेमियों को निकाल बाहर करने में। उनके डर से विट और दूसरे बिगड़ैल असामी वेश्याओं का कुछ बिगाड़ नहीं सकते थे। व्यवसाय के अनुभव उनके सदा काम आते थे तथा वे अपनी पुत्रियों को वेश्याकर्म को सुचारु रूप से चलाने के लिए शिक्षा देतीं और उन्हें कामशास्त्र में पारंगत कर देती थीं। देशोपदेश के चौथे उपदेश में क्षेमेन्द्र ने उनका सच्चा खाका खींचा है। वे वेश्याओं के धन की जी-जान से रखवाली करती हैं, प्रेमियों का खून चूस लेती हैं और भलेमानसों को कुराह पर ले जाती हैं। वे जान-पहचान और उपकार की परवाह नहीं करतीं। बूढ़ी होने पर वे बड़दंती, बालनुची, नककटी और कंकाल मात्र बच जाती हैं। रईस गाहक को देखते ही वे उसे बेटा पुकार कर तथा उसके दिलदारी की तारीफ करके, उसके गंजे और कानेपन की भी तारीफ करके, उसे लूटती हैं। भृगुतुंग की यात्रा के बहाने वे रिश्तेदारों द्वारा लाया गया माल खाकर मौज उड़ाती हैं। बीमार पड़ने पर रिश्तेदारों द्वारा वापिस लाये जाने पर चंगी हो जाने पर वे उन पर चोरी का झूठा इल्जाम लगाकर गालियां देती हैं। वे प्रेमियों की रति में विघ्न उपस्थित करती हैं। वे छूछे हाथवालों को बाहर निकालने की तदबीरें सोचती हैं। वे सबसे झगड़ा-झंझट करती हैं।

समयमातृका में तो क्षेमेन्द्र ने कुटनी के रूप और उसकी चतुराइयों का बड़ा ही सजीव चित्र खींचा है। वेश्या के यहां कुटनी न रहने पर कामुक अपनी मनमानी करने लगते थे। गरीब पर बलवान प्रेमी उसका घर नहीं छोड़ते थे। इससे धनियों को उसके यहां आने का मौका नहीं मिलता था (स० मा० १।३३-३५)। कंक के कथानुसार जब बाघिन कुटनी नहीं रहती तब गीदड़ कामुक अपनी बहादुरी बघारते हैं। उसके न रहने पर धूर्त उसके घर जम जाते हैं। चीथड़े लपेटे विट गाथा पढ़ते हैं और रुपए मांगते हैं (स० मा० १।४१-४४)। कुटनी उच्छृंखल को नियम सिखाती है और भोगियों की तो वह मंत्रमुद्रा है (स० मा० १।५०)।

समयमातृका के चतुर्थ समय में कुटनी और उसकी शिक्षा पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। वह इतनी दुबली थी कि उसकी शिराएं उभरी हुई दीख पड़ती थीं। सब कुछ लेकर भी वह सदा मुंह लटकाए रहती थी। उसकी दृष्टि सुस्पष्ट, दांत बड़े, आकृति भीषण थी। उसका मुंह उल्लू की तरह, गर्दन कौए की और आँखें बिल्ली जैसी थीं। कलावती के प्रार्थना करने पर कंकाली उसकी माता बनने पर तैयार हो गयी और उसे एक लंबा उपदेश दिया। धन की प्राप्ति, कुल शील रूप अथवा विद्या से नहीं होती, उसके लिए बुद्धि की आवश्यकता है। देव, मनुष्य, नाग सब बुद्धिशून्य हैं। बुद्धि की मदद से बिगड़ैल और उन्मन कामी को भी वश में किया जा सकता है। वेश्याएं केवल असत्य के सहारे ही जीवित रहती हैं। वेश्या की ठगहारी ही उसका गुण माना जाता है। वेश्या का जीवन धन कमाने के लिए ही है क्योंकि धन ही प्रतिपत्ति का कारण है। धन के बिना किसी की पूछ नहीं होती। वेश्याओं का यौवन थोड़े दिनों का उत्सव है, उसके बीतते ही कामी उनके पास नहीं फटकते, इसीलिए वेश्याओं को अपनी जवानी से जितना भी हो सके कमा लेना चाहिए।

पंचम समय में कुटनी कंकाली कामियों को फंसाने की शिक्षा का एक नया तरीका कलावती से कहती है। पहले यत्नपूर्वक कामियों की भाव परीक्षा करनी चाहिए और राग विभाग जानने पर ही प्रेमी को रखना या छोड़ना चाहिए। आठ राग यथा कुसुम, सिंदूर, कुंकुम, लाक्षा, मांजिष्ठ, काषाय, हारिद्र और नील वर्णों पर आश्रित होते हैं। कुसमी रंग रक्षा करने से स्थायी बनता है पर उपेक्षा से नष्ट हो जाता है। स्वभाव से रूक्ष सिंदूर तेल (स्नेह) से ही लगाया जा सकता है। कुंकुम हलका होने पर अच्छा और गाढ़ा होने पर खराब हो जाता है। लाखी रंग गरम ही चढ़ता है ठंडा नहीं। रूखा काषाय तेल (स्नेह) से खराब हो जाता है। हरिद्रा अस्थायी रंग है पर नील पक्का रंग है।

दूसरे वर्ग में भाव परीक्षा की माध्यम आठ धातुएं यथा सुवर्ण, ताम्र, रीति (पीतल),

सीस, लौह, मणि, कांच और शैल हैं। सुवर्ण घिसने, काटने और तपाने पर भी एक-सा बना रहता है। ताम्र मांजने पर ही चमकता है। रीति तेल (स्नेह) से गंदा बन जाता है, सीसा हमेशा गदला बना रहता है, लौह हमेशा तीखा और कड़ा रहता है, मणि हमेशा स्वच्छ रहती है, कांच स्वभाव से ही टूटने वाला और छल-निरीक्षक होता है। शैल (पत्थर) स्वभाव से स्थायी पर हृदयाभाव से नीरस होता है।

आकाश से संबंधित आठ राग हैं यथा—सांध्य, चान्द्र, इन्द्रायुध, वैद्युत, आंगार, केतु, रवि, और राहु। सांध्य चल होता है, चान्द्र प्रशांत शीतल और घटने बढ़ने वाला होता है। इन्द्रधनुष बहुरंगी तथा वक्रमाया और विलास का प्रतीक है। वैद्युत राग तरल और देखते ही लुप्त हो जाने वाला होता है। अंगार स्त्रियों की अवज्ञा से जल उठता है। केतु बंधु-बांधवों से लड़ाई लगाता है। रवि अपनी तीक्ष्णता से तकलीफ देता है। राहु पित्तक्षय करता है।

इंद्रिय संज्ञक आठ राग कहे गये हैं—यथा श्रोत्र, अक्षि, रसना, त्वक्, घ्राण, मानस, बुद्धि और अहंकार। श्रोत्र गुण सुनने का अभ्यासी है, अक्षि रूप ही देखती है। रसना स्वादिष्ट भोजन की इच्छुक होती है। त्वक् केवल आलिंगन का अभिलाषी है। घ्राण पुष्प धूपादि का अनुराग है। मानस स्पृहा का द्योतक है, बुद्धि गुणवान का प्यार चाहती है और अहंकार आत्मश्लाघा।

पशुओं पर आश्रित आठ राग हैं—वृष, अश्व, कृकलास, मेष, श्वान, खर और मार्जार, कुंजर। वृष जवानी में कायबल का दर्शी, अश्व रत्वार्थी पर समय पर कायर, कृकलास (गिरगिट) स्त्री को देखने में चंचल, मेष तुल्य रति में प्रवीण, श्वान रति अंत विमुख, गार्दभ क्रूर संपर्क में तृप्ति पानेवाला, मार्जार अत्यन्त पास रहने वाला तथा कुंजर संयोग-निरपेक्ष होता है।

पक्षियों पर आश्रित आठ राग हैं। शुक का प्रेम जबान पर ही रहता है। हंस गुण-दोष अलग करता है, पारावत सस्नेह रति का द्योतक है। मयूर अपना बदन फ़ुला कर नाचता है और रूप का घमंडी है, चटका (गौरैया) बहुसुरत का अभिलाषी है, कृकवाक अपनी कान्ता के जरा-सा भी कष्ट का साथी है, कोकिल मधुरालापी और बकवादी है, चकोर चुंबन ही चाहता है।

शरीर संबंधी आठ राग हैं। केश केवल सात दिन तक रहने वाले खिजाब की तरह हैं। अस्थि प्रेम अंतरस्थ होता है, नख केवल एक मास रहता है, पाणि प्रबुद्ध होने पर भी दीख नहीं पड़ता, दंत केवल तांबूल की लाली की तरह है तथा पाद केवल प्रणाम का ही इच्छुक है, तिलक नीच के साथ उत्तम स्त्री के समागम का द्योतक है तथा कर्णपूर कान में शिकायत करता है।

छायाग्रह हमेशा साथ लगा रहता है, स्तब्ध अज्ञात चित्त होता है, भूत बेहोशी लाता है। अपस्मार बार-बार क्रूर कोप का द्योतक है, ग्रह रास्ते में पल्ला पकड़ता है, गांधर्व नृत्य गीत का शौकीन होता है, यक्ष बाहर निकालने पर भी नहीं निकलता, क्षोभ प्रलाप-मुखर होता है तथा पिशाच नोच-खसोट करता है। कुसुमराग क्षणिक उदार होता है, कुंभ टूटने पर भी जुड़ने की इच्छा करता है, नारंग भीतर से सरस और बाहर से कटु होता है, दाड़िम हृदय में रूढ़ होता है, मद्य क्षण ही में मतवाला और बाद में वैलक्ष्य का द्योतक है। कुष्ठ वीभत्स और जुगुप्सित है, चिता सारे अंग को जलाता है, भ्रामर कौतुकास्वाद चाहता है, पतंग कामिनी के रूप शिखा पर मंडराता है, वृश्चिक व्यथा-दायी है, ज्वर त्यक्ताहार और कृशता का द्योतक है। भ्रम चित्त के डांवाडोल होने का द्योतक है। स्मरण अन्य स्त्री के सुरत की याद है, रतिग्रह स्वप्न से सुरत का द्योतक है, रुधिर कलह में रक्तपात का द्योतक है।

रागों की उपर्युक्त तालिका में जो रंगाश्रित राग हैं उनकी कल्पना प्राचीन मालूम पड़ती है। मालव नरेश कृत श्रृंगारमंजरी[५०] में कुटनी विषमशीला अपनी पुत्री श्रृंगारमंजरी से कहती है—संसार में अनेक भावों और रुचियों वाले मनुष्य हैं। जब एक गाहक वेश्या के पास जाता है तो उसका मन किसी भाव से रंजित होता है जो हर कामुक में अलग-अलग होता है। प्रत्येक कामी का व्यवहार भी एक-सा नहीं होता। वेश्या के लिए यह आवश्यक है कि वह अपने प्रेमी के मानसिक वर्ण का पता लगावे। विषमशीला इन वर्णों को चार विभागों में, यथा नीली मंजिष्ठा, कुसुम तथा हरिद्रा राग में बांटती है।

भोज सरस्वतीकंठाभरण (५।१२४६) में केवल तीन रागों यथा नीली, कुसुम, और मांजिष्ठ का उल्लेख करते हैं पर श्रृंगारप्रकाश में भोज ने वर्णों की खुल कर समीक्षा की है। सात्त्विक भावों के वर्ण में हरिद्रा, रोचन, कांपिल्य और रीति आ जाते हैं। राजस के अंतर्गत कुसुम, लाक्षा, अक्षीब और मंजिष्ठा आते हैं और तामस में कर्दम, काषाय, सकल और नीली। इस तरह भोज के अनुसार भावपरक वर्ण जो नायक के चित्त को रंजित करते हैं, बारह हैं। लगता है रागों के वर्गीकरण का आरंभ वात्स्यायन (६।४।१७) के अस्थायी हरिद्रा राग के उल्लेख से हुआ होगा।

क्षेमेन्द्र केवल भावपरक वर्णों के उल्लेख से ही संतुष्ट नहीं हुए। कामुक का मन परखने के लिए उन्होंने भावपरक धातुएं, आकाशी प्रक्रियाएं, पशु-पक्षी, इन्द्रियां, देह, मानसिक और शारीरिक व्याधियां, फल-फूल इत्यादि बहुत-से उपादानों का आश्रय

---

५०. भोज : श्रृंगारमंजरी, पुष्पलता मुंशी द्वारा संपादित, बंबई १९५९।

लिया। लगता है कामुकों के भाव विश्लेषण की इस प्रक्रिया की जड़ में मनोविज्ञान था। उनके अवांतर भावों को वैज्ञानिक परिभाषा में तो लिखना मुश्किल था पर लेखकों के सामने जीवन की अनेक मामूली वस्तुएं और शारीरिक क्रियाएं थीं और उन्हीं को उपमा बना कर क्षेमेन्द्र ने मानसिक क्रियाओं को मूर्त रूप देने का प्रयत्न किया है।

प्राचीन भारतीय साहित्य से वेश्याओं और विटों का चोलीदामन का साथ है। पास में पैसे न होते हुए भी वेश में, विटों की उनके कलाओं और कामशास्त्र संबंधी ज्ञान के लिए इज्जत होती थी। पर मध्यकाल में तो वे मुफ्त का माल खाने वाले गुंडे बन गये थे जिनका काम अनेक बेइज्जतियां होने पर भी वेश्याओं के दरवाजों पर चक्कर लगाना, वेश में दंगा-फसाद करना, कामुकों से रुपये वसूल करना, झूठी शान-शौकत दिखलाना मात्र रह गया था। पहले वे अपना सब मालमता खो बैठते थे बाद में वे दूसरों का माल उड़ाते थे। इसके बाद उनका सारा समय वेश्याओं और वेश की स्तुति में बीतता था (क० वि० ९।३९)। बिना कुटनी के वेश्या के घर घुस कर चिथड़े लपेटे विट गाथाएं पढ़ते थे और रुपये मांगते थे (स० मा० १।४५)। वे शराब के लोभी वेश्याओं के घर के सामने की गलियों से धन के लिए बराबर चक्कर लगाया करते थे (स० मा० ३।१)। कुटनियों द्वारा वेश्या संसर्ग से रोके जाने पर वे उन्हें गाली देते थे (स० मा० ३।३५)। शराब के नशे में चूर विट बड़ी दून की लेते थे (स० मा० ७।४४-४६)। कामुक का धन उड़ाने में तल्लीन विटों को किसी तरकीब से दूर भगाने में कुटनियां सिद्धहस्त होती थीं। जब कंकाली ने देखा कि कलावती के प्रेमी पंक को विट लूट रहे थे तब उसने उन पर एक झूठा दोष लगाया कि उन्होंने एक रईस के बेटे को नहीं, एक चोर को उसके घर में घुसा दिया था। उसके हो-हल्ला मचाने पर विट भगे और एक जगह इकट्ठे होकर अपने-अपने व्यवसाय की परिभाषा में बात-चीत करने लगे। निर्गुट ने कहा—पासे के हेर-फेर की तरह उसने हमें लूट लिया। लेखक बोला—माल तो उसने छिपा दिया पर लेखे-जोखे में हमें पकड़ रही है। नाट्याचार्य बोले—अंगहार की युक्ति से पूर्व रंग साध कर उसने हमें खूब नचाया। तुलाधार ने कहा—उसने झूठी तराजू पर हमें खूब तौला। ज्योतिषी जी बोले—बनिए का सूर्य मेष से दूर होने से ही कंकाली ने उसे ग्रस लिया। वैद्य बोला—मदिरा ज्वर में उसने हमें लंघन का क्या खूब पथ्य दिया (स० मा० ८।४२-४६)।

देशोपदेश में विटों की और खुल कर खबर ली गयी है। वे गरीब, गुणहीन और दोषी होने पर भी कला पारखी होते हैं। उन्हें केवल अपने भोग का ही अभिमान होता है। वे परस्त्रीगामी और गुस्सेवर और ऊधमी होते हैं। वेश्याएं उन पर थूकती

हैं। वे कुटनी की नाक काटते हैं। आने-जाने और कुचक्र चलाने में उन्हे थकावट नहीं होती। वेश्याओं द्वारा हँसी उड़ाए जाने पर भी वे उनके घर घुसते हैं। फांकेकशी करते हुए भी वे देवमंदिर में भोग लगाने का उपक्रम करते हैं। वे पान खाकर गालियां बकते हैं, घुंघराले बालों में तेल लगाते हैं तथा केवल मांडे खाते हुए भी ओठों पर खैर की घड़ी जमाते हैं। लोग उनके गंजे सिर पर चपत मारते हैं। वे रहते तो हैं किसी खस की कुटिया में पर नकल करते हैं दाक्षिणात्यों की। बूढ़े विट रसायनशास्त्र, बिलज्ञान, और अंट-संट योगशास्त्र का अभ्यास करते हैं तथा अतर बनाकर लोगों को ठगते हैं। गरीब होने पर वे गंदी झोली लिये, भस्म रमाये, उलझे बाल बनाये, ललाट पर काजल पोते घूमा करते हैं।

मध्यकालीन विट केवल वेश्याओं तक ही अपने को सीमित नहीं रखते थे। वे परस्त्रियों की टोह में भी लगे रहते थे। नर्ममाला में इसका उदाहरण दिया गया है। कायस्थ की स्त्री को अयत्नसाध्या समझ कर उसके घर के चारों ओर चक्कर मारने लगे। वे नकाशीदार वस्त्र, सुगंधि और तेल धूपादि में काफी खरचते थे। उनकी आंखें नियोगी के धन और उसकी स्त्री पर लगी थी और इसी के लिए वे हंसते थे, आंखें चलाते थे। वे एक शून्य देवमंदिर में इकट्ठे होकर उसको पाने का उपाय सोचने लगे। एक ने कहा—उसका पति बूढ़ा गंजा और तुंदैल है और उसकी स्त्री जवान है, इसलिए शीघ्र ही वश में आ जायगी। दूसरे ने कहा—हमें उससे परिचय बढ़ाना चाहिए। उसे अपना त्याग और ऐश्वर्य दिखाना चाहिए। उससे बातचीत करना चाहिए तथा उसे भेद देना चाहिए तथा माला देकर उससे बातचीत करनी चाहिए तथा उसे बिगाड़ना चाहिए। पर तीसरे ने कहा——यह सब तो ठीक है पर उसका पति भारी बदमाश है। बड़े-बड़ों को उसने जेल में ठूंसा, फिर हमारी क्या बिसात। पर मुझे राजा के साले का भरोसा है। बाद में उन विटों ने एक श्रमण दूतिका की मदद से नियोगी की पत्नी से सांठ-गांठ बांधी।

मध्यकालीन 'वेश' में आने जाने वाला निर्गुट भी होता था जो अपनी बेकारी के लिए प्रसिद्ध था। शायद हिन्दी शब्द निगोड़ा उसी से निकला है। उसका पिसी हल्दी से रंगी हुई पगड़ी (शीर्षशाटांक) और फटे मोजे पहनने का उल्लेख है। वह बराबर कर्ज लेता रहता था। पर देश निकाले के डर से वर्ष में एक बार वह राजकुल में जाता था। गुरु के दर्शनार्थ वह चावल की झोली लेकर पहुंचता था (दे० ८।३६-३८)। वेश्या कलावती के यहां इकट्ठे विटों में उसका नाम भी आता है (स० मा० ७।२१)।

प्राचीन साहित्य और अभिलेखों में देवदासी प्रथा का अनेक बार उल्लेख आया है। देवदासियां शैव और वैष्णव मंदिरों में देवताओं के सामने नाचने गाने

का काम करती थीं। जयाख्य संहिता (२२।१९-२०) के अनुसार, विष्णु भक्त भगवत् पूजा के लिए मठ और मंदिर बनवाकर अकंटक वृत्ति का प्रबंध कर देते थे। वे मंदिरों के साथ वेदपाठी, कर्मकर और देवसासियाँ भी लगा देते थे। कल्हण कृत राजतरंगिणी से भी पता चलता है कि देवदासी प्रथा काफी पुरानी थी। कहा गया है कि जलौक ने अपने महल की नृत्यगान में कुशल सौ गणिकाओं को ज्येष्ठरुद्र के मंदिर को भेंट दे दिया (रा० त० १।१५१)। कल्हण ने स्वयं कश्मीर की घाटी के मंदिरों में वृद्ध देवदासियों को देखा था (रा० त० ८।७०७)।

कल्हण के अनुसार दो देवदासियां नियमपूर्वक एक मंदिर में नाचा और गाया करती थीं, गोकि मंदिर स्वयं पृथ्वी में गड़ गया था (रा० त० ४।२६९)। राजतरंगिणी में कहा गया है कि देवदासियों पर राजा का अधिकार होता था। दुर्लभक प्रतापादित्य द्वितीय, नरेन्द्रप्रभा नामक एक विवाहिता स्त्री से प्रेम करता था। उसके पति ने उसे रानी बनाने का आग्रह किया पर राजा के ऐसा न मानने पर उसने सलाह दी कि वह उसे एक देवमंदिर में देवदासी बना दे जिससे वह आसानी से उसकी भी हो सके (रा० त० ४।३६)। सहजा नामक एक देवदासी को उत्कर्ष द्वारा अवरुद्धिका बनाये जाने का भी उल्लेख है (रा० त० ७।८५८)। क्षेमेन्द्र ने भी देवदासी प्रथा का दो वार उल्लेख किया है। समयमातृका में एक वेश्या कहती है—कायस्थ की पारी पूरी न करने पर देवगृह की वृत्ति कैसे मिलेगी (स० मा० ३।३३)। दूसरी जगह कुटनी कंकाली बनिए से कहती है—मैं तेरा कर्ज देवालय से मिले धान्य भुक्ति से पटा दूंगी (स० मा० ८।८८)। इन दोनों उल्लेखों से पता चलता है कि कुछ देवदासियां ऐसी थीं जो बाहर तो अपना व्यवसाय चलाती थीं, पर मंदिरों में नाचने गाने के लिए उनकी वृत्ति बंधी रहती थी।

मध्यकालीन अभिलेखों में भी देवदासी प्रथा का अनेक बार उल्लेख आया है। बाघेली (खानदेश) के गोविंदराज के १०६९-७० ई० के एक लेख से पता चलता है कि उसने मंदिर में नाचने गाने के लिए विलासिनियों का प्रबंध किया था (पाटक गीतनृत्यार्थ विलासिणि समन्वित)।[५१] चाहमान जोजलदेव के १०९०-९१ ई० के लेख में देवदासियों को यह हुक्म दिया गया था कि वे सुंदर वेष धारण करके उत्सवों में भाग लें। जो उन्हें ऐसा करने से रोके उसे पाप का भागी माना गया है।[५२]

---

५१. एपि० इंडि० २, पृ० २२७।

५२. वही ११, पृ० २६-२७।

दक्षिण भारत में चोल राजराज के अभिलेखों में देवदासियों का उल्लेख है। एक अभिलेख में जिसका समय १००४ ई० है[५३] उल्लेख है कि तंजोर के प्रधान मंदिर में चार सौ तलि-चेरि-पेण्डगल नियुक्त थीं। वे मंदिर के चारों ओर गलियों में रहती थीं तथा उन्हें धान का ४०० कलं वृत्ति के रूप में मिलता था।

५३. साउथ इंडियन इंस्क्रिपशन्स, भाग २, पार्ट ३, पृ० २५९-३०३।

क्षेमेन्द्र रचित कलाविलास (अनुवाद)

प्रथम सर्ग

१-८ : लक्ष्मी के ललित आलिंगन से मंगलों का स्थान बना हुआ, रत्नों से झलझलाता विष्णु के वक्षस्थल की तरह, अनेक रत्नों से जगमगाता विशाल नगर (पाटलिपुत्र) था। जहां मणिभूमियों में प्रतिबिंबित सुसज्जित मोती की मालाओं की परछाहीं से मानों शेषनाग अपने को अनेक हिस्सों में बांट कर घरों को अपने ऊपर धारण किए हुए है। अभिसारिकाओं का विघ्नस्वरूप घरों में जड़े स्फटिकों की प्रभा का समूह रात्रि के अंधेरे रूपी वस्त्रों को लूटने के लिए प्रकट लुटेरे की तरह वहां विराजमान है। जहां शिव के तीसरे नेत्र की आग में पतंग की तरह जलकर कामदेव चन्द्रमुखियों के मुखामृत से पुनः जीता है। जहां रति श्रम से पैदा हुए ललनाओं के पसीने की बूंदों को उड़ाते हुए तथा खुले, ढीले बालों के फूलों से सुवासित हवा के झोंके चलते हैं। जहां नव कमलों की कोपल खाने से कलरव करते हुए घमंडी हंस कमलवन में लक्ष्मी के नूपुरों की झंकार पैदा करते हैं। जहां नाचते हुए मोरों वाली पन्ने के रंग के धारागृहों की पांत मानों इन्द्रधनुष और बादलों वाली बरसात लगती है। जहां चांदनी से ढंके स्फटिक के महलों पर मृगनयनियाँ ऐसे शोभा पाती हैं जैसे अमृत के समुद्र की तरंगों के ऊपर तैरती हुई अप्सराएं।

९-१० : वहाँ बड़े मायावी, अनेक धूर्तों को हटाकर, सब कलाओं की जानकारी के धुरे के समान मूलदेव रहते थे। चारों ओर से आए हुए धूर्तों से सेवित उन्होंने अपने गुणों से चक्रवर्ती की तरह बड़ी संपत्ति कमाई।

११-१२ : एक दिन अपने मित्रों के साथ भोजन करके जब वह बैठक (आस्थानी) में बैठा था तब सार्थवाह हिरण्यगुप्त ने अपने लड़के चन्द्रगुप्त के साथ आकर तथा उसे सोने, जवाहरात की भेंट देकर प्रणाम किया। आसन का सत्कार पाकर जरा सुस्ता कर उसने कहा—

१३-२० : "आपकी प्रतिभा से भलीभांति परिचित मेरी वाणी नगर में देहाती औरत की तरह, चतुराई नहीं दिखा सकती। आपकी विमल बुद्धि की प्रभा वृहस्पति की बुद्धि को भी दबा देती है और सूर्य की किरणें जिस तरह दिशाओं (आशा) को प्रकाशित

करती हैं उसी तरह आपकी बुद्धि का विकास हमारी आशा को उत्तेजन देता है। जन्मभर अनेक प्रकार से रत्न, मोती और सोने से अपना खजाना भरनेवाले मुझे ढलती-उमर में यह एक लड़का पैदा हुआ। लड़कपन मूर्खता का घर है, जवानी कामोन्माद पैदा करती है, धनसमूह नलिनी दल पर हवा से हिलती हुई पानी की बूंदों की तरह है। मृगनयनी स्त्रियाँ लुटेरू हैं, धूर्त भोगरूपी कमल पर भौंरे की तरह मंडराते हैं। दोषों की उपर्युक्त परंपरा में मेरा लड़का फंस गया है। धूर्त के हाथ के गेंद बने हुए, वेश्याओं के चरणनूपुर के मणि बने हुए, पैसे वाले के घर पैदा हुए भोले युवकों का छुटकारा नहीं। जिस तरह देश और काल से अनजान चिड़ियों के बच्चे (गेदे), लंगड़ा कर चलने पर भी, जीभ की लालच से आगे बढ़ते हैं और धूर्त बिल्ले उन्हें चट कर जाते हैं, उसी तरह देश काल से अनजान होने से बकवादी मूर्ख बिना ताकत के बाहर आकर कूदफांद करे तो धूर्त उसे लूट खाते हैं। पंडित प्रवर, यह मेरा पुत्र आपके आश्रित है, आप इसे अपने लड़के से बढ़कर मानिए। उसे ऐसी सलाह दीजिए कि जिससे वह खराब होने से बच जाय।"

२१-२२ : नम्रता से सिर झुकाए उसकी बात ठीक मान कर मूलदेव ने प्रेमपूर्वक अपनी जबान खोलकर कहा—"तेरा यह लड़का मेरे घर में अपने घर की तरह रह कर धीरे-धीरे मेरे उपदेश सुनकर सब कलाओं के भेद जान जायगा।"

२३ : उसकी आज्ञा से अपने लड़के को उसके घर रख कर वह बुद्धिमान सार्थवाह मूलदेव को प्रणाम करके खुशी-खुशी अपने घर गया।

२४-३५ : किरणों के कमजोर पड़ जाने पर मटमैला सूर्य आकाश छोड़कर, धूर्तों से हारे नंगे जुआरी की तरह गायब हो गया। सूर्यास्त होने के बाद सिंदूर जैसी लाल संध्या अंधकार रूपी हाथी से लगी हुई आगे बढ़ी। प्रतिदिन छोड़े जाने पर भी दिन की जोत ने सूरज का साथ दिया पर आरक्त (लाल और प्रेमिका) संध्या ने नहीं; कौन स्त्रियों के दिल की बात जान सकता है? आकाश रूपी कमलवन से संध्या की ललाई धीमे-धीमे चले जाने पर (संध्या की लालिमा की आभा मात्र बच जाने पर), अपनी स्थिति से विकल भौंरे की तरह, अंधेरा मंडराने लगा। सूर्य के विरह रूपी मोह के अंधेरे में पृथ्वी मानों डूब गई। रोज आने-जानेवाले तीखे होने पर भी प्रिय होते हैं। सफेद तारों की मोती की माला से अपने को सजाकर, परिचित अंधकार रूपी मोरपिच्छ से सजी रात, सफेद बड़े मोतियों की माला पहने तथा मोरपंख के परिचित गहनों से सजी, शबर रमणी की तरह शोभित हुई। बटोहियों की पत्नियों को ज़लाने वाली, कमल को जगाने वाली दूती और चकइयों की दुखदायी चांदनी धीरे-धीरे उगने लगी। काम का श्वेतछत्र, दिग्वधू का श्वेतस्फटिक की तरह चमचमाता दर्पण, रात्रि-

रूपी स्त्री के माथे का श्वेततिलक चन्द्र सुशोभित हुआ। अपने हाथों में मृणाल रूपी किरणों के कड़े पहने शुभ्रकांति वाला चन्द्र, मृणालों से खेलता हुआ आकाशगंगा के तट का मानो राजहंस था। चन्द्र से रात सुशोभित हुई; उससे कामदेव, कामदेव से वसंतोत्सव और उससे मदमाती स्त्रियों की चुहलबाजी। पैसे के साथी धूर्तरूपी भौंरे कुंभलाई पद्मिनी को छोड़कर फूली कुमुदिनियों में प्रसन्नता से घुस रहे हैं। चांदनी की भस्म रमाकर, सुंदर चन्द्रबिंब रूपी नरकपाल (खोपड़ी) लेकर तथा तारा रूपी अस्थि हार पहन कर रात्रि कापालिकी की तरह शोभा पा रही है।

३६-३९ : रात में पूर्णचन्द्र की गहरी चांदनी खिलने पर अपने मणिभवन (शीश महल) के बगीचे में प्रश्नकर्ताओं के समाधान के लिए स्फटिक के आसन पर अपने दिली दोस्त शशि के साथ मूलदेव बैठे थे और कंदलि आदि मुख्य शिष्यों से उनकी पादपीठ घिरी हुई थी। मूलदेव ने आगे बैठे सार्थवाह के बेटे को गौर से देर तक देखकर अपने दांतों की चमक से मानों चांदनी को शरमाते हुए कहा—

४०-४२ : इस संसाररूपी भयानक निरालंब बियाबान जंगल में तिनकों और पत्तों के वलयों से बने जाल से ढके कुएं में बेवकूफ हिरन गिर पड़ते हैं। स्वभाव गंभीर वह दंभ कुटिल सर्पों से घिरे धन के कुंडे की तरह इस संसार में स्थित है। धन के इच्छुकों के लिए माया के रहस्य का मंत्र तथा चिंतामणि प्रभावकारी दंभ धूर्तों की दौलत भी बस में कर लेता है।

४३ : पानी के अंदर चलते हुए मच्छ की चाल की तरह दंभ की गति कौन जान सकता है; न उसके हाथ हैं न पैर, न सिर, वह दिखलाई भी नहीं देता।

४४ : मंत्र से सर्प, फंदे (कूटयंत्र) से बेवकूफ हिरन, जमीन पर फैलाए जाल से पक्षी और दंभ से आदमी पकड़े जाते हैं।

४५ : मनुष्य के हृदय को ठगनेवाला, माया का खंभा, संसार जीतने का आरंभ, माया का प्रारंभ अदृष्ट दंभ की जय हो।

४६ : हमेशा घूमने वाली, दुःसह माया के सहस्र टेढ़े आरों वाली, बड़े पहिए के चक्कर की नाभि दंभ है।

४७ : आंखें मूंदना उसकी जड़ है, देर तक नहाने से भींगे बालों के पानी से वह सिंचता है, पवित्रता उसका फूल है—दंभ रूपी वृक्ष मुखरूपी सैकड़ों डालों से फलता है।

४८ : व्रत और नियमों से बक-दंभ होता है, गुप्त नियम पालन करने से कूर्म-दंभ होता है, तथा फूंक-फूंक कर पैर रखने और आंख बंद करने से मार्जार (बिल्ली) दंभ होता है।

४९ : बक दंभ दंभों का सरदार है, दंभों का राजा कूर्म दंभ है, पर मार्जार दंभ दंभों का चक्रवर्ती है।

५०-५५ : हलकी दाढ़ी, कटे हुए नाखून और बाल वाला, बाल बढ़ाए हुए, जटाधारी अथवा लंबी दाढ़ी वाला, बहुत मिट्टी लगाने वाला, कम बोलनेवाला, जीव मरने के डर से समझ कर जूते रखने वाला, मोटी गांठ वाली पवित्री पहनने वाला, पीठ पीछे सिकरी डालनेवाला, बगल में वस्त्र का आंचल रख कर हाथ फंसने से मानों हाथ में बरतन लेकर चलने वाला, अंगुलियां नचाकर बहस-मुबाहसे में पंडिताई दिखाने वाला, ढोंग से जप करने से चलते ओंठों वाला, नगर की गलियों में भीड़ पर ध्यान रखनेवाला, नाटकीय भाव से चिल्लू रोप कर आचमनों से तथा तीर्थ में देर तक नहाने से सब लोगों को रोक रखने वाला, बार-बार कान की लौर छूनेवाला, सी-सी करके तथा दांतों की कटकटाहट से जाड़े में नहाने की कठिनाई व्यक्त करनेवाला, लंबा तिलक लगाकर विधिपूर्वक देव-पूजन दिखलाने वाला, सिर पर फूल खोंसे हुए, कौए की तरह इधर-उधर आंखें चलाने वाला, ऐसे रूप का जो पुरुष है वही दंभी है।

५६ : निर्गुणों को दंडवत करनेवाला, गुणियों से ढिठाई दिखलानेवाला, रिश्ते-दारों से द्वेष करनेवाला, परायों से दया के साथ भाईचारा रखनेवाला, कीर्ति का इच्छुक दंभी धूर्त होता है।

५७ : काम के समय सिर झुकाने और सैकड़ों खुशामदें करनेवाला पर काम खतम हो जाने पर भौंहें तानकर चुप रह जाने वाला निर्दयी दंभी होता है।

५८ : प्राचीन काल से देवताओं की समृद्धि वश में करनेवाला जो जंभ नामक दैत्य था वही आज दंभ होकर इस दुनिया में प्राणियों के शरीर में रहता है।

५९ : शुचि दंभ (पवित्रता का दंभ), शम दंभ, स्नातक होने का दंभ, और समाधि दंभ—ये निस्पृह दंभ की तौल में एक सौवां हिस्सा भी नहीं ठहरते।

६० : छुआछूत का झगड़ालू, मिट्टी खराब करने वाला, अपने बंधुओं को पकड़ने-वाला, ऐसा मनुष्य, पवित्रता के दंभ से विश्वामित्रत्व पा जाता है।

६१ : तरह-तरह के माल लूटकर, जमा की हुई रकम रूपी पानी का भारी पिपासु अहिंसा दंभ, तरह-तरह के जीवों को खींचने वाले, उछलते हुए पानी के लालची बड़वानल की तरह, सबको खा जाने वाला है।

६२ : मुंडक, जटाधारी, नंगा, छत्रधारी, दंडधारी, गेरुआ कपड़े पहननेवाला और शरीर में भस्म रमाने वाला भोगी दंभ चारों ओर घूमता फिरता है।

६३ : गंजी खोपड़ी वाला, मोटा-ताजा, दुबला-पतला अथवा तापस का रूप बनाए हुए सिर पर दुपट्टा (शाटक) लपेटे हुए अथवा ऊंचा साफा बांधे (शिखरवेष्टन) हुए भी दंभी होता है।

६४ : दंभ का बूढ़ा बाप मोह, माया उसकी मां, कुटीचरपन उसका छोटा भाई, कुटिलाकृति उसकी पत्नी तथा हुंकार उसका बेटा है।

६५-७२ : प्राचीन काल से ब्रह्मा भुवनों और जीवों को बनाकर बेकाम होने पर देर तक सोचते हुए बैठे। अपनी दिव्य दृष्टि से सचाई की वजह से धन इत्यादि मौज-मजों से विलग बेसहारे मनुष्यों को देखकर उन्होंने अपनी आंखें बंद करके एक क्षण माया-मय विचार में स्थित होकर मनुष्यों के धनप्राप्ति के आधार स्वरूप दंभ की रचना की। कुशपूली, पुस्तक, माला और खाली कमंडलु लिए हुए अपने दिल की तरह टेढ़ा सींग, खुरपी (खनित्र) और काला मृगछाला ढोता हुआ, कुश की मोटी पवित्री से कान सजाये, हाथ में पवित्रक लिये, सफाचट सिर को कुश से घेरे, जटा की जड़ में सफेद फूल खोंसे, मानो काठ मारी हुई सीधी गर्दन किये, जप में गर्दन हिलाते, समाधि में आंखें बंद किये, हाथ में रुद्राक्ष की माला लिये, मिट्टी से भरा पात्र लिये, गुस्से से भरी कनखियों, टेढ़ी भौहों, हुंकार, मुंह बनाने तथा गाली-गुप्तों से, सब लोगों के दिल की बात कहने के लिए उत्सुक होकर भी चुप, ब्रह्मलोक में भी छुआछूत के फेर में पड़ा, दूसरों का स्पर्श बचाने वाला दंभ ब्रह्मा के सामने उठ खड़े होकर आसन की खोज करने लगा।

७३-७७ : उसकी भारी भरकम वेषभूषा से सहसा वस में होकर बेचारे सप्तर्षि भी हाथ जोड़कर और सिर नवाकर उसके सामने खड़े हो गये। खिलवाड़ में ही सारे जीवों को बनाने वाले ब्रह्मा भी उसे देखकर गौरव, विस्मय और हर्ष से चुपचाप खड़े हो गये। उसके अत्यंत कठोर नियमों से खिंच कर अगस्त्य भी विस्मित हो गए और अपने थोड़े तप की लज्जा से वसिष्ठ की भी पीठ झुक गई। अपने तप को बड़ा सहल जानकर उसकी अवहेलना करते हुए कौत्स बिलबिला उठे तथा नारद ने अपने आडंबर रहित तप का निरादर किया। मुंह लटकाए जमदग्नि ने अपना सिर घुटनों पर रख लिया, विश्वामित्र भयभीत हो उठे, गालव ने अपनी गर्दन घुमा ली, भृगु का मुंह लटक गया।

७८ : बहुत देर तक खड़े रहने से क्रोधित कमलासन पर आंख गड़ाए, मानो शूली पर चढ़े की तरह, उसने अपना स्थिर और गर्वभरा मोटा शरीर आगे कर दिया।

७९-८० : उसे आसन का इच्छुक जानकर ब्रह्मा ने अपने दांतों की स्वच्छ प्रभा से मानो अपने वाहन श्वेत हंस पर हंसते हुए प्रेम से कहा––"पुत्र, मेरी गोद में बैठ, अपने विचित्र तथा गुणों के गौरव से भरे नियम से तू उस पर बैठने योग्य है।"

८१-८२ : ब्रह्मा के ऐसा कहने पर दंभ उनकी गोद अंजलि भर पानी से पवित्र कर संकोच दिखलाता हुआ, पर बेधड़क, अदा से उसमें बैठ गया। दंभ ने कहा—"आप जोर से मत बोलिए, अगर बोलना ही है तो अपने करकमल से अपना मुंह ढंक कर ऐसा कीजिए जिससे आपकी सांस मुझे छू न जाय।"

८३-८४ : उसकी इस अतुलनीय छुआछूत को देखकर ब्रह्मा ने हँस कर और हाथ हिलाकर कहा—"तू निश्चय ही दंभ है। उठ, सारे खारे समुद्र रूपी खाइयों की मेखला पहने हुए पूरी पृथ्वी को पार करके जिन सुखों का देवताओं को ज्ञान भी नहीं है उन्हें भोग।"

८५ : इस तरह आदरपूर्वक ब्रह्मा के विदा देने पर वह संसारसागर में तैरते हुए मनुष्यों के गले में पत्थर बांधता हुआ (जिससे वे डूब जायं), इस पृथ्वी पर उतरा।

८६ : दंभ ने मृत्यु लोक में आकर वनों, नगरों और चारों ओर की सैर करके गौड़ देश में पहुंच कर अपनी जयपताका फहरा दी।

८७ : वाह्लीकों की वाणी में, पुरबियों और दक्षिणियों के व्रत-नियम में, कीरों (कांगड़ा के निवासी) के अधिकार में तथा गौड़ों की सब बातों में दंभ बैठ गया।

८८ : जो दान तथा श्राद्ध में मिले सीधे के चून से और भस्म से सबेरे जहां कहीं तिलक देते हैं वे दंभ के सहायक हैं।

८९ : जल्दी से इस संसार में प्राणियों को हजारों हिस्सों में बांट कर मूर्तरूप दंभ वकीलों (अधिकरण भट्ट) के मुखों में बसता है।

९० : गुरु, बालक, तपस्वी, कुटिल नियोगी तथा दीक्षित, इन सब के दिलों में दंभ सबसे पहले घुसा।

९१ : इसके बाद वह ज्योतिषी (गणक), वैद्य, सेवक, बनिया, सोनार (हेमकार), नट, भट, गायक, वाचक और बाजीगर (चक्रधर) के दिलों में बैठ गया।

९२ : तरह-तरह की तरकीबों से जरा-जरा सारे प्राणियों के दिलों में घुस कर बाद में दंभ पक्षियों और वृक्षों में घुसा।

९३ : तीर्थों में मछलियों के लिए बगलाभगत निःस्पंद होकर एक पैर से देर तक तप करता है और उसी से दंभ पक्षियों में घुस गया।

९४ : भारी जटा और वल्कलधारी, गर्मी, सर्दी और हवा से हमेशा कष्ट पाकर हमेशा जल के इच्छुक वृक्ष भी दंभ के अवतरण मात्र हैं।

९५ : सब में घुसा हुआ, सदा सबको हरने वाला दंभ विचारणीय है, उसके जानने पर मायावियों की माया विफल हो जाती है।

९६ : दंभ ठगों के गुट (वंचकचक्र) का कल्पवृक्ष है; प्राचीन काल में वामन-दंभ से विष्णु ने तीनों लोक नाप लिया।

श्री व्यासदास महाकवि क्षेमेन्द्र विरचित कलाविलास का दंभाख्यान नामक प्रथम सर्ग समाप्त

द्वितीय सर्ग

१ : लोभ सर्वदा चिन्तनीय है। लोभियों से सबको भय मालूम पड़ता है। लोभी को क्या करना चाहिए, क्या न करना चाहिए, इसका कोई विचार नहीं होता।

२ : संचय रूपी दुर्ग का पिशाच, सब कुछ लूटने वाला लोभ माया, फेरबदल, छिपाने, मन उखड़ने तथा कूट कपटों का मूल कारण है।

३ : शास्त्रज्ञाता तपस्वियों और सात्विकों से जीता जाकर लोभ बनियों (किराट) के कुटिल हृदयों के गढ़ों में घुस गया।

४ : खरीद बेच, झूठी तराजू पर कम तौल, रेहन बट्टे का काम और ब्याज, इन सब से दिन के चोर बनिए खुशी से लोगों को लूटते हैं।

५ : सारे दिन तरह-तरह की ठगहारियों से लोगों का माल लूटकर भी बनिया (किराट) घर खर्च के लिए मुश्किल से तीन कौड़ी देता है।

६ : कहानियों का शौकीन वह पुराण कथा सुनने के लिए हमेशा जाता है, पर वह दान धर्म से काले साँप से डसे हुए की तरह भागता है।

७ : द्वादशी, पिता के श्राद्ध में दिन, संक्रान्ति तथा सूर्य और चन्द्रग्रहण के दिन वह डटकर नहाता है पर देता एक कौड़ी भी नहीं।

८ : इधर-उधर ताकता हुआ वह कुटीचर भिखमंगे को देखते ही, चोर की तरह, मुँह छिपाकर गलियों के रास्ते निकल भागता है।

९-१० : माल बेचते समय दुष्ट बनिया जवाब नहीं देता, चुप रहता है, पर रकम जमा करने वाले को देखते ही वह बातचीत करने लगता है। बनिया उसे देखकर उठता है, नमस्कार करता है, कुशल मंगल पूछता है, बैठने की जगह देता है और धर्म की बात चलाता है।

११ : उसके पास आकर किसी ने कहा—"भाई, आपके पास धन जमा करके कल परदेश जाने की इच्छा थी, पर कल सवेरे भद्रा है, अब मैं क्या करूँ?"

१२-१५ : यह सुन कर आँखें फाड़कर उसने झूठे खेद का भाव दिखलाया और भय से आँखें मोड़कर अगल-बगल झाँकने लगा। "यह जगह आपके ताबे में है पर

बहुत दिन तक धरोहर रखना मुश्किल है। देश-काल खराब है, फिर भी भलेमानस-मैं आपका सेवक हूँ। यह भद्रा खराब नहीं है, माल जमा करने के लिए शुभ है। आप तो जानते ही हैं कि कामकाजियों को इसका पूरा अनुभव है। भद्रा के दिन एक समय किसी मित्र ने कुछ रकम जमा की थी। बहुत जल्द ही आकर वह उसे सही सलामत ले गया।"

१६-१७ : इस तरह उस मूर्ख के साथ अंडबंड बातें करके उसको पाने से मन-ही-मन नाचता हुआ उसने सोना पकड़ रखा। उसके टुकड़ों के बेच खरीद के लम्बे मुनाफे से भारी हल्के (भांड, प्रतिभांड) माल इकट्ठा करके वह मानो कुबेर के धन पर हँसने लगा।

१८ : कंजूस बनियों के लबालब भरे, पर न भोगे जाने वाले धन के घड़े बाल विधवाओं के भरे हुए, पर असंभोगनीय स्तनों की तरह यों ही नष्ट हो जाते हैं।

१९-२० : बिना दान और भोग के हमेशा सोने की रक्षा में तत्पर ये बनिए संसार रूपी टूटे-फूटे घर के मोटे-ताजे चूहों की तरह हैं। उन चूहों के उपभोग में बाधक, कुटिल, काँटेदार, अपना विकराल फन फैलाए राजा नाम का खजाने का साँप है।

२१ : वह रकम जमा करने वाला पुरुष चारों ओर घूम कर, दैवयोग से धन खोकर बेसहारे, बहुत दिनों बाद, अपने देश लौटा।

२२-२४ : शंका करके उसने किसी से पूछा—"वह धनी बनिया (किराट) कहाँ गया?" इस पर उसने जवाब दिया—"मित्र उसका मालमता कुछ और ही है। तरह-तरह की नई मलमलें (अंशुक), कस्तूरी, चंदन, कपूर, मिर्च और सुपारी के व्यापार से वह खड़िया हाथ में लेकर एक क्षण में करोड़ों का हिसाब लगा लेता है। वह महाजन जिसका पुरपति भी पिछलग्गू बना है, मेरु की तरह विशाल भित्तिचित्रों से सजे महल में रहता है।"

२५ : यह सुनकर बड़े आश्चर्य से अपना सिर हिलाकर, फटे पुराने कपड़े पहने वह उसके घर के दरवाजे पर देर तक हक्का-बक्का सा होकर खड़ा रहा।

२६ : ऊँचे महल के मुंडेरे (वलभी) की जाली से उस बनिए ने उसे पहचान कर, मानो बज्राहत होकर, बेहोश और श्वासहीन-सा हो गया।

२७-३३ : धीमें-धीमें पास जाकर और अकेले में मौका पाकर उस आदमी ने अपना नाम बताकर जमा रकम वापिस माँगी। उस पापी ने आंखें फेरकर हाथ नचाते हुए उससे कहा—"यह ठग, पापी, दरिद्र कहाँ से आ टपका। तू कौन है, किसलिए

कहाँ से आया है। अरे कह भी, कब कहाँ, किसकी, किसने, किसको धरोहर दिया। देखो तो कैसा नाशकारी कलियुग आ गया है। यह पागल, धन चाहता है पर लोग सब जानते हैं, हमारे हरगुप्त के कुल में रकम जमा करना असंभव है और फिर छिपाने में घोर पाप का तो कहना ही क्या है। फिर भी हमेशा के शिकायती लोग बड़ों की शिकायत करते ही रहते हैं। दिन बता, उस दिन का लिखा ब्यौरा सब खुद देख ले। मैं बूढ़ा हूँ, मैंने लेखे-जोखे का सब काम लड़के पर डाल दिया है।" इस तरह दुत्कार कर बिदा होने के बाद वह घबड़ाया हुआ लड़के के पास आया।

३४ : "बाप जानते हैं", "बेटा जानता है", "पिता ही सब लिखते हैं", ऐसी बातों से वह गेंद की तरह एक से दूसरी तरफ लुढ़कता रहा।

३५-३६ : प्रवास के समय उसके पास जमा किये धन की फरियाद के लिए उसके राजा के दरवाजे पर जाने पर भी वह बनिया राजा का क्रोध सहते हुए भी जमा का एक भाग भी देने को तैयार नहीं हुआ। राजा द्वारा अनेक यातनाओं से पीड़ित होने पर भी वह यही कहता रहा—"इसने मेरे पास कोई रकम जमा नहीं की।"

३७ : धनरूपी खारा पानी पीकर प्यासे स्वभाव से लालची होते हैं। वे तिनके की तरह अपनी देह छोड़ देते हैं, पर धन का जरा-सा भाग भी नहीं छोड़ते।

३८-४२ : अपने बाल मित्र, सब निधियों के मालिक, महाधनी कुबेर के पास जाकर धन के इच्छुक शुक्र ने कहा—"मित्र, देवताओं और असुरों से अधिक भरी-पूरी तुम्हारी दौलत है। वह दौलत मित्रों को सुख और शत्रुओं को दुःख देती है। तुम्हारे जैसे धनपति का मित्र होते हुए भी मैं गरीब हूँ। मेरा बड़ा परिवार है। अपने मन से सुख-दुःख में साथ देनेवाला मित्र प्रशंसनीय है। आदरणीय, अर्थियों को धन देने वाले, कुलीन, बड़े लोगों की दौलत मित्रों के उपयोग के लिए है। बड़े पुण्य से इकट्ठा किये हुए, यत्नपूर्वक रक्षित, सम्पत्ति और विपत्ति में धन और मित्र काम आते हैं।"

४३-४६ : अकेले में शुक्र के प्रेमपूर्वक ऐसा कहने पर कुबेर ने स्नेह और लोभ के बीच द्वन्द्व करते हुए बहुत देर सोच कर कहा—"मैं तुम्हें बचपन का बड़ा स्नेही जानता हूँ पर जीते जी मैं अपने धन की एक कौड़ी भी नहीं दे सकता। प्रेम से बंधु और बहुत कामों से मित्र बन जाते हैं। संसार में स्त्रियाँ और पुत्र मिलने आसान हैं, केवल धन मिलना मुश्किल है। धनदान का काम अत्यंत साहस भरा, अत्यंत कठिन और आश्चर्यजनक है। मनुष्य शरीर भले ही दे देता है पर धन का जरा-सा भी भाग नहीं देता।"

४७ : कुबेर से इस तरह उम्मीद टूटने पर मुँह लटकाए, चकपकाए और लजाए हुए शुक्र वापिस लौटे।

४८ : वह महायोगी अपने घर मंत्रियों और भार्या के साथ देर तक सलाह-मशविरा करके कुबेर के हृदय में उसके अपार धन को समाप्त करने के लिए घुस गया।

४९ : शुक्र से आविष्ट वैश्रवण अद्भुत त्यागी बन गया तथा उसके इशारे पर उसने अपना सारा धन ब्राह्मणों को दे दिया।

५०-५६ : कुबेर का सारा धन हर कर शुक्र के चले जाने पर उसकी धोखेबाजी का पता पाकर उसने बहुत देर तक सोच-विचार किया। सिर पर हाथ देकर, शंख, मुकुंद, कुंद, पद्म इत्यादि के साथ शुक्र की धोखेबाजी की बात करके गरम साँस भरकर उसने कहा—"मित्र, मर्मज्ञ, मायावी, लालची, दैत्यों के सहारे दुर्जय, धूर्त शुक्र ने धोखा देकर मुझे ठगा। अब एकाएक निर्धन होकर मैं तिनके की तरह हल्का हो गया हूँ। किससे अपना दुखड़ा रोऊँ? मैं क्या करूँ, कहाँ जाऊँ? लोग निर्धन को छोड़ देते हैं। लोगों के छोड़ देने पर उसका निरादर होता है और बेइज्जत पर भारी विपत्तियाँ टूट पड़ती हैं। प्राणियों के पास धन रहने पर रिश्तेदार धर्म रूपी लता के माली बने रहते हैं, पर धन और जान चली जाने पर सब चल देते हैं। विद्वान्, सुंदर, माननीय, प्रभावशाली, कुलीन और शूर धन से होता है, दरिद्र का सद्गुण भी निर्गुण हो जाता है।"

५७ : इस तरह धन चले जाने के दुःसह दुःख की आग से किंकर्तव्यविमूढ़ होकर कुबेर देर तक अपने मंत्रियों से सलाह करने के बाद शिव की शरण में गये।

५८ : संसार के शरण महेश्वर ने 'यह मेरा पुराना रईस मित्र है', ऐसी उसकी बात जानकर एक दूत शुक्र के पास भेजा।

५९-७१ : सहसा दूत के बुलाने पर धन की प्रभा से दमकते, अपने सिर पर हाथ जोड़े, सामने खड़े शुक्र से शंकर ने कहा—"तूने कृतज्ञ होकर भी अपने मित्र कुबेर को ठगा। मित्रद्रोह तो कृतघ्न भी नहीं करता। कीर्ति की परवाह न करने वाला, पैंतरेबाज, अकृतज्ञ ऐसा करता है। स्निग्ध और प्रेमी मित्र को तेरा ऐसे ठगना ठीक नहीं। हे सुमति, क्या यह बात तेरी विद्वत्ता, तपस्या तथा कुल के अनुरूप है? जो कुछ तूने किया वह नीचता है। क्या यह तेरे नीतिशास्त्र का अभ्यास, इन्द्रियनिग्रह, गुरुजनों के उपदेश अथवा सहज बुद्धि का फल है जिससे तू ठग हो गया? धन किसको प्यारा नहीं। वित्त किसका दिल नहीं हर लेता? पर यश रूपी धन के इच्छुक बुरे कामों से धन पैदा नहीं करना चाहते। अरे, अमल भृगुकुल को मैले लोभ से गंदा मत कर। लोभ रूपी बादल राजहंसों के विशद यश का दुश्मन है। अनंत कीर्ति को छोड़कर हवा

में फड़कते हुए तिनके की तरह धन को जो पकड़ता है वह धूर्तों के बीच कैसा भारी धूर्त है। साधुभाव को छोड़कर जो कुटीचर दूसरों को ठगता है वह बेवकूफ अपने ही सुकर्मों को ठगता है। बदनाम लोगों की किसलय की तरह कोमल लक्ष्मी, बदनामी रूपी विषैले पेड़ से उठी गंध से बेहोश हो जाती है। सज्जनों का यश रूपी स्फटिक की तरह स्वच्छ दर्पण प्रताड़ित लोगों की सांसों से गंदा पड़ जाता है। मोह से किया हुआ, असमंजस से भराँ नीच काम दुविधा से और खराब हो जाता हैं। दूसरों का धन लौटा कर उसकी सफाई कर। बदनामी रूपी धूल से गंदे बने अपने स्वच्छ यश को अपने हाथ से साफ कर। मेरी बात मान, दूसरे का धन लौटा दे।"

७२-७९ : त्रिभुवन गुरु महादेव के ऐसा कहने पर दूसरे के धन के लालची शुक्र ने आजिजी से कहा—"भगवन्, आपकी आज्ञा देवताओं को भी मान्य है। उसे मोहवश कौन गुणहीन नहीं मानता, अगर वह बुरी हालत में नहीं है। जिस गरीब के घर नौकर-चाकर, स्त्रियाँ और बच्चे तकलीफ पाते हैं वह भला धन पैदा करने के लिए बुरे-भले का कैसे विचार कर सकता है। मेरे मित्र कुबेर विपत्ति में हमेशा रक्षा करेंगे, ऐसा मैं सोचा करता था और मेरी यह आशा मेरे हृदय में बराबर बढ़ती जाती थी। लज्जा छोड़कर जाकर भीख माँगने पर भी उस बेशर्म ने इन्कार के हथियार से एकाएक मेरी आशा काट दी। जिस शठ ने मोहवश होकर मेरी आशा तोड़ी, उस पर बिना हथियार के वार करना, बिना आग के उसे जलाना, और बिना विष के उसे मारना ठीक है। अपने बर्ताव से वह मेरा दुश्मन है और शत्रु के ठगने का पाप पुण्य है। छूछे का ठगी से भी धन पैदा करना निरपवाद है। अणुमात्र भी धन त्याज्य नहीं है, ऐसा सत्य आपने मुझे सिखाया है। धन ही जीवन है, धन का त्याग ही मृत्यु है।"

८० : इस तरह बात करने पर तथा शिव के बराबर समझाने-बुझाने पर भी जब वह नहीं माना तो बात न मानने से क्रोधित शिव ने उसे निगल लिया।

८१-८२ : शिव के घोर और गहरे पेट में प्रलयाग्नि की तरह भीषण गर्मी से अपने शरीर का काढ़ा बनाये हुए शुक्र चिल्लाया, पर शिव के बराबर जोर देने पर भी कि 'धन लौटा दे' उसने कहा—"मालिक, चाहे मर ही क्यों न जाऊँ, कुबेर का थोड़ा-सा भी धन मैं लौटाने के लिए तैयार नहीं।"

८३-८४ : उसके धारण करने से बढ़ी हुई आग की लपट से शिव के गहरे पेट में गिरा शुक्र बहुत रोया चिल्लाया। इस पर शिव ने कहा—"अरे हठी, दूसरे का धन लौटा दे और इस पेट रूपी महासमुद्र के बड़वानल में मत जल मर।"

८५-८७ : शिव के यह कहने के बाद ही भयंकर ताप से फूटती हुई हड्डियों और चरबी से चटकती हुई आग बढ़ने पर भी शुक्र ने साँस भर कर कहा—"मरना अच्छा

है, पर मैं कणमात्र भी धन नहीं छोड़ूँगा।" फिर भी घोरतम कालाग्नि में जलते हुए, थोड़ी सी बची जान लेकर शुक्र ने देवी की स्तुति की। स्तोत्र से प्रसन्न गौरी के प्रेम से शिव के खुश होने पर, देवी की बात से धीरज बांधकर शिव के लिंग से शुक्र निकल भागा।

८८ : इस तरह स्वभाव से लालची घोर-से-घोर यातनाएँ सहते हैं पर कुटिलता की तरह सहज ही में धन नहीं छोड़ते।

८९ : इसलिए लालच से पैदा कपटी और कुटिल माया लालचियों के हृदय में बसती है; जिन्हें लालच नहीं उन्हें वह नहीं ठगती।

श्री व्यासदास महाकवि क्षेमेन्द्र कृत कलाविलास का लोभ वर्णन नामक द्वितीय सर्ग समाप्त

तृतीय सर्ग

१ : काम अपनी कमनीयता से मनुष्य में अत्यंत मोह उत्पन्न करके, भयंकर विष की तरह, सहसा अपनी मधुरता से जीवन का अंत कर देता है।

२-३ : जिसके मद पर मस्त बने भौंरे मँडरा रहे हों, ऐसे मदमस्त हाथी जल्दी से अबला हथिनियों द्वारा बाँध दिये जाते हैं। पैरों की मार, तीखे आंकुस के प्रहार, जंजीर से बाँधकर रोकथाम—विषयानुरक्त हाथी काम से ठगा जाकर क्या-क्या नहीं सहता।

४ : बहुत दिनों का व्यसनी और चितवनों की चाल जानने वाला विषयासक्त मनुष्य स्त्रियों द्वारा पालतू मोर की तरह नचाया जाता है।

५ : अनुरक्तों से आसक्त स्त्रियाँ माया मोहरूपी अँधेरे से भरी रातों में बेवकूफों का हृदय उसी तरह हर लेती हैं जैसे खून पीने वाली डाकिनियाँ अँधेरी रातों में मुग्धों का हृदय अपनी माया से खींच लेती हैं।

६ : प्रेम रूपी मृगों का जाल, हृदय रूपी हाथी को बाँधने की जंजीर, दुःख की नई बेल—ऐसी स्त्रियों के बस में होकर फिर कोई नहीं छूटता।

७ : जो जितात्मा संसार की विलक्षण माया, शंकर-माया और चित्त उखाड़ने की माया जानता है वह भी स्त्रियों की माया नहीं जानता।

८ : कुसुम के समान सुकुमार देहवाली, हीरे के समान कठिन हृदय लेकर भी सद्भाव दिखलाने वाली, ऐसे विचित्र आचरणों वाली स्त्रियाँ किसके मन में मोह पैदा नहीं करतीं।

९ : प्रेमियों से विरक्त, नम्रों से अभिमान दिखाने वाली, विरक्तों की बातों में अनुरक्त, ठगों की बात पर विश्वास करनेवाली, सद्भाव से शंकित स्त्रियाँ होती हैं।

१० : वही इस लोक में भाग्यवान् है जिसके घर में बहुतों से देखी गई नखरे-बाज, धैर्य की टूटी पताका की तरह पत्नी नहीं है।

११ : मद विकारों से विजित, गूँगा और बेहोश बना हुआ, ऐसे पति के मुँह पर स्त्रियाँ घर की झारी धूल फेंकती हैं।

१२ : प्रौढ़ा, मुग्धा की तरह, नकली घुली-मिली बातों से अपने बेवकूफ पति से तिलक के लिए चन्द्रबिम्ब माँगती हैं।

१३ : तीर्थ देखने के बहाने यार से मिलकर लौटने से थकी चपला के रति से थके पैरों को पति दबाता है।

१४ : चितवनों से कुछ और, बातों से कुछ और, चेष्टाओं से कुछ और, और रति से कुछ और, स्वभाव से ही स्त्री बहुरूपिया है।

१५ : अपने पति की चपल हिरनी, दूसरे वृक्ष की भौंरी, स्वभाव से चांडालिन, झूठी नकल करने वाली, बल खाती नागिन किसकी अपनी हो सकती है।

१६ : 'अनेक युवकों के साथ मजे उड़ाने वाली वेश्या धन्य है', ऐसा अकेले में उसाँस भरकर स्त्रियाँ कहती हैं।

१७ : महल में बैठी चपला गली में देखती है, भद्दे गाने गाती है और बिना कारण ही दौड़ती है और स्फटिक की माला की तरह स्वच्छ हँसी हँसती है।

१८ : 'जानवर की तरह बोलने वाला मेरा पति कुछ करना नहीं जानता', घर में नौकरों से ऐसा कह कर वह पति का काम करती है।

१९ : जीते हुए मरे के समान पति के घर में पत्नी स्वयं उठकर लोगों की आव-भगत करती है, कामकाज के लिए खुद जाती है और जोर से बोलती है।

२०-२१ : डाह करने वाली बूढ़ी पत्नी, दासी, नियोगी की स्त्री, कारीगर और नटों की स्त्रियाँ, लालची की स्त्री, सार्थवाह की स्त्री और गोष्ठी में जानेवाली, ये सब स्वभाव से ही युवकों को प्यारी होती हैं। ये दूसरे के गुणों की तारीफ करती हैं और अपने पति की हमेशा निन्दा करती हैं।

२२-२८ : गरीब, बड़ी विषयी, रूपवती अथवा बदसूरत पत्नी, बेवकूफ की स्त्री, सब कलाओं में पारंगत, नीचों के साथ से उद्विग्न, जूए और शराबखोरी में आसक्त, लंबी कहानियों और गीतों में अनुरक्त, कुशल, छिनालों की सखी, बहादुरों का स्वभाव से ही पक्षपात करनेवाली, घर का कामकाज छोड़नेवाली, तरह-तरह से वेष बनाने वाली. फजूल की बातें करने वाली, हाजिरजवाबी में मजा लेनेवाली, झूठी,

स्वभाव से निर्लज्ज, कुशल प्रश्न पूछने वाली, खूब रसभरी बातें करनेवाली, अकेले में तरह-तरह की क्रीड़ाओं में आसक्त पर प्रकाश में पूरी सावित्री, यज्ञ, तीर्थ, देवमंदिर, ज्योतिषी, वैद्य तथा रिश्तेदारों के यहाँ जानेवाली, स्वतंत्र होकर भोजन पान में बहुत खर्च करानेवाली, उत्सव मनाने वाली, भिक्षुओं और तपस्वियों की भक्त, स्वजनों से विरक्त, खूबसूरतों पर आसक्त, दर्शन और दीक्षा की प्रेमी, पति से विरक्त, मौन रहने वाली, गोष्ठी की प्रेमी, इन सबको खराब औरत कहते हैं।

२९ : हमेशा प्रेमी को दोष देने वाली, जनों को मोहने वाली, बहुतों को पकड़ने वाली, चपल, क्रूर, कांति चुराने वाली, अनुरक्तों का माल लूटने वाली स्त्रियाँ, हमेशा रात से लगी, लोगों को मोहने वाली, ग्रहों से युक्त, चपल, संध्या की ललाई हरनेवाली, और रात में पीछे पड़ने वाली, मोहने वाली, ग्रसने वाली, चपल, खून चूसने वाली, और क्रूर पिशाचिनियाँ एक समान हैं।

३०-३१ : तुच्छ बातों में फँसे हुए बुद्धुओं पर कौन रोब नहीं कसता? जो अदांत और मुहब्बती हैं वे ही चपला स्त्रियों से प्रेम करते हैं। शृंगार और शौर्य की बातें कहना, अंडबंड दान की डींग हाँकना, ये सब बातें उनके लिए बिना मंत्र के ही वशीकरण मंत्र हैं।

३२ : कलियुग की अँधेरी रात में घूमने वाली मायाविनी राक्षसी स्त्रियों की बदमाशियों से किसे कँपकँपी नहीं उठती?

३३-३६ : प्राचीन काल में बनियों का राजा धनदत्त मानो कुबेर का धन जीत कर, रत्नों से भरे समुद्र की तरह, इस संसार में ख्यात हुआ। उस बनिए को काम के वैभव की मूर्तरूप, ललितांगी, अपनी चितवनों से दिशाएँ जीतने वाली वसुमती नामक एक कन्या हुई। बिना लड़के के उस बनिए ने अपनी लाड़ली कन्या को पुत्र की तरह मानकर उसका ब्याह विभव के मानो कुल समुद्रदत्त से करा दिया। अपने ससुर के घर उस हरिणाक्षी के साथ काफी दिनों तक मौज उड़ाकर वह द्वीपान्तर से आये हुए काफिले के साथ चला गया।

३७-४० : पति के चले जाने के बाद, अपने पिता के महल की छत पर चढ़कर वह विलास की मूर्ति, रति चंचला तरुणी सखियों के साथ अठखेलियां करने लगी। महल पर से उस विशालाक्षी ने एक काम जैसा रूपवान् पुरुष देखा। उसे देखते ही मानो कुमतिवश उसका धीरज न जाने कहाँ चला गया। वह चंचलाक्षी मानो उससे ठगी जाकर अपनी सुधबुध खो बैठी तथा काम विकार रोकने में वह नितांत अशक्त हो गई। 'चपले, शील की रक्षा कर, नदी की तरह अपने कुल रूपी कगारों को मत ढहा', ऐसा मानो उसके काँपने से आकुल उसकी मेखला उससे जोर से देर तक कहती थी।

४१-४२ : उसने अकेले में अपनी सखी से सब हाल कहा और वह रात में उस जवान को बुला लाई। स्त्रियों का मन चल जाने पर उन्हें कौन रोक सकता है। नखरों से, मौज मजों से, हँसी-मजाक से तथा सहज प्रेम से उस छिनाल ने उसके साथ बिहार किया।

४३-५२ : उधर अपना व्यापार जल्दी से निबटा कर अपनी स्त्री को देखने के लिए उत्सुक समुद्रदत्त लौटकर अपने ससुर के घर में घुसा। भीड़भाड़ में लोगों के साथ दिन भर महोत्सव में बिताकर, मौज उड़ा कर वह रात में अपनी स्त्री के साथ शयनगृह में घुसा। सुंदर शय्या से युक्त, चँदवा लगे, धूप से महमहाते, देव मंदिर की तरह, मणिदीप से प्रदीप्त वह उस मनोरम स्थान में पहुँचा। वहाँ शराब की मस्ती से भरी आँखों वाली अपनी प्रिया को आलिंगन करके, उस रति के लालची ने, जैसे मदमस्त हाथी कमलिनी को रौंदता है उसी तरह शय्या को रौंदा। दिल में दूसरे पुरुष का ध्यान लगाए हुए उसकी पत्नी आँखें बन्द करके, ध्यानमग्न योगिनी की तरह, चुपचाप पड़ी रही। पति द्वारा आलिंगन, चुंबन तथा नीवी खोलने पर वह साँस भर कर और देह सिकोड़ कर अपने यार के बारे में सोचती थी। उसके बेवकूफ पति समुद्रदत्त ने उसे प्रेम में रूठी जानकर जमकर खुशामद की बातों से उसे प्रसन्न करना चाहा। परपुरुष की प्रेमी, विमुख, और प्रेम की बातों से अलग-विलग स्त्रियों की पशुतुल्य बेवकूफ और भी खुशामद करते हैं। दूसरे का प्रेम क्या नहीं करता? सैकड़ों बादलों में अनुरक्त संध्या को भी प्रेमी सूर्य प्यार करता है। अपने प्यारे को एक निर्जन उपवन के कुंज में संकेत देकर सोचती हुई, बेहोश-सी, उसने अपने पति को जहर-सा माना।

५३-५४ : रति से थककर समुद्रदत्त के सो जाने पर वह उठी और झटपट सज-धज कर जाने के लिए तैयार हो गई। उसी समय शराब से मतवाले बने उस घर में घुस कर एक चोर ने आभूषणों के झंकार से अपने जाने की उत्सुकता बताती हुई उसे देखा।

५५-५८ : इसके बाद चन्द्रमा ने झिलमिलाती तारिकाओं को आलिंगन करके पूर्व दिशा को मानो चकित कर दिया। कमलों को मूँदने वाली, कुमुदिनियों के खिलने से सुशोभित यामिनी की नकली हँसी की तरह चन्द्रमा आगे बढ़ा। सूर्य की गरमी से थके आकाश को चन्द्रालोक से प्रसन्न होते देख कर भौरों की गुंजार से मुखरित बावड़ियाँ मानो कुमुदों की मदद से हँस रही थीं। रात्रि रूपी रमणी चन्द्रकिरणों द्वारा अपना अँधेरा रूपी कंचुक हर लिये जाने पर मानो लजाकर कुमुदों के गंध से मस्त काले भौरों का कपड़ा पहन रही थीं।

५९-६३ : आधी रात में लोगों के सो जाने पर तथा खूब चाँदनी छिटक जाने पर अंधियारी की तरह वह बेखटके उपवन की ओर चल दी। कामबाण से घायल वह

बेकाबू बगीचे में घुसी। आश्चर्य से भरा गहनों की लालच से चोर भी छिपकर उसके पीछे-पीछे चला। उस उपवन में उसने बढ़िया मलमली (अंकुश) कपड़े पहने, फूलों से सजे, आसपास जिसके पक्षी मँडरा रहे थे ऐसी शंकनीय अवस्था में उस यार को देखा। अपनी प्यारी की वियोग की आग से जले दिलवाला तथा दिशाओं के मुख चूम कर मदमस्त बने चन्द्रमा की किरणों से परेशान बहुत देर तक बाट जोहने के बाद अपनी प्यारी से फिर से न मिलने से हताश वह पेड़ से लटकती लता से फाँसी लगाकर मर गया था।

६४-६६ : उसे इस अवस्था में देखकर प्रेम, शोक और भय से भरकर रोती हुई वह तन्वी तलवार से कटी हुई लता की तरह गिर पड़ी, बेहोशी में आँखें बंद किये वह बहुत देर तक जमीन पर पड़ी रही। कुछ देर बाद होश आने पर वह खुल कर धीरे-धीरे रोने लगी, "हाय मेरी आँखों को आनंद देने वाले, तेरा चन्द्रमुख कहाँ गया? मैं कहाँ हूँ? मेरा प्यारा कहाँ है।"

६७-६८ : इस तरह नए दुःख से भरी उस अबला ने रो-धोकर मृत देह को यत्न-पूर्वक फाँस से छुड़ाकर, गोद में उसका मुख रखकर, मानो अपनी जान देती हुई उसका मुख चूमने लगी। उसने मृतक के मुख को अपने मुखकमल से सटाकर प्रेम के प्रकट स्वरूप की तरह लाल पान उसके मुख में डाला।

६९-७० : इस पर उस औरत के फूल, कस्तूरी, धूप इत्यादि की सुगंधि से आकृष्ट होकर एक बेताल शव में घुस गया और उसकी नाक काट ली। अपने किये का फल पाकर वह नकटी अपने पति के घर पहुँची और वहाँ धाँड़े मार कर रोने लगी।

७१-७२ : रोने की आवाज से घबराकर समुद्रदत्त और दूसरों के जाग जाने पर उसने रोकर कहा—"मेरे पति ने मेरी नाक काट डाली है?" गुस्से से भरे ससुर इत्यादि रिश्तेदारों के पूछने पर भी परदेश में बिके मूक गुलाम की तरह समुद्रदत्त कुछ न बोला।

७३-७५ : सबेरे राजदरबार में उस स्त्री के रिश्तेदारों द्वारा फरियाद करने पर क्रोधित होकर राजा ने समुद्रदत्त पर गहरा जुर्माना किया। पर उस आश्चर्यचकित चोर ने स्वयं सब कुछ देखा राजा के सामने बयान कर दिया और इनाम में कड़े इत्यादि पाया। उद्यान में शव के मुँह में उस स्त्री की लगी हुई नाक दिखलाकर उसने अकारण ही मित्रता दिखलाकर समुद्रदत्त को छुटकारा दिलवाया।

७६ : इसलिए जो इन कुटीचर, क्रूरकर्मी, निर्लज्ज और चपल स्त्रियों को जानता है वह बुद्धिमान स्त्रियों से ठगा नहीं जाता।

महाकवि क्षेमेंद्र कृत कलाविलास का कामवर्णन नामक
तृतीय सर्ग समाप्त

चतुर्थ सर्ग

१ : भारी चालाक, अपने नकली प्रेम से लोगों को लूटने वाली वेश्याएँ अपने कपटाचार से कुबेर को भी भिखमंगा बना देती हैं।

२-११ : लुटेरी, तरंगी और नीचों का संसर्ग करनेवाली वेश्याएँ ढहानेवाली, तरंगों से भरी, चपल और निम्नगा नदियों की तरह हैं। जैसे नदियाँ समुद्र में मिलती हैं उसी तरह वेश्या के हृदय में चौंसठ कलाएँ बसती हैं यथा—(१) वेशकला, (२) नृत्यकला, (३) गीत कला, (४) नजारे मारने की कला (बहुवीक्षण कला), (५) काम परिज्ञान कला, (६) फँसाने की कला (ग्रहणकला), (७) मित्रों के ठगने की कला (मित्रवंचन कला), (८) पान कला, (९) केलि कला, (१०) सुरत कला, (११) आलिंगन कला, (१२) अंतर रति कला (१३) चुंबन कला, (१४) दूसरे को देखने की कला (परकला), (१५) निर्लज्जता की कला, (१६) आवेश कला, (१७) घबड़ाहट दिखाने की कला (संभ्रम कला), (१८) ईर्ष्या दिखाने की कला, (१९) कलह की कला (कलिकेलि कला), (२०) रोने की कला, (२१) मान छोड़ने की कला (मान संक्षय कला), (२२) पसीना लाने की कला, (२३) भ्रम पैदा करने की कला, (२४) कंपकला, (२५) एकांत में रहने की कला, (२६) शृंगार पटार की कला, (२७) नेत्र निमीलन कला, (२८) निःस्पन्द कला, (२९) मरने की नकल साधने की कला, (३०) विरह से यार को वश में करने की कला (विरहासहराग कला), (३१) कोप कला, (३२) अपने यार के मना करने अथवा उसकी भलाई के निश्चय की कला (प्रतिषेध निश्चय कला), (३३) खाला से लड़ने की कला, (३४) अच्छों के घर जाने की कला, (३५) तमाशा देखने की कला (उत्सवेक्षण कला), (३६) हरण कला, (३७) जाति कला, (३८) केलि कला, (३९) चोर कला, (४०) राजसी ठाठ से रहने की कला, (४१) बड़प्पन दिखलाने की कला, (४२) अकारण निन्दा की कला, (४३) शैथिल्य कला, (४४) पेट दर्द या सिर दर्द के बहाने की कला, (४५) उबटन लगाने की कला (अभ्यंग कला), (४६) नींद लाने की कला, (४७) रजस्वला होने के बहाने से कपड़ा दिखलाने की कला, (४८) रुखाई दिखलाने की कला, (४९) तेजी दिखलाने की कला, (५०) गले में हाथ देकर निकाल बाहर करने की कला (गलहस्त कला), (५१) घर के दरवाजे पर ब्योंड़ा चढ़ा देने की कला, (५२) त्यक्त कामी का धन पाने की आशा से उसे वापस बुलाने की कला, (५३) दर्शन कला, (५४) यात्राकला, (५५) स्तुति कला, (५६) तीर्थ, उपवन और देवमंदिरों में मौज से घूमने की कला, (५७) हँसी-मजाक की कला, (५८) घर के कामकाज की कला, (५९) वशीकरण के लिए मंत्र और औषधियों की जानकारी की कला, (६०) पेड़ लगाने की कला, (६१) बाल सँवारने की कला (केश-

रंजन कला, (६२) भिक्षुओं और तापसों को तरह-तरह के दान देने की कला, (६३) द्वीप घूमने की कला, तथा इन सब कलाओं के अंत होने पर वेश्या (६४) कुटनी की कला साधती है।

१२ : जो अज्ञात नाम और कुलवालों को थोड़े से धन के लिए अपने को दे देती हैं, ऐसी का भी सद्भाव बेवकूफ खोजते हैं।

१३ : प्रेम से जले हृदयवालों का सारे संसार को ठग कर पैदा किया हुआ धन बदमाश, नीच अथवा नंगा खाता है।

१४ : नीच-घुड़सवार, और बदमाश फीलवान और शिल्पी भी सब लोगों को ठग कर उसके प्रेमी बनते हैं।

१५-१७ : एक समय पराक्रमी राजाओं से हारकर मानी राजा विक्रम सिंह अपने गुणयश नामक मंत्री के साथ विदर्भ चले गये। वहाँ दुनिया में मशहूर वेश्या विलासवती के घर जाकर, गरीब होने पर भी उस अधिक लेने वाली वेश्या के साथ उसने भोग किया। राजलक्षणों से युक्त, आजानुबाहु, तेजस्वी राजा को देखकर उस वेश्या ने बेशुमार जवाहरात और सोना खर्च के लिए उसके सामने पेश कर दिया।

१८-२० : उसका सहज प्रेम और अद्भुत त्याग देखकर अचंभे में आकर प्रेम से राजा ने अकेले में अपने महामात्य से कहा—"यह विचित्र बात है कि मेरे लिए वेश्या होकर भी यह तिनकों की तरह दौलत खर्च रही है। उसने वेश्याओं के धन से बँधे प्रेम को प्रीति के पद पर बैठा दिया है। वेश्याएँ धन के लोभ से झूठी प्रीति दिखलाती हैं, फिर भी अगर वेश्या धन खरचती है तो उसके प्रेम में क्या संदेह है।"

२१-२४ : राजा की यह बात सुनकर ईर्ष्यालु मंत्री ने हँसकर कहा—"राजा, वेश्याओं के चरित में कौन विश्वास कर सकता है? ये झूठी, धन की प्रेमी, सुख में ही साथ देने वाली मिठबोली वेश्याएँ बेवकूफों के दिलों में पैठ जाती हैं। प्रथम समागम में सुखकर, बीच में दुःख और प्रवास का कारण और अंत में दुःखकर पुरुषों की आशाएँ और वेश्याएँ होती हैं। अब तक हरिहर आदि देवताओं ने भी भ्रम, विभ्रम और मोह की जननी वेश्याओं और सांसारिक माया का तत्त्व नहीं समझा।"

२५-२७ : राजा ने अपने मंत्री की यह बात सुनकर तथा उससे सलाह करके उस वेश्या की परीक्षा के लिए झूठमूठ अपनी मृत्यु साध ली। मंत्री द्वारा उसका शव चिता पर रख दिये जाने पर एकाएक गहने कपड़े पहने विलासवती श्मशान में चली आयी। जोरों से धधकती आग की लपटों में उसे दौड़कर गिरती देखकर राजा ने उसे भुजाओं से भेंटा और प्रसन्न होकर कहा कि—"मैं जिन्दा हूँ।"

२८ : इसके बाद उसके दृढ़ और सच्चे प्रेम का ख्याल करके प्रीति से भरे राजा ने उस वेश्या के गुणों से आकर्षित होकर मंत्री की निन्दा की।

२९-३० : इस तरह राजा ने उस वेश्या की अतुल धनराशि अपने बस में करके, हाथी, घोड़ों और योद्धाओं से मजबूत बनकर अपनी सेना आगे बढ़ा दी। अपनी बड़ी सेना से पृथ्वी के मालिक अनेक राजाओं को हराकर उसने पूर्णचन्द्र की तरह पूर्णता पायी।

३१-३६ : राजा ने विलासवती को अपने अन्तःपुर की स्त्रियों का सरताज बना दिया और वह तन्वी चमर हिलाने से छिटकती अलकों वाली लक्ष्मी की तरह सुशोभित हुई। उसने एक बार अकेले में राजा से हाथ जोड़कर और नत होकर कहा—"नाथ, मुझ दासी ने आप जैसे कल्पतरु की हमेशा सेवा की है। यदि मेरे कारण से आपकी लक्ष्मी फिर से लौटी तो आप कृपा करके मेरी इच्छा पूरी करें। पुण्य देने वाले, दूसरों का पाप हरने वाले, स्वभाव से ही पवित्र, तीर्थों की तरह बड़ों का साथ विफल नहीं होता। मेरा धन और जीवन से भी अधिक प्यारा प्रेमी एक युवक था। अभाग्यवश वह विदर्भपुर में चोर की तरह गिरफ्तार हो गया। उसकी मुक्ति के लिए मैंने आप जैसे राजा की भरसक सेवा की। आप अब अपने सत्त्व, कुल और शौर्य के अनुरूप जो उचित हो कीजिए।"

३७ : यह बात सुनकर राजा विस्मित होकर ठगा-सा रह गया और देर तक जमीन की ओर देखते हुए उसे मंत्री की बात याद आ गई।

३८ : इसके बाद राजा ने उसे आश्वासन देकर तथा विदर्भराज को जीत कर बंधनमुक्त उस चोर की उससे मुलाकात कराई।

३९ : इस तरह अनेक हृदयों, जीभों, हाथों और मायाओं वाली झूठी वेश्याओं को कौन जान सकता है।

४० : वेश्याओं का कहने का प्यारा, धन देने का प्यारा, गुलामी का प्यारा, रक्षा करने के लिए प्यारा और हँसी-मज़ाक के लिए प्यारा अलग-अलग होता है।

महाकवि क्षेमेन्द्र रचित कलाविलास का वेश्यावृत्त नामक
चतुर्थ सर्ग समाप्त

पंचम सर्ग

१ : लोगों का सब कुछ लूटने वाला मोह शुरू में बुद्धि गायब कर देता है। वह छिपकर कायस्थों के मुख और लेख में बसता है।

२ : चन्द्रकला की तरह पूर्ण, लहलहाते धान से भरा खेत क्षण भर में कायस्थ-रूपी राहु को देखते ही साफ हो जाता है।

३ : मोह हटने से योगी संसार की कला जान जाते हैं पर बहुत प्रयत्न करने पर भी किसी ने कायस्थ की कला नहीं जा ी।

४ : अनेक चालबाजियों के अड्डे, लोगों के धन के छेद, क्षयरूपी रात के अँधेरे के समान, कायस्थों से सारी जनता ग्रसी हुई हैं, काल से नहीं।

५ : भारी दंड से लोगों को मारने वाले, हिसाब लगाने के यमदूत पिशाच संसार में अपनी भूर्ज रूपी ध्वजा फहराते हैं।

६ : यम के भैंसे की सींग की नोक की तरह कुटिल, ऐसों का क्या विश्वास जिनके गले में काल का जहरीला फंदा भी नहीं पड़ता।

७ : कलम की नोक से झरती हुई रोशनाई की बूँदों के बहाने मानो कायस्थों द्वारा लुटने पर खिन्न होकर राजलक्ष्मी अंजन से गदले बने आँसुओं से रोती है।

८ : मायाविनी स्त्री की कुटिल अलकावली की तरह विषम जोड़ों को लगाने वाले कायस्थों से कौन ऐसा संसार में है जो मोहित न कर लिया गया हो।

९ : माया के प्रपंचों से सारे संसार को ठगने और विषयों को ग्रास बनाकर खानेवाली इन्द्रियों और कायस्थों से सारा संसार सफाचट हो जाता है।

१० : उसकी कुटिला लिपि यमपाश की तरह देख पड़ती है। वह कायस्थ के भूर्जपत्र के सिरे पर गेंडुली मारे हुए साँपों की तरह देख पड़ती है।

११ : ये विचित्र बुद्धि, छिपी बातें करने वाले चित्रगुप्त कायस्थ केवल एक रेखा के हेरफेर से सहित को रहित कर देते हैं।

१२ : लोक में कायस्थों की थोड़ी बहुत कलाएँ प्रसिद्ध हैं पर उनकी गूढ़ कलाओं को कलियुग अथवा यम ही जानता है।

१३-१७ : (१) वक्रलिपिन्यास कला—टेढ़े-मेढ़े अक्षर लिखकर एक पंक्ति के अक्षर दूसरों में मिला देना जिससे मतलब खब्त हो जाय। (२) सकलाङ्कनिमीलन कला—गुप्त आँकड़ों का पूरा ब्यौरा जानना। बहुधा व्यापारी असल दाम छिपाकर सांकेतिक अंक रख लेते हैं जिनसे सिवाय उनको छोड़कर दूसरों को असल दाम का पता नहीं चलता। (३) सतत प्रवेश कला—हर बात में दखल देना; (४) संग्रह लोक कला—हर एक को अपने पक्ष में करना, (५) व्यय विवर्धन कला—खर्च को बढ़ाकर बताना; (६) ग्राह्य परिच्छेद कला—लेने वाली वस्तु को पहले से ही बाँटने का बाँधनू बाँध रखना, (७) देय धन कला—कर्ज देने की कला; (८) आदान धन कला—कर्ज लेने की कला, (९) शेषस्य विवेक कला—बाकी बचे माल को उड़ा देने की तरकीब; (१०) संकलिता राशि सर्वभक्षण कला—जमाजत्था हजम कर जाना, (११) उत्पन्न

गोपन कला—उपज को छिपा रखना, (१२) नष्ट कला—माल खराब कर देने की कला, (१३) विशीर्ण कला—माल गायब कर देने की कला, (१४) क्रयमानैः भरण कला—खरीद कर खाता हूँ, यह दिखलाने की कला, (१५) योजनादिभिः क्षयकला—अनेक योजनाएँ दिखलाकर चिट्ठे में घाटा बतलाना, (१६) अंत में कागज पत्र (भूर्ज पत्र) जला देने से आमद भी समाप्त हो जाती है और बिना उसके वह चोर स्वच्छन्द हो जाता है। जिस तरह सकलंक, घटनेवाले, नए-नए रूप पाने वाले, बढ़ने वाले और रात लाने वाले चन्द्रमा की सोलह कलाएँ हैं उसी तरह कलंक भरी, माल घटाने वाली नए-नए रूप दिखाने वाली, दिन-दिन बढ़नेवाली, दोषों से भरी कायस्थ की सोलह कुटिल कलाएँ हैं।

१८ : कुटीचर कायस्थ नकाररूपी सिद्ध मंत्र से, गुरुओं की तरह, क्षणभर में रोजी मार देते हैं।

१९-२५ : एक समय धन, पशु और कपड़े हारकर चोरी के डर से भाइयों द्वारा परित्यक्त एक भारी लती जुआरी सारी दुनिया में घूमता फिरा। वह कदाचित् अपने पुण्यों से एक बार उज्जयिनी पहुँचा और वहाँ स्नान करके वन में घूमते हुए शिव का एक मंदिर देखा। उस सूने मंदिर में जाकर उसने निर्विकार भाव से सदा वर देने वाले देव महाकाल की चंदन तथा फलफूलों से पूजा की। स्तोत्र, जप, गीत, दीप तथा ध्यान से रात में बिना सोये हुए वह अपने दुःसह कष्ट के नाश के लिए वहाँ बहुत दिनों तक रहा। शायद उसकी भक्ति अथवा पहले के पुण्य से सहसा प्रसन्न होकर भवभयहारी भगवान् शिव ने उससे कहा—"पुत्र ले।" ऐसा भवभयहारी कपालमाली शिव के कहने पर माला की चोटी पर लगे एक कपाल ने बार-बार इशारे से उन्हें मना किया। कपाल के इशारे से दबाने पर शिव आधी बात कहकर जुआरी के पुण्यों की कमी से ठहर कर चुप हो गये।

२६-२७ : उस विजन वन में स्नान के लिए जाते हुए अपने दाँतों की गंगा की तरह शुभ्र छटा दिखलाते हुए शिव ने कपाल से कहा—"इस बहुत दिनों के सेवक जुआरी को वरदान देते समय कैसे तूने इशारे से मुझे रोक दिया?"

२८-३७ : भगवान् के ऐसा पूछने पर शिव के तीसरे नेत्र की गर्मी से ललाट पर चन्द्र के गलते हुए अमृत से मानो जीते हुए उसने हँसकर धीरे-धीरे कहा—"भगवन्, मुझे पता है कि आप भोलेभाले हैं। भगवान सुलभ होने पर भी अकारण ही उनकी कौन याद करता है? यह अत्यन्त दुःखी जुआरी गरीबी से अपने सब कामों से विरत होकर इस मंदिर में लेप, बलि, कुसुम और धूप से आपकी पूजा करता है। वेचारा गरीब दुःखी आदरवाला हो जाता है, अधिकार और धन नष्ट हो जाने पर वह सब के

आगे झुकता है और गिड़गिड़ाता है। निर्धन देवताओं और ब्राह्मणों की पूजा करता है। गुरुओं से झुकता है, मित्र की परवाह करता है। क्योंकि बड़े लोहे का गोला भी तप कर काम का बन जाता है। तकलीफों से दुःखी सब लोग सदाचार में विरत हो जाते हैं पर धन के घमंडियों के कर्मस्मरण की बात ही क्या करना। यह धन का इच्छुक केवल आशा रूपी फंदे से ही आपसे लटका हुआ है और आपकी पूजा करता है। धन मिल जाने पर वह फिर दिखलाई नहीं देने का। स्वार्थी सेवक धन पाकर फिर किसी काम के नहीं रह जाते। संसार में ऐसा कोई नहीं जो बिना काम के सेवकाई करे। हे देव, जुआरी का काम पूरा होते ही इस जंगल के मंदिर में फिर दूसरे फल, जल और योग से पूजा नहीं करने के। इसलिए इस पवित्र मंदिर में आप सदा इस जुआरी को रखिए। इसे वरदान देना आपकी पूजा से हाथ धोना है।"

३८ : उसकी ऐसी टेढ़ी बातें सुनकर शिव ने विस्मित होकर उससे पूछा—"तू कौन है? ठीक तरह मुझे बता।"

३९-४० : ऐसा पूछे जाने पर कपाल ने फौरन सोच कर सद्भाव से उत्तर दिया—"मगध में अपने काम से विमुख मैं एक कायस्थ कुल में पैदा हुआ। स्नान, जप, तप और तीर्थयात्रा में निरत रहकर तथा सब शास्त्रों का मर्म समझ कर गंगा में अपना शरीर छोड़ कर मैं आपके पद को प्राप्त हुआ।"

४१-४२ : उसकी बात सुनकर शिव ने कहा—"तू जरूर कायस्थ है, क्योंकि केवल कपाल मात्र बच जाने पर भी तू अपना कुटीचरपन नहीं छोड़ता।" यह कहकर अपनी मुस्कराहट की किरणों से आशा रूपी लता को पुष्पित करते हुए शिव ने उस नहाकर आये हुए जुआरी को वरदान दिया।

४३ : उस जुआरी का ऐसा हित करने के बाद शिव ने उसके देखते-देखते उस कपाल को अपने सबसे बढ़िया मुंडमाल की लड़ से निकाल बाहर किया।

४४-४५ : इस तरह स्वभाव से मलिन, लोगों के विनाश में निरत, यम की दाढ़ की तरह अपनी कुटिल कला को कायस्थ हाड़ मात्र बच जाने पर भी नहीं छोड़ता। गंदे मल की तरह हमेशा गंदगी से भरी कलाओं वाले कायस्थों के प्रमादों से कौन सुखी हो सकता है?

४६ : जो आदमी आसुरी प्रयत्न से कायस्थों की ठगहारी जान गया है वही बुद्धिमान रत्नवती पृथ्वी की रक्षा करने में समर्थ है।

महाकवि क्षेमेन्द्र रचित कलाविलास का कायस्थचरित नामक
पंचम सर्ग समाप्त

छठा सर्ग

१ : मदरूपी शत्रु सब लोगों के दिलों में वर बना कर बसता है। मद से आविष्ट शरीर न देखता है, न सुनता है, केवल स्तब्ध रह जाता है।

२ : कृतयुग में विजितात्मा पुरुषों का जो प्रशंसनीय दम होता था वही कलियुग में विपरीत स्थितियों में मद हो गया।

३ : चुप रहना, बड़बड़ाना, ऊपर देखना, बेकार इधर-उधर आँखें फेरना, बदन चुपड़ना और ऐंठना, ये मद के रूप हैं।

४ : शौर्यमद, रूपमद, शृंगारमद, कुल की उन्नति का मद, ये सब प्राणियों के विभवमद की जड़ से पैदा हुए मदरूपी वृक्ष हैं।

५ : मानो सूली पर चढ़े हुए, गठिया से अकड़े, बहुत-से भोगों में विभवमद सन्निपात ज्वर की तरह है।

६ : शौर्यमद अपनी बाँहें दिखलाता है, रूपमद दर्पण इत्यादि देखता है, काममद स्त्रियों को देखता है और विभवमद पैदायशी अंधा होता है।

७ : भीतरी सुख के रस की बेहोशी से आँखें बंद कर के ध्यानी बना, ऐसा धन-मद मनुष्यों के आत्माराम की तरह है।

८ : कुठाँव में पागलपन पैदा करने वाला, अनेक बुराइयों से भरा, सब गुणों से हीन, विचित्र और बेसहारा, इस दूसरे मूढ़ मद की जय हो।

९ : तपस्वीमद अभिमान के मारे जमीन न देख कर सदा आसमान देखता है, तथा अजीब बातों में विश्वास करने वाला भक्तिमद अपने देह की सुधबुध भूल जाता है और स्वभाव से चंचल होता है।

१० : क्रोध से लाल आँखों वाला, दूसरे की जरा-सी बात भी न सुननेवाला, अंडबंड बकनेवाला, ऐसा भयंकर श्रुतमद आदमियों के शारीरिक विकार का मूर्तस्वरूप है।

११ : हमेशा भौंहें चढ़ाकर विकराल, भयंकर क्रोध से भरा, हठी, वार करनेवाला क्रूर राक्षस अधिकारमद पुरुषों का सब कुछ खा जाता है।

१२ : अपने पुरखों के प्रताप की कथा से अपने कारनामे भूल जाने वाला कुलमद पुरुषों के दीर्घदर्शी महाज्ञान की तरह है।

१३ : सबको छूना छोड़कर, सबको अशुचिभाव से देखनेवाला, आकाश को भी मटियाने की इच्छा रखनेवाला, संकोची शौचमद है।

१४ : और सब मदों की तो सीमा होती है और वे अपनी जड़ों के नाश होने पर समाप्त हो जाते हैं, पर कुटिल, भोगी और सीमारहित एक वरमद ही ऐसा है जो हमेशा बढ़ता रहता है।

१५ : मोह से भरा जघन्य पानमद सब घृणित बातों का घर है। वह क्षणभर में ही हजारों वर्ष में पैदा किया हुआ शील हर लेता है।

१६ : ब्राह्मण, विद्वान्, बैल, हाथी, कुत्ते तथा चाण्डाल को मद्यमद समान भाव से देखनेवाला होता है। वह एक-दूसरे में भेदभाव करना नहीं जानता।

१७ : अच्छे और बुरे का भेद भुलाकर, सोने और रोड़ों को एक समान मानकर योगी की दशा प्राप्त करके भी नशे में बेहोश नरक में गिरता है।

१८ : वह जोरों से रोता है, गाता है, हँसता है, बिलखता है और अपनी सुध-बुध खो देता है। संसार का प्रतिबिम्ब नशे में बेहोश अनेक बदफैलियाँ करता है।

१९ : जार को चूमती हुई अपनी स्त्री को देखते हुए भी उसे संताप नहीं होता। क्या मतवाला गहरा रंग छान कर वीतराग हो जाता है?

२० : मतवाला अपने कपड़े दूर फेंकता है तथा असह्य आफत मोल लेता है, वह अँजुली में भर अपने मूत्र में चांद की परछाहीं पड़ने पर उसे पीता है।

२१-२२ : प्राचीन काल में महर्षि च्यवन ने अश्विनीकुमारों के प्रयोग से अपनी जवानी पाकर कृतज्ञतावश यज्ञ में स्वयं दोनों को सोमपान के लिए उसकाया। इस पर गुस्से से भरे इन्द्र ने आकर कहा—"मुनि, क्या आप नहीं जानते कि वैद्यों की पाँत में बैठाने लायक अश्विनीकुमारों का यज्ञ में शराब पिलाना कहाँ तक ठीक है।"

२३-२७ : इन्द्र के बहुत मना करने पर भी हठी च्यवन अपने अभिमान और अश्विनीकुमारों के प्रेम से अपनी बात से बाज न आये। कुपित इन्द्र द्वारा वज्र लेकर अपनी भुजा बढ़ाने पर मुनि ने उसे रोक दिया और उसे मारने के लिए घोर काल की तरह चार दाँतों वाले, एक हजार योजन लम्बे-चौड़े, कृत्या की तरह, एक भारी और भयंकर असुर की रचना की। उससे आविष्ट होने पर डरकर इन्द्र मुनि की शरण में आये और मतवाले सोम ने भी अश्विनीकुमारों से ऐसा ही करने को कहा। करुणा-सिन्धु मुनि ने भी डरे और प्रणत इन्द्र को आश्वासन देकर उस घोर मद को जूए, स्त्री, शराबखोरी और शिकार में छोड़ दिया।

२८-३३ : वही यह अभिमानी असुर है जो क्रोधी मुनि द्वारा बनाया जाकर प्राणियों के दिलों में घमंड की रस्सियों से बँध कर रहता है। श्रीमानों की चुप्पी में, नए रईसों की एकटक आँखों में, धनिकों के मुंह बनाने और भौंहें तानने में, दूत और विद्वानों की जीभों पर, विट इत्यादि के भौंहों में, खूबसूरतों के दाँतों, कपड़ों

और बालों में, वैद्यों के ओठों पर, गुणी, नियोगी और ज्योतिषियों के गले में, सिपाहियों के कंधों पर, बनियों के हृदय में, शिल्पियों के हाथों में, छात्रों के गोदने (मलपत्र) और अँगुली नचाने में, युवतियों के स्तनों पर, श्राद्धभोजियों के पेट में, डाकियों (लेखहार) की जाँघों में, हाथियों के गंडस्थल में, मोरों की चोटियों में तथा हंसों की गति में—इस तरह महाग्रह मद अनेक विकारों से मज़बूत होकर सब प्राणियों के अंगों में मद होकर रहता है।

महाकवि क्षेमेन्द्र रचित कलाविलास का मद-वर्णन नामक
छठा सर्ग समाप्त

सातवाँ सर्ग

१ : संसार में दौलत मनुष्यों के क्रियाकलापों की जान है, उसे भी चिकने गले वाले गायक लूट लेते हैं।

२ : जिस तरह भौंरे कमलिनी के कोषों को सफा करके, कुमुद का स्वाद लेने के बाद थककर हाथी से नेह लगाते हैं, उसी तरह गायक रूपी भौंरे ब्रह्मा की भी दौलत साफ करके, मामूली कमलों को भोगकर फिर चाण्डाल से नेह जोड़ते हैं।

३ : बहुत बच्चों वाले, बिखरे बालों वाले, घड़े, कपड़े और गाड़ी सहित ये राजाओं को चूसने वाले पिशाच गायक इस लोक में हैं।

४ : अँधेरे में डरपोक चोर हाहाकार से डर जाता है, पर चोर गायक सामने ही हा-हा करके सब कुछ लूट लेता है।

५ : पा पा, ध ध, नि नि, ग म सा, धाधा, मामा, सामा, सा गा, धा मा का सरगम (स्वरपद पाली) बनाकर धूर्त गायक इधर-उधर फिरते हैं।

६ : अनेक तरह की मुद्राएँ बनाकर विचित्र कपड़े पहन कर, मुँह बनाकर, गायकों का चुप्पा दल हाथ में मृदंग लेकर देर तक अलापता है।

७ : आमंत्रण और जयजयकारों, पद-पद पर हुंकार और घर्घराहटों तथा खुद ही अपनी तारीफों के साथ गायक गीत गाता है।

८ : पानी में गिरी हुई सत्तू की कनियों को मछलियों द्वारा खाये जाने पर कुछ धर्मलाभ होता है, पर गायक को करोड़ों देने पर भी लेशमात्र फल नहीं होता।

९ : अपने अँधेरे कुएँ जैसे खजानों में बंद किये हुए धनिकों के धन को निकालने के लिए ब्रह्मा ने मुंह बाये गायकों के खुले मुँह की नाली बनाई है।

१० : धूर्त गायक न केवल दाँत निपोर कर हमेशा गाते ही हैं, ये धूर्त आने-जाने वालों को लूट कर हँसते भी हैं।

११ : धूर्त गायक सबेरे-सबेरे धीरज भरे तथा हार और केयूरों से सजे होते हैं पर दोपहर में जूए में हारकर वे नंगे, टूटे और निराधार हो जाते हैं।

१२ : स्तुति रूपी जाल में फँसाने वाले, बातों की तीरों वाले जाली गीतों से गायक रूपी शिकारी भोलेभाले मृगों का सब कुछ लूट लेते हैं।

१३ : बेसुरे और टूटे पद वाले गीतों से एक क्षण में लाखों कमाकर वह 'इस दोगले ने क्या दिया?' यह कहता हुआ दुःखी होकर जाता है।

१४ : साधुओं, ब्राह्मणों और बूढ़ों से वर्जित, सब तरह के दुःख देने वाली लक्ष्मी का यह शाप है कि लोग गायकों की खुराक बनें।

१५-१७ : एक समय बहुत दिनों के बाद नारद को आया हुआ देखकर इन्द्र ने उनसे पृथ्वी पर के राजाओं का हालचाल पूछा। उन्होंने कहा—"मैंने मनुष्य लोक में घूमते हुए विजयी, दान धर्म और यज्ञों में निरत राजों की इन्द्र योग्य समृद्धि देखी। वे अपने विभव से तुम्हारी तथा वरुण और कुबेर की स्पर्धा करते हैं। वे बहुत से यज्ञ करके सौ यज्ञ करने वाले तुम्हारी हँसी उड़ाते हैं।"

१८-२२ : मुनि की बातें सुनकर द्वेष भावना से इन्द्र ने क्रोधित होकर राजाओं का धन लूटने के लिए पृथ्वी पर उन पिशाचों को भेजा। सुरपति के आदेश से वह पिशाचों का झुण्ड गीतों के मंत्र लेकर राजाओं का धन लूटने के लिए पृथ्वी की ओर चल पड़ा। मायादास, डंबरदास, वज्रदास, क्षयदास, लुंठदास, खरहरदास, प्रसिद्ध-दास और बाडवदास, इन आठ भयंकर पिशाचों ने मृत्युलोक में जाकर अपने मुख खोलकर शोर मचाते हुए अत्यन्त विकट गाने की पद्धति चलाई। इन सबने चारों ओर धन की लूट मचा दी और लोगों का सब कुछ लूट लिया जिससे सब राजों का यज्ञादि कर्मों में उत्साह ढीला पड़ गया।

२३-२४ : ये सब कान के भयंकर भूत गीतों के बहाने राजाओं के कान की सुराखों में घुस कर सहसा दिल चुरा लेते हैं। इसलिए इन बदमाशों को जो अपने राज्य में नहीं घुसने देता उसी के अधीन धन से भरी पृथ्वी होती है।

२५ : नट, नर्तक, बाजीगर (चक्रधर), कुशीलव, चारण और विट, ये रईसों को खाने वाले फतिंगे घूमते रहते हैं, उनसे अपनी जायदाद बचानी चाहिए।

२६ : गायकों का एक सुर से गाने का भारी कोलाहल मानो कुठाँव में पड़ी हुई लक्ष्मी का रोना हो।

महाकवि क्षेमेन्द्र रचित कलाविलास का गायन वर्णन नामक
सातवाँ सर्ग समाप्त

आठवाँ सर्ग

१ : चोरी के हुनर के योगी, बड़े ध्यानी सुनार लक्ष्मी से भरे घर की सफाई कर देते हैं।

२ : सब धनों का सार, संपत्ति का विभूषण तथा विपत्ति में रक्षक सोने को ये पापी तेज हरने के बाद चुरा लेते हैं।

३ : हमेशा गंदे, पापी, चाण्डाल जैसे एकाएक छूकर ब्राह्मण को दूषित कर देते हैं उसी तरह हमेशा के गंदे, पापी, चाण्डाल सुनार छूते ही सोने की दमदमाहट दूषित कर देते हैं।

४ : रत्न लेने के समय उनकी कसौटी का चिकना पत्थर सोने का कस मद्धिम (मंदरुचि) देता है, पर बेचने के समय कसौटी का पत्थर कड़ा और रूखा होने से उसे लाभ होता है (अर्थात् खुरदरे पत्थर पर मद्धिम सोने की कस ठीक उतरती है),

५ : युक्तिभेद से बटखरों (तुलोपल) की पाँच कलाएं हैं यथा--चिकना बटखरा (सोप स्नेह), चिपचिपा बटखरा (स्वेध), मोम से भरा बटखरा (सिक्थकमुद्र), रेतीला बटखरा (बालुकाप्रायः) तथा गरम बटखरा (सोष्म)।

६ : घरिया की छह कलाएँ होती हैं यथा—डिब्बेनुमा दो परत वाली (द्विपुटा), खुली तरह सोना गलाने वाली (स्फोटविपाका), गले सोने को पी जाने वाली (सुवर्णरस पायिनी), ताँबे के अंश से बनी (सुताम्रकला) और सीसे और काँच के मेल से बनी (सीसमल-काँचचूर्ण ग्रहणपरा)।

७-८ : सोना तौलने की सोलह कलाएँ हैं यथा—बाँके पल्लों वाला काँटा (वक्रमुखी), छोटे-बड़े अथवा ऊँचे नीचे-पल्लों वाला काँटा (विषमपुटा), छेददार पल्लों वाला काँटा (सुबिरतला), पारा डाला हुआ पल्ला (न्यस्त पारदा), नरम पत्तर के बने पल्लों वाला काँटा (मृद्वी), बगल में कटा काँटा (पक्षकटा), गाँठ पड़ी डोरी वाला काँटा (ग्रंथिमती), मोम से भरा कांटा (सिक्थकला), अनेक रस्सियों वाला काँटा (बहुगुणा), आगे से झुका हुआ काँटा (पुरोनम्रा), हवा से डगमगाता काँटा (वायुभ्रांता), हल्का काँटा (तन्वी), भारी काँटा (गुर्वी), तेज हवा के कारण धूल भरा काँटा (परुष वा धृतचूर्णा), बराबर तौलने वाला काँटा (निर्जीवा), हमेशा एकतरफ नमने वाला काँटा (सजीवा)।

९ : फूंकने की छह कलाएँ हैं—धीमी, जोरदार, बीच में टूटती हुई, फुफकार के साथ, गिरती हुई और सी-सी के साथ।

१० : आग की छह कलाएँ हैं—छल्लेदार लपटवाली, धुंवासी, चटकती हुई, धीमी, चिनगारीदार तथा पहले से ताँबे का चूरा पड़ी हुई।

११-१२ : प्रश्न, विचित्र बातें कहना, खुजलाना, भीतर की ओर दुपट्टे का पल्ला खींचना, दिन देखना, सूर्य देखना, खूब हँसना, मक्खी हाँकना, तमाशा देखना, अपनों से खिलवाड़, पानी का बरतन तोड़ना, बार-बार बाहर जाना, ये सुनार की बारह चेष्टाएँ हैं।

१३-१८ : सुनारों की निम्नलिखित ग्यारह युक्ति कलाएँ हैं—गढ़े हुए घाट पर ओप देने के लिए खार लगाकर उपले की आग में गहना डालना (घटितस्योपरिपाक), सामान्य लोहे के पलड़े में तौलने पर भी एक पलड़े में चुम्बक रखने से पलड़ा खाली होने पर भी भरे पलड़े की तरह एकदम नीचे जाना, लाख भरने के लिए (जतु प्रतिबद्ध) पोले गहने में बराबर वजन के लिए सोने के कण डालना पर उन्हें लाख भरते (पूरण) समय सरलतापूर्वक निकाल लेना, गहने पर ओप (उज्ज्वलन) देते समय अथवा बट्टा मारते (अश्म काल) समय सोने के कणों को सरलता से गिरा देना, एक ही प्रकार के हलके सोने के गहने से विचित्राभरण को बदल देने की सफाई, गढ़ने (घटन) और भरने (पूर्णादान) में चिमटी का प्रयोग, चाशनी बनाना (माषार्पण), प्रभायोग, खोने और चोरी का बहाना, कमी को पूरा करने की माँग, और बहुत-सा सोना एक साथ गलाना। पर सबसे बड़ी कला है सब कुछ लेकर रात में चम्पत हो जाना।

१९ : इस तरह विचार करने से सुनारों की चौसठ कलाएँ हैं, पर उनकी बहुत-सी छिपी कलाएँ भी हैं जिन्हें हजार आँखोंवाला भी नहीं जानता।

२० : मेरु पर्वत बस्ती को छोड़ कर बहुत दूर बस गया; वह बदमाश सुनारों की चोरी से अवश्य डर गया होगा।

२१-२४ : प्राचीन समय में सोने की चट्टानों की सैकड़ों सेंधों से घुसकर, हजारों बड़े-बड़े छेद बनाकर चूहों ने मेरु की पूरी चोटी चाल डाली। चूहों की सारी पल्टन के पंजों द्वारा खोदने से सुस्थिर मेरु की जड़ एकाएक हिल गई। चूहों के पंजों से खुदकर मेरु और भी सुशोभित हुआ और उड़ती हुई सुवर्ण धूलि से दिशाएँ पीली पड़ गईं। बिलों से छिदे उस सोने की चोटी के जर्जर हो जाने से देवताओं को प्रलय आ जाने की शंका हुई।

२५-२७ : अगस्त्य ने अपनी दिव्य दृष्टि से सब देखकर देवताओं से कहा—"देवताओं और असुरों की लड़ाइयों में जो ब्राह्मणघाती राक्षस मारे गये, वे ही चूहे बन कर मेरु को गिराने का काम शुरू कर रहे हैं। तुम लोगों को चाहिए कि मुनियों के आश्रम नष्ट करने वाले इन्हें मार डालो।" मुनि की यह बात सुनकर धुएँ से बिलें भरकर शाप से पहले से ही जले चूहों को देवताओं ने जला डाला।

२८ : इसके बाद उन चूहों ने इस पृथ्वी पर सुनारों के रूप में फिर से जन्म-ग्रहण किया। वे पूर्वजन्म के अभ्यास से रात-दिन सोने का चूरा खोदते रहते हैं।

२९ : राजाओं के लिए चोर-डाकुओं का निकालना असंभव है, केवल सुवर्णकार के निकालने से ही सब मामला तय हो जायगा।

महाकवि श्री क्षेमेन्द्र रचित कलाविलास का सुवर्णकारोत्पत्ति नामक
आठवाँ सर्ग समाप्त

नवाँ सर्ग

१ : समुद्र की मेखला बनाये इस सारी पृथ्वी में ठगों की बड़ी माया है जो बेवकूफों को, जैसे मछुए मछलियों को जाल में फँसाते हैं, फँसाती हैं।

२ : प्राण ही सब कुछ है जिसके लिए यह यत्न किया जाता है; वैद्यों के हाथ में भी जो हों उन्हें भी वैद्यों को जानना चाहिए।

३-४ : शरीर दाह से संतप्त ये दुःसह और लालची वैद्य, भयंकर प्यास लाने वाले गरमी के दिनों की तरह (लोगों को) सोखते हैं। अपनी विद्या की जिज्ञासा के लिए तरह-तरह की औषधियों और योगों के परिवर्तन से हजारों आदमियों के मारने के बाद वैद्य सिद्ध कहलाता है।

५-६ : राशिचक्र फैलाकर मुँह बनाकर ग्रहचिन्ता की नकल करते हुए ज्योतिषी बहुत देर बाद प्रश्नकर्ता का जवाब देता है। ज्योतिषी आकाश में चन्द्र के साथ विशाखा का योग गिनता है, पर बहुत-से यारों के साथ मौज उड़ाती हुई अपनी घरनी को नहीं जानता।

७-१० : सोना चाहने वाला कीमियागर (वर्णिका निपुणः) पहले अपना सारा जमा-जत्था फूँककर बाद में मनचले रसिकों को चौपट करता है। "मुझे शतबेधी सिद्ध है, मैंने सहस्रबेधी रस भी निकाला है"—नंगा, गंदा और रूखा कीमियागर ऐसा कहता है। ताँबे के घड़े की तरह सिरवाला, बुढ़ापे से जर्जर धूर्त रसायनी पुनः बाल उगाने की बात से गंजों को ठगता है। तारक और शंबर को साधनेवाला, रमणियों में आशा लगाये हुए वह कामी बेल इत्यादि से होम करके अंधा हो जाता है।

११-१३ : "आकाश में उड़ने की मुद्राएँ (खेचरी) सुखसाध्य हैं, प्रयत्न करने पर आकाशकुसुम भी पाया जा सकता है। प्रयोगों में चतुरों का कहना है कि मच्छरों की हड्डियों में बहुत-सी सिद्धियाँ बसती हैं। काले घोड़े की लीद की बत्ती से लोग आकाश में इन्द्र के महल देखते हैं तथा मेढक की चर्बी मलने से आदमी अप्सराओं

का प्यारा बन जाता है।" ऐसा कहकर लोगों को भरोसा दिलाते हुए धूर्तों का दल चारों ओर घूमता रहता है। ये धूर्त सिद्धियाँ पाने के लालची सैकड़ों आदमियों को गढ़े में ढकेल देते हैं।

१४ : वशीकरण जाननेवाला योगी रास्ते-रास्ते स्त्रियों की सहायता करता हैं पर वह रति कामशास्त्र का मूल है, इस मूलमंत्र को भी नहीं जानता।

१५ : बहुत-से राह चलते लंठ गुरु थोड़ा-सा चमत्कार दिखलाकर, शिकारी की तरह, बेवकूफों की स्त्रियाँ और दौलत लूटते हैं।

१६ : "हाथ में धन की रेखाएँ हैं", "उसका पति बहक गया है", यह कहकर वह (सड़क का गुरु) भले घर की औरतों का कमल के समान कोमल हाथ मलता है।

१७ : कन्या के बँधे अँगूठे पर पानी की बूँद में वह लोगों का भ्रम देखता है, पर वह चोर इन्द्रजाल के मोह का भेद नहीं पाता।

१८ : मंत्ररहित मामूली धूप से आवेश में (चेटावेश) आकर आदमियों की जूतियाँ खाकर वह बकने-झकने वाला धूर्त खाता पीता है।

१९ : "नागार्जुन लिखित कक्षापुट को धूप देना चाहिए," इस तरह मोह से लूटने के लिए धूर्त दूसरे का धन आग में झोंकता है।

२० : नकली धूप देने वाले यक्षीपुत्र चोर होते हैं, उनका प्रत्यक्ष फल होता है दरिद्रता और राजभंग।

२१ : "धनी बनिया जो अपनी बेटी को बेटे की तरह मानता है, वह मेरे बस में है।" ऐसी बकवास उड़ाकर धूर्त कन्या का धन लूटते हैं।

२२ : इशारे से बातें करनेवाला, मर्मज्ञ हृदय चोर चिन्तनीय है। दूसरे के बात करने पर भी वह झूठमूठ बहरा अथवा गूँगा बन जाता है।

२३ : भस्म रमाए हुए वेश्याएँ, बूढ़ी बौद्ध-भिक्षुणियाँ, अपने इष्ट देवताओं की पूजा करने वाली गणकों की स्त्रियाँ, ये सब भले घर की स्त्रियों का धन और शील चुरा लेती हैं।

२४ : "जवान और मालदार विधवा तुम्हारे जैसे गबरू जवान को चाहती है", धूर्त बेवकूफ से ऐसा कहकर उसका सब हड़प जाता है।

२५ : रोजही पर काम करने वाले जो धूर्त कारीगर काम न करने का मजा लेते हैं वे समय चुराने वाले कहे जाते हैं।

२६ : तरह-तरह के पासा फेंकने की तरकीबों और गिनने और हाथ की सफाइयों से चतुर, प्रसिद्ध और धूर्त जुआरी विदेशों में अपना करतब दिखलाते हैं।

२७ : केवल खाने जितना ही पैदा होने पर शराबखोरी, रंडीबाजी और जुए में खूब खरचनेवाला रिश्तेदार या घर का नौकर घर का चोर कहलाता है।

२८ : झूठ को अपना शास्त्र बना कर—'किसने अपनी आँखों से स्वर्ग देखा' ऐसा कहने वाला, निरंकुश, मतवाला चण्डाल शंकनीय है।

२९ : जो गहरे लाभ के लिए, अत्यंत फायदे के लालचियों का ऋण धन लूटते हैं, वे काइयां लाभ-चोर कहे जाते हैं

३० : अधिकरण (अदालत) रूपी महासमुद्र में सब कुछ हड़पने वाले बडवानल की तरह लोगों का धन और तबीयत चुराने वाले जो भट्ट (वकील) हैं उन्हें न्याय-चोर कहते हैं।

३१ : धनरूपी कमल के भौंरे, विपत्ति रूपी आँधी से विमुख, ऐसे लक्ष्मीरूपी लता से आकर्षित मित्र सुख के चोर कहे जाते हैं।

३२ : जो अनोखी, इधर-उधर की अथवा कयास के बाहर बात करता है, वह खुश करने वाला बकवादी कान का चोर है।

३३ : जो चालाक दोषियों में खुशामदभरी तारीफों से श्रद्धा पैदा करके नए कुलाबे बाँधते हैं, वे दुराचारी अवसर के चोर हैं।

३४. अपनी तारीफ फैलाने वाले परम धूर्त दूसरे के गुण बड़े यत्न से छिपाकर दूसरों के दिलों में प्रभाव पैदा करते हैं, वे गुण के चोर होते हैं।

३५ : प्रेम किये जाने पर जो धूर्त डाह से ऐंडी-बैंडी बदमाशियों द्वारा दूसरे का प्रेम नष्ट कर देते हैं, वे धूर्त स्वभाव के चोर कहे जाते हैं।

३६ : शम, दम और भक्ति से विलग, कठिन तपस्या में फँसा जो अपने ज्ञान से साधुओं का अनादर करता है वह कीर्ति का चोर है।

३७ : देसावर में मिलने वाले मौज-मजों के सुंदर वर्णनों से जो बेवकूफों को विदेश ले जाते हैं वे देश के चोर कहे जाते हैं।

३८ : कहकहों, चंटबाजियों और हँसी-मजाक में जो सारा दिन बिता देता है, वह स्वाभाविक कामचोर है।

३९ : अपना सारा मालमता खा-पीकर बाद में दूसरे का माल हड़पने में चतुर तथा दिन-रात वेश्या और चकले की महिमा गाने वाले विट शोचनीय हैं।

४० : जो मारे पवित्रता के धन नहीं छूता पर उस पर पहले से ही दखल जमा बैठता है, ऐसा बेलौस नियमरूपी जल का मगरमच्छ नियोगी छोड़ने लायक है।

४१ : पापी फेरी वाले (रथ्यावणिज्) घर-घर जाकर सौदा बेंचते हैं जो सब हाथ में आते ही काँच का टुकड़ा हो जाता है।

४२ : जो वैदिक हैं वे गढ़े में गिरने पर भी लोगों की तारीफ करते हैं, सब कुछ लूटने वाले मिठबोले जहर की तरह धीरे-धीरे पैवस्त हो जाते हैं।

४३ : "तुम्हरा राजा गुणग्राहक है" ऐसा एकान्त में राजसेवकों के कहने पर बेचारे दूसरे नौकर लुट जाते हैं।

४४-४५ : सपने में हाथ में कमल लिये हुए लक्ष्मी को मैंने तुम्हारे घर में घुसते देखा। तुम्हारे एक मास के उपवास से प्रसन्न लक्ष्मी ने आदरपूर्वक कहा—"मेरा भक्त मुझसे पाया हुआ सारा धन तुझे दे देगा।" यह कहकर घर-घर धूर्त भोलेभालों को ठगते हैं।

४६ : नगर की बढ़ती अथवा बदअमली में, यज्ञ अथवा विवाहादि के समय आदमियों की भीड़ में, दूसरे भी लूटने के लिए रिश्तेदार बन कर घुसते हैं।

४७ : परिजनों के शराब ढालते समय वह शराब नहीं पीता और रात भर जागता है। ध्यानी सेवक कुछ करने के लिए ही काम करता है।

४८ : फीके चेहरे वाला हाँफता हुआ चोर फौरन जवाब नहीं देता, और देता भी है तो उसकी जबान लड़खड़ाती है, वह केवल काँपता है।

४९ : जो अधिक सफाई चाहता है, जो अभिमान से बकता है, अपने को छिपानेवाला, शंका का घर वही पापी होना चाहिए।

५० : सामने अथवा पीठ पीछे, बुरा अथवा अच्छा कहकर अथवा न कह कर जो एक-सा बना रहता है वही आदमियों के लिए भय का स्थान है।

५१ : नकली तरीकों से भोलापन दिखलाकर, जनखे की तरह औरतों की-सी बातचीत करनेवाला जो घर में औरतों के बीच घूमता है, कामदेव रूपी वह धूर्त है।

५२ : हमेशा नीची आँखें करके धन होने पर भी गंदे दाँत और कपड़ों वाला, लिखता हुआ खजानची , खज़ाने के चूहे की तरह चिन्तनीय है।

५३ : जो टहलुआ सारा दिन घर की बातें करता हुआ शयनगृह में बना रहता है ऐसे नौकर को छोड़ देना चाहिए।

५४ : जो निन्दनीय और दंडनीय काम को हमेशा बुरा समझता है उससे बँध कर जिन्दगी भर भय का कारण धन स्थिर हो जाता है।

५५ : बेवकूफों की सब गुप्त बातें जानकर और खिलवाड़ ही में उनका भेद लेकर धूर्त उन्हें शिलापट्ट पर लिख देता है (जाहिर कर देता है)।

५६ : राजाज्ञा के विरुद्ध खोटे रुपए बनाकर, अथवा जाली कागज लिखकर धूर्त धनिकों को फँसाने के लिए उन्हें चुपके से उनके पास छोड़कर खिसक जाता है।

५७ : घर में धन का मजा चखने वाले मामूली और गरीब आदमी को शस्त्र, विष और पाश लिए हुए यमराज पकड़ लेता है।

५८ : शर्मीले, कुलीन, शुद्धशील और मर्यादा में विश्वास करने वाले को भी धूर्त गर्भवती स्त्रियों की मदद से भीरु बना देते हैं।

५९ : देखी, अनदेखी तथा कठोर और नकली बातों और मुद्राओं से धूर्त जिस स्त्री का पति बाहर चला गया हो उसे मूस लेते हैं।

६० : भीड़ में अच्छे कपड़े पहने हुए धैर्यवान धूर्त खेल-ही-खेल में सब गायब कर देते हैं। लोगों के देख लेने पर वे उसे मजाक कहते हैं, नहीं तो उनकी जेब तो गरम है ही।

६१ : परदेस में धन कमाकर डींगों से घर भरकर, घड़े में जमाजत्था समेटने वाला, लाखों की जमा लेकर धूर्त एक वर्ष में भाग खड़ा होता है।

६२ : खरे सोने के गहने और महीन कपड़े पहने धूर्त, दुश्मन से हारे राजपुत्र के बहाने, घर-घर पूजे जाते हैं।

६३ : अच्छे देसी बैल की जगह धूर्त द्वारा बेचे गए बकरे को पाकर बेवकूफ का तो नुकसान हुआ, पर गहरा लाभ होने से उसे खुशी।

६४ : बड़ों की दौलत से जो डाह करता है, उसे धन की परवाह करने वाला डर से, धन न होने पर भी जरूर कुछ देता है।

६५ : कोरे कागजों (भूर्ज) से मतलब की बात बनाकर धूर्त चारों ओर घूमता हुआ महाजनों को लूटता है।

६६ : धूर्त विदेश में बसने के मतलब से मृत रिश्तेदारों के लिए काशी और गया की यात्रा के लिए पैसे वसूल करता है।

६७ : वेश्या नींद में धोती उतारकर बेवकूफों को लूटती है पर वह भी रात में धूर्त से खोटा रुपया (कूटरूप) पाकर ठगी जाती है।

६८ : बहिरे अथवा गूँगे बनिए को भंडसाल में बंद करके धूर्त जल्दी से सोने के कीमती गहने लेकर चंपत हो जाता है।

६९ : किसी की जान-पहचान ही से, किसी को ढिठाई से, किसी को बनाकर, किसी को बहस-मुबाहसे से हरफन मौला ठग चर जाता है।

७० : झूठी शान-शौकत का धनी, पुस्तकों और बातचीत का उस्ताद, लंबी बातें करने में बहादुर तथा चपल, ऐसा चौमुहां धूर्त आगे बढ़ता है।

७१ : मनमौजी महाधूर्त घर में सब अंगों को हिलाडुला कर संकेत करना छोड़-कर बाहरी मजा लेने के लिए निकल पड़ता है।

७२ : "सौ वर्ष उम्र देने वाला आंवला खाकर मैं श्रीपर्वत से वापस लौटा हूँ", "मैं शकुन सोच रहा हूँ", धूर्त ऐसा अपने बड़ों के सामने कहता है।

७३ : इन चौसठ मायाओं के बारे में मैंने थोड़ा सा कहा है। ठगों की लाखों मायाओं को कौन जान सकता है।

महाकवि क्षेमेन्द्र कृत कलाविलास का नाना धूर्तवर्णन नामक नवम सर्ग समाप्त

दसवाँ सर्ग

१ : ठगों की इन ठगहारियों को जानना चाहिए पर स्वयं कभी उनके पीछे नहीं पड़ना चाहिए। धन के इच्छुक विद्वानों का यही वांछित धर्म है।

२ : धर्म की सबसे बड़ी कला प्राणियों पर दया, परोपकार, दान, क्षमा, ईर्ष्या का त्याग, सत्य, अलोभ और कृपा हैं।

३ : अर्थ के गुण हैं हमेशा बढ़ती, नियमों का पालन, लेन-देन संबंधी नियमों की जानकारी, अपनी जगह छोड़ना, चतुराई, शांतभाव तथा स्त्रियों में विश्वास न करना।

४ : काम के गुण हैं अच्छे कपड़े-लत्ते पहनना, नाजुकपन, सुन्दरता, अपने गुणों को बढ़ाना तथा स्त्रियों के नखरों और दिल की बातों की जानकारी।

५ : मोक्ष के गुण हैं बुद्धिमानी, शांति, लोभत्याग, संतोष, विरति, लीनता और तेजस्विता।

६ : इन चारों कलाओं से सब-की-सब या कम-से-कम दो या तीन धारण की जाती हैं। दुनिया ठगने वालों और विद्वानों की यह विधा है।

७ : ईर्ष्या का त्याग, प्रिय बोलना, धैर्य, अक्रोध, दूसरे के लिए वैराग्य, सुख की ये पाँच सिद्ध कलाएँ हैं।

८ : शील की सात मूल कलाएं हैं—सत्संग, काम को जीतना, पवित्रता, गुरु सेवा, सदाचार, भलाई ही सुनना तथा यश में प्रेम।

९-१० : प्रभाव की सत्रह कलाएँ हैं—तेज, सत्त्व, बुद्धि, व्यवसाय, नीति, इशारों की जानकारी, बहादुरी, दूसरों की सहायता, कृतज्ञता, सलाह का पालन, त्याग, अनुराग, ज्ञान, मित्र बनाना, क्रूरता का त्याग, गुरुता छोड़ना और आश्रितों के प्रति प्रेम।

११ : मान की तीन कलाएँ हैं—चुप्पी, लालच छोड़ना और किसी से कुछ न माँगना। चतुरों की यह चौसठ कलाएँ अपने बस में करनी चाहिए।

१२-१३ : ताकतवर से विरोध करने पर भाग खड़ा होना, मजबूती में दुश्मन को झुकाना अथवा उससे दुश्मनी करना, दुःखी को धर्मोपदेश और धीरज बँधाना, सुख में समभाव, ऐश्वर्य में धन बाँटना, सत्य से प्रेम, सलाह में शक होने पर अपनी अक्ल काम में लाना और निन्दनीयों से अलग रहना, यह कला की दहाई है।

१४-३८ : सचाइयों का गुरुवचन, धार्मिकताओं का गो, ब्राह्मण और देवताओं की पूजा, घोर पापियों का लोभ, सब पर तमतमाने वालों का क्रोध, सब गुणों की प्रज्ञा, ऐश्वर्यशालियों की तेजस्विता, घोर दुखियों की सेवा, सुदीर्घ काल की आशा, दौलतवालों का दान, सुखियों की निर्वैरता, बेइज्जतों की भिखमंगी, जल्दबाज साथों की दरिद्रता, पंथियों का धर्म, शुद्ध मुखवालों का सत्य, रोगों का व्यसन, घर की समृद्धि नाश का आलस्य, प्रशंसनीयों की निःस्पृहता, मीठों के प्रियवचन, मनहूसों का घमंड, सबकी हँसी के पात्रों का दंभ, पवित्रों का किसी से द्रोह न करना, व्रत और नियम पालन करने वालों की स्थिरता, अप्रियों की दुष्टता, बदमाशों का रोजी में भांजी मारना, पुण्यों का कारुण्य, मर्दानों की कृतज्ञता, मोह बुद्धिवालों की माया, नरक में गिरने के कारणों की कृतघ्नता, धनियों का कामविकार, रिश्तेदारों से लड़ाई का स्त्रीवचन, चाण्डालों की क्रूरता, कलजुगियों का मायावी, मणिद्वीपों का शास्त्र, अभिषेकों का उपदेश, तकलीफों का बुढ़ापा, मरने के समान दुःख पाने वालों का रोग, भयंकर विषों का स्नेह, फैलते कोढ़ वालों का वेश्याप्रेम, गृहस्थों की भार्या, पितरों का पुत्र, हथियारबंदों का शत्रु, घर बिगड़ने वालों का खराब लड़का, स्त्रियों की जवानी, बने-ठने लोगों का रूप, राज्यों का संतोष, चक्रवर्त्तियों का सत्संग, सूखने वालों की चिन्ता, जलने वालों का विद्वेष, अपनाइतों की मित्रता, कीमती मौज उड़ानेवालों की स्वतंत्रता, व्याधियों का कम होना, सूखे अंधे कुओं की कुटिलता, पवित्रों की पवित्रता, रत्नजटित मुकुट पहनने वालों का विनय, बुरे अमलवालों का जुआ, रेगिस्तानी पिशाचों का स्त्रियों को जीतना, जड़ाऊ कंगन पहनने वालों का त्याग, मणिकुंडल पहनने वालों का अच्छी बातें सुनना, चपलों का बदमाशों से दोस्ती, व्यर्थ कोशिश करने वालों की दुर्जन सेवा, बगीचों का मजा मिलना, अमृत बरसानेवालों का प्रियदर्शन, स्पृहणीयों का तत्त्व में प्रेम, सुबुद्धि-नाश की मूर्खसभा, फलनेवाले पेड़ों की अच्छी नस्ल, सतजुगियों का सौभाग्य, शंकितों का राजकुल, स्वभाव से कुटिलों का स्त्रीहृदय, स्तुत्यों का औचित्य, चंदन लगाने वालों का गुणराग, शोक करने वालों की कन्या, दयनीयों की बुद्धिविहीनता, खुशकिस्मतों का सौभाग्य, कीर्तिशालियों का जनप्रेम, भूतों का मद्य, हाथी पकड़ने वालों का शिकार, स्वस्थों की शांति, तीर्थसेवियों की आत्म-तुष्टि, फलहीनों की लालच, श्मशानों में रहने वालों की आचारहीनता, स्त्रियों के रक्षकों की नीति, प्रभावशालियों का इंद्रियविजय, घुलनेवालों की ईर्ष्या, कुठांव मरने-

वालों का अयश, मांगल्यों की माता, अच्छे कामों के उपदेश पाने वालों का पिता, गुँडों का मारना, तीखी तलवारों से लैस वालों का छेदना, क्रोध रोकने वालों का नमन, मंगनों का सौहार्द्र, मुस्टंडों का मान, संसारियों की कीर्ति, नीतियों की प्रभुभक्ति, सुखियों का लड़ाई में मारा जाना, कल्याणों का विनय, सब सिद्धियों का उत्साह, सब-कुछ वालों का पुण्य, प्रकाशितों का ज्ञान—इस संसार में सब लोगों की सारभूत कीर्ति है।

[उपसंहार के श्लोक संख्या ३९-४३ का अनुवाद करना लेखक ने आवश्यक नहीं समझा।]

महाकवि क्षेमेन्द्र कृत कलाविलास का सकलकला निरूपण नामक दसवाँ सर्ग समाप्त।

कलाविलास समाप्त

क्षेमेन्द्र कृत समयमातृका (अनुवाद)

⊙

पहला समय

१ : कुसुमधन्वा, विचित्र शक्तिसंपन्न उस काम को नमस्कार जो अमूर्त हवाई तीरों से तीनों जगत् को जीत लेता है।

२ : मनुष्यों को मोहने वाली इस कराला काली को भी नमस्कार, प्रलयांत में जिसके डरावने खुले मुख में सारा संसार ऐसे खो जाता है जैसे क्षुब्ध समुद्र में चंचल छोटी मछली और वे पुरातन पुरुष भी जिनकी लम्बी आयु को हम नहीं जानते।

३ : क्षेमेन्द्र ने समयमातृका की रचना वेश्याओं के लिए की, जिससे वह उनके गुप्त मंत्र-तंत्र के योग्य सिद्ध हो सके।

४ : रईसों के काम की विलास भूमि, संयोग-शृंगार के दांव-पेंचों का कारण, अंगनाओं के कुलगुरु काम के केलि का आँगन, पृथ्वी के शरीर के सौभाग्य का गहना, श्री का संकेतस्थल, ऐसे कश्मीर में प्रवरपुर* नामक सुंदर नगर मशहूर है।

५ : जब काम शिव के त्रिनेत्र की आग से डर कर तीनों लोक छोड़ कर भागा तो वह प्रवरपुर में स्त्रियों की त्रिवली-रूपी नदी के किनारे शरण पाने आया।

६ : वहाँ पर चन्द्रमा की ज्योति भी मलीन करने वाली, कंदर्प को शेखी का घर, नेत्रों के वशीकरण का अंजन, कलावती नाम की सुंदरी वेश्या रहती थी।

७ : उसके छातियों की कड़ाई, उसकी भौंहों का बाँकापन तथा उसके आँखों की कालिमा उसकी वेश्यावृत्ति की दोहाई दे रहे थे।

८ : एक दिन जब वह अपने कोठे पर बैठी थी तो उसने कामियों के सलाहकार, तथा रंडियों के गुरु एक नाई को सड़क पर देखा।

९-११ : दाढ़ी से ढंके मुख और धुंधले शीशे की तरह आँखें लिए हुए वह किनारे के मेढक खाकर मोटे-ताजे बने हुए जाड़े के बिल्ले की तरह लगता था। विटों का मजाक में बना नगाड़ा, तपे ताँबे के घड़े की तरह लपलपाता, केवल बालों की एक बची लकीर

---

*प्रवरपुर—इसकी पहचान आधुनिक श्रीनगर से की जाती है। इसके स्थापक प्रवरसेन थे। (राजतरंगिणी ३, ३३९-३४९)

वाला उसका बड़ा गंजा सिर था। कहीं ऊपर से कोई पीक न छोड़ दे, इस डर से ऊपर आंखें किए हुए उसे कलावती ने अपनी तिरछी आँखों के इशारे से बुलाया और वह ऊपर बात करने चढ़ गया।

१२ : ऊपर पहुँच कर चिन्ता से स्थिर आँखों वाली उसे देखकर उसने नकल साधकर और बिलैया दंडवत करके कहा—

१३ : "तेरा चिन्ता भरा मुख हथेली पर है, तेरी लटें बिखरी हुई हैं, तेरी आँखों का काजल गायब है, आहों से तेरे ओठ फीके पड़ गये हैं, तेरे घर में केलि का पंछी बेकार पड़ा सो रहा है, क्यों तुमने अकस्मात् प्रोषितपतिका के योग्य धज बना रखी है?

१४ : "सुश्रोणि, क्यों काम का यश गाने वाली तेरी मेखला आज नितंब पर मंगल गीत नहीं गाती? हे कृशांगि, काम की दमक के समान कपूर और चंदन से तेरा शरीर क्यों पुता नहीं है?

१५ : "क्या तू पहले के कमाए भरपूर धन से खुश नहीं? क्या तेरी आँखें आने वाली गहरी रकम पर थीं? क्या बहुत सेवा करने पर भी कोई शिकार नहीं फँसा? क्या झूठी बातें बनाकर किसी ने तुझे ठगा तो नहीं?

१६ : "अथवा लोभ से निडर होकर कोई गहरी रकम मार कर मारे शान के तूने उसे सखी को दिखलाया और उसने शहर कोतवाल (नगराधिप) के कान में यह फूंक दिया कि राजा के योग्य बेशकीमती गहने तुझे चोर ने दिये थे।

१७ : "क्या तेरी खूब माल देनेवाले रईस से यारी थी जिससे तू कहती थी, 'यह मेरा है', और जिसने यार दोस्तों के बहकावे में आकर तुझे बुत्ता दे दिया। अथवा तेरे नकियाने से गुस्से में आकर उसने अपना ब्याह कर लिया?

१८ : "भीरु, क्या कोई टुटपुँजिया ठग तुझे कभी मामूली गहने-कपड़े देकर, तुझे फँसाकर और उधारी छोड़ उसी तरह मुँह नहीं दिखाता जैसे यक्ष आने-जाने वालों से भरी बावड़ी के पास नहीं फटकता?

१९ : "रकम न मिलने से जल में तिरछी फड़फड़ाती मछली की तरह भागती हुई, किसी छलिया ने तेरे बालों पर वशीकरण चूर्ण फेंक कर तुझे वश में तो नहीं कर लिया है?

२० : "लेकिन जाहिरा धन को लालच दिखलाने वाले पर, दिल में पुरानी दुश्मनी रखने वाले से बदला लेने के लिए उसके लौटने पर, धन के पीछे दौड़ने से क्या तुझे केवल तकलीफ ही मिली?

२१ : "क्या प्रेम से अपनापा मानने वाले किसी बनिए को तूने धता बताया और वह भी एक लौंडे के लिए जिसके भाग में केवल तिनके की आग (तृणज्वलन) में

लवर फूंक कर ही बुझ जाना है। तो क्या तुझे दोहरा नुकसान हुआ, नए से तो गहने कपड़े मिलने से रहे और पुराना लम्बा पड़ा ?

२२ : "अथवा क्या और कोई दूसरा है जो तेरे बस में होकर तेरे ऊपर रकम उड़ाने को तैयार है अथवा उसे तेरी किसी प्रतिस्पर्धिनी ने जिसे तेरी सखी ने उभारा था हर लिया ?

२३ : "अथवा क्या तू दुःख के रास्ते पर चल चुकी है अथवा तेरा भरा पूरा माल लुट चुका है ? क्या तू बेहोश है, क्या तू अनमनी है अथवा सुख ने तेरा साथ छोड़ दिया है ? क्या तू ध्यान में बहरी हो गयी है अथवा तूने सुख से आँखें मूंद ली हैं ?

२४ : "भद्रे, यारों के साथ धकापेल मजे में प्रवृत्त तेरे संसार विजेता कलाकौशल का कल्याण हो। सुवदने, कामकेलि के घर, जवानी के उमंगों से भरे तेरे विलासों की जय हो जिनमें तेरे मित्र मजे लूटते हैं।"

२५ : इस तरह की हितकारी बातें पूछकर तथा धन जाने के भय के कारणों को छूने पर उसने अपने सुख-दुःख के सहायक से चिन्ता से भरकर उसासें लेते हुए कहा—

२६ : "सुन कंक, मेरी दुखदायी अपार चिन्ता का कारण जिससे मैं गरमी में मंजरी की तरह मुरझाई जाती हूँ।

२७-३१ : "मेरे मित्र, करभग्रीवा मेरी नानी थी जो बड़ी मुस्तैद थी। वह घर के खजाने की नागिन थी, पर उसे उस अधम वैद्य ने मार डाला जिसकी अचूक विद्या हमेशा मौत की सेवा में लगी रहती है, और जो रोगियों के पैसे से अकड़ता हुआ बुढ़ापे में भी जवान बना रहता है। रोगधर नामक उस वैद्य ने मुझे रसवती (पारदभस्म) दी और मेरी नानी ने लालच में आकर उसकी दो तिहाई खा ली। प्रपंच, धोखेबाजी और दुश्मनी से उसके खाते ही वह बीमार पड़ी और अंत में, जिसने संसार में सोने के सिवा कुछ नहीं देखा था, उस स्वर्णघटित औषधि के खाते ही मौत का शिकार हो गयी। अपने जीवन के अंतिम क्षणों मे भी उसे सारी जमीन सुनहली दीख पड़ने लगी और वह कहने लगी, 'उसे पकड़, उसे पकड़।'

३२-३४ : "उसकी मृत्यु के बाद मेरा घर सूना हो गया, वह बेइज्जती का अड्डा बन गया और कामुक अपनी मनमानी करने लगे। खुख व तगड़े वहाँ से बाहर नहीं जाते, धनी को वहाँ आने का मौका नहीं मिलता। जैसे बटोही सूने घर पर दखल जमा बैठते हैं उसी तरह मैं यारों से घिरी रहती हूँ। इसी से मैं इस गड़बड़ी को सहने में असमर्थ होकर विदेश जाती हूँ। कैसे मैं अनुरक्त और विरक्तों का प्रभुत्व एक साथ सह सकती हूँ।"

३५ : वृद्ध नाई ने आँसू ढालती हुई उसकी बातें सुनी और उन्हें सुनकर उसे दिलासा देते हुए साँस भर कर कहा—

३६-३७ : "तूने धन की लालच से और बेवकूफी से वैद्य रूपी दुष्ट सर्प को स्वयं अपने घर में घुसाया। वेश्याओं को जो पथ्य है उसी से उसने तेरी नानी को मारा, क्या तुझे पता नहीं कि यह वैद्य कुटनियों का काल है?

३८-३९ : "जब वह रास्ते में रोगी रूपी शिकार की तलाश में निकलता है तो विट और चेट प्रणाम करके उसकी स्तुति करते हैं : 'उस यम को जो धर्मराज, मृत्यु, अंतक, वैवस्वत, काल और सबके प्राण लेने वाला है नमस्कार।'

४०-४९ : "अब दुःख छोड़कर मन को सँभाल और अपने बचाव के लिए घर में एक नकली खाला नियुक्त कर। खून पीने और माँस नोचने की इच्छुक बाघिन की तरह जहाँ खाला नहीं रहती वहाँ गीदड़ की तरह यार अपनी बहादुरी छाँटते हैं। जहाँ-तहाँ फँसी वेश्याएँ बिना खाला के दिन-रात आधे लहमें के लिए भी चैन नहीं पातीं। वेश्या के घर खाला न होने से, जैसे सरदी में बिल्ला घर के गरम चूल्हे पर जम जाता है, वैसे ही धूर्त जम जाता है। बिना खाला के घर में घुसे, चिथड़े लपेटे विट गाथा पढ़ते हैं, गाते हैं और खर्च के लिए रुपए माँगते हैं। बिना काँटे की बगीची, बिना खाला की वेश्या और बिना मंत्री के राज्यश्री इन सबका मजा विट और चेट लूटते हैं। हे कमलाक्षि, तेरा यह समय माल पैदा करने का है, तेरे स्तनों के परिमंडल तुझे अवश्य सुख देंगे। बाले, खलों की तरह अति चपल, आलिंगन और संगम से भरे, जवानी के दिन बीत जाने पर फिर लौटने के नहीं। हे मानिनि, तू सुनहरे बगीचे के फूल खोटने के लिए किसी काँइयाँ खाला की खोज कर। हे सुभ्रु, जवानी के चढ़ाव में खालाएँ वेश्याओं के लिए फूली खेती हैं। नियोगियों (माल अफसर) की तरह वेश्याओं को भी जाड़े में गहरा माल मिलता है।

५० : "वह अनेक अंकों वाली तराजू की तरह है जो समय-समय पर सबका माल तौलती है; तराजू का जल्दी से पलड़ा मारने से कम होकर मेरु पर्वत भी घट जाता है।

५१ : "वह वही स्त्री है जो चन्दन लता की तरह लिपटी रहती है, उच्छृंखलों को जो नियम देती है, भोगियों (सर्प अथवा यार) की जो मंत्र मुद्रा (कीलक मंत्र) है जिसको सारा विश्व हस्तामलक है उसके जीवन की कहानी सुन।

५२ : "उसका केवल हालचाल सुनने से अक्ल में तेजी आती है और उसके खुद उपदेश देने पर तो त्रिलोक मुट्ठी में आ जाता है।"

श्री व्यासदास क्षेमेन्द्र कृत समयमातृका का चिन्ता परिप्रश्न नामक
प्रथम समय समाप्त

दूसरा समय

१ : ठीक तरह से कलावती के ध्यान देने पर कंक ने कपटी कुटनी की कहानी कही।

२ : सब हजम कर लेनेवाली इस संसार की भैरवी को नमस्कार करके उसी की तरह मैं उसका जीवन कहता हूँ जिसके पेट में तीनों त्रिलोक हैं।

३-४ : पुराने समय में परिहासपुर[1] में भूमिका नाम की सराय की भटियारिन (पान्थावसथ पालिका) रहती थी। उसे एक लड़की हुई जिसका नाम उसने अर्धघर्घटिका रखा।

५ : उस सुन्दरी के बड़े होने पर पर्वों पर नागरिक उसकी पूजा करते थे, पर वह चोट्टिन उनके घरों से पूजा-पात्रों की चोरी करती थी।

६ : सात वर्ष की उम्र में ही वह जवानदराज थी। उसकी माँ ने लालच में उसे बाजार (हट्टतोरण) में बेचने को रखा और उसका नाम जालवधा बतलाया।

७ : शंख की गोल मनकों की माला (शंखलतिका), तथा उभारदार चोली (सकूट कुचकंचुक) पहन कर चुम्बन और आलिंगन से उसने यारों का मन बहलाया।

८ : पूर्णिक नाम का एक बनिए का जवान बेटा वहाँ केसर खरीदने आया। वह सुन्दर था और उसका रंग सोने जैसा था।

९-१२ : सराँय (सभा) में आँखें मारकर और भौंहें चलाकर उसने उसे अपनी ओर खींचा, और अत्यन्त उत्सुकता से उसने उस चपला के साथ रात बिताना तय किया। उसने रात में उसके नशे में सो जाने पर उसके गले लगकर धीरे-धीरे सब सोने के कानों के गहने उतार लिये। अँगुलियों से छल्ले और अँगूठियाँ (बालक बालिका) खिसका दीं और 'हा मैं मारी गई' ऐसा जोर से चिल्लाई मानो उसे चोर ने पकड़ लिया हो। उससे लुटने पर सहसा बनिया जाग उठा और कपड़े से सिर ढक कर स्वजनों की लज्जा के भय से रफूचक्कर हो गया।

१३-१६ : उसके बाद वह युवती सुन्दर गहने कपड़े पहन कर शंकरपुर[2] में मह्लणा नाम से रहने लगी। रुपया पैदा करने में तत्पर कामीजन रूपी फूलों को चुनने के लिए

---

१. परिहासपुर की पहचान परस्पोर उडर से की जाती है, जिसके खण्डहर शादपुर के दक्खिन-पश्चिम वितस्ता के बाएँ किनारे पर स्थित हैं। (राजतरंगिणी, भा० २, परिशिष्ट, नोट एफ०)।

२. शंकरपुर की पहचान आधुनिक पटन से, जो बारामूला-श्रीनगर के रास्ते पर एक गाँव है, की जाती है (राजतरंगिणी, पृ० १५६)।

उसने रात-दिन कभी भी संयोग नहीं रोका। बाहर जाते, भीतर घुसते, बाहर बाट जोहते उसके घर में घूमते हुए कुत्तों की तरह यारों की गिनती नहीं की जा सकती थी। दिन में कुएँ तथा बावड़ी पर, उद्यान, रसोईदार और मालियों के घरों में तथा सखी के घर उसने यारों की खातिर की।

१७ : रात शुरू होने पर नशे से बदहोश लिपटकर सोते हुए भी यार को बच्चे की तरह पलँग पर छोड़कर वह दूसरे के पास चली जाती थी। रात बीतने पर सखी के पेट-दर्द की खबर लेने के बहाने वह अपने को बेचकर थोड़ा और पैदा करने निकल जाती थी।

१८ : बराबर ठगे गये गुस्से से भरे प्रेमियों से खोजे जाने पर भाग कर वह यारों के छिपे घरों में लुक जाती थी।

१९-२० : काम से अन्धे बने प्रासादपाल नन्दिसोम ने एक रात उसे गौरी के मंदिर में घुसाया। जब वह नींद में काठ की तरह पड़कर खुर्राटे भरने लगा तो वह देवी के गहने कपड़े लेकर चम्पत हो गयी।

२१-२२ : इसके बाद वह प्रतापपुर[1] के समरसिंह डामर[2] की रखैल (अवरुद्धिका) बनकर नागरिका नाम से रहने लगी। खूब माँस खाने से मोटाकर वह उस भीमसेन की हिडिम्बा की तरह प्यारी बन गई।

२३ : उस प्रेमी पर अपनी मालकियत कायम करके उसकी मृत्यु चाहने वाली उसने उसकी भाई-बंधुओं से लड़ाई करा दी।

२४ : अपने पिता के चरागाह में जब वह मार डाला गया तब घर में जड़ जमने से वह दूसरे पुत्र श्रीसिंह की रखैल बन बैठी।

२५-२७ : जवानी ढलने से सौतियाडाह की वजह से वशीकरण की जड़ियों से उसने उसे अपने बस में कर लिया। मछली का शोरवा, घी, दूध, प्याज, लहसुन इत्यादि

---

१. प्रतापपुर की पहचान कुहिन परगना में बारामूला-श्रीनगर के रास्ते में तापर गाँव से की जाती है। (राजतरंगिणी, ४, १०)।

२. डामर कश्मीर के राजाओं के सामंत थे। ललितादित्य डामरों के भय से अवगत थे और इसीलिए उन्होंने अपने वंशवालों को यह सलाह दी थी कि वे डामरों को धनी बनने से रोकें। अराजकता होते ही डामर प्रभावशाली बन जाते थे। कभी-कभी तो वे नकली राजा तक चुन लेते थे। कल्हण के अनुसार वे अपनी जोर-जबर्दस्ती और व्यापार से काफी धन पैदा कर लेते थे। जिलों में डामरों का काफी प्रभाव होता था। (स्टाइन, राजतरंगिणी, २, पृ० ३०४)।

खिलाकर उसने अपने प्रिय का कामोद्दीपन किया। राजा के डर से उस डामर के संकटग्रस्त हो जाने पर वह सब मालपता लेकर नगर के बाहर निकल गई।

२८-३१ : इसके बाद सफेद और बारीक कपड़े पहनकर, मुँह नीचा किये हुए वह राँड़ मृगवती नाम रखकर दूसरों के छूने की स्पर्शभूमि बन गई। वह हमेशा सुरेश्वरी[1] जाकर शतधारा[2] के तट पर तिल, बालू और दर्भ से पितृतर्पण करती थी। उस तीर्थ में उसने बड़े पैसे वाले बंधुरसार नाम के घुड़सवार (अश्वारोही) को, बगली जैसे मछली पकड़ती हैं, पकड़ लिया। मन पकड़ने में चतुर उसने सारे घर को मुट्ठी में करके उसके सब आमदनी और खर्च की मालकिन बन बैठी।

३२ : उस धनी के एक महीने बाद ही मृत्यु हो जाने पर वह उसके साथ मर जाने की नकल करके शव के पैर पकड़ कर बैठ गई।

३३-३४ : उसके भाई-बंधुओं के मना करने पर भी झूठा हठ दिखलाती हुई, धीरज भरी, स्थिर और गंभीर वाणी में उसने आर्यललना की तरह कहा—'बड़े कुल में वैधव्य, वैधव्य में लोगों का लांछन और झूठे लांछन की प्रताड़ना, ये सब आग के साथ ही जल जायँगे।'

३५ : यह कहकर अपने तीव्र संकल्प में दृढ़ चट्टान की तरह उसने फिर भी उसका धन पाने की खुशी को भलमनसाहत के दिखावे की तरह निबाहा।

३६ : उसके बाद राजा के हुक्म से उसका मालमता उसे मिला और राजपुरुषों के समझाने-बुझाने से वह नकलची सती होने से बाज आयी।

३७ : इसके बाद रति में घोड़े की तरह घुड़साल के मुंशी (दिविर) को स्वीकार करके उसने संसार में अपना नाम बदल दिया।

३८ : माल वसूल करने के लिए उसके स्नानागार (स्नानकोष्ठक) में विलास से भरी टूटी-फूटी बातें करती हुई उसनें उसका मन चुरा लिया।

३९ : वह (दिविर) भोजपत्रों का गहरा व्यवहार करके सारे दिन मालिक को लूटकर, खा-पीकर रात में कुंभकर्ण की तरह खुर्राटे भरता था, तथा सबेरे स्नान-कला के पचड़े दिखाकर पानी में पड़कर वह शराब की जलन मिटाता था।

४० : दिविर के पुत्रों के बड़े होने पर, उसकी सेवा का व्रत लिये हुए उसने सब कुछ बेंचबांच कर नगद कर लिया।

---

१. डल झील पर इश्बर गाँव। वहाँ सुरेश्वरी नाम से दुर्गा का मन्दिर है। (राजतरंगिणी० २, ४०)

२. सुरेश्वरी के चट्टान के नीचे एक सोता (राजतरंगिणी २, ५, ४५५)

४१ : घर बेचने से पुत्रों द्वारा मना किये जाने पर वह अदालत (अधिकरण) पहुँची और वकील (मठिभट्ट) का सहारा लिया।

४२ : उन बेईमान वकीलों (भट्टाः) की झूठी चालों (कूटरथादिभिः) से उसे जीत (जयपट्ट) मिली और उसको मनचाही प्रचुर सम्पत्ति मिल गयी।

४३ : अपने पुत्रों के डर से वह घर बेचकर और सब कुछ ले-देकर अजीब वेश बनाकर शाक्तमठ के आश्रय में चली गयी।

४४ : खूब खिजाब (रंगाभ्यंग) लगाकर उसने अपने सफेद बाल काले कर लिये और वहां फिर से नई नवेली रंडी बन गयी।

४५ : उसने खबर उड़ा दी कि वह किसी बनिए की बहू थी और इस प्रवाद से उसकी बिक्री और बढ़ गयी।

४६ : गप को प्यार करने वाले लोग बिना सच झूठ की परवाह किये एक-दूसरे के पीछे दौड़ते हैं।

४७ : कामियों के प्याले ढालने से उसकी जीभ, अधर और हाथ कमजोर पड़ गये थे, पर उस छिनाल ने कभी भी आशिकी का मौका नहीं छोड़ा।

४८ : चोरी का माल लेने पर, बदमाश नौकरों के भेद खोल देने पर वह बाँधकर बंदीगृह में ठूंस दी गयी।

४९ : वहां भी उसने जेलर (बंधनपाल) भुजंग के साथ मछली, पूए और मदिरा खा पीकर बेधड़क सुख भोगा।

५० : उसने अपने को छुड़ाने के लिए रतिकाल में गाढ़ालिंगन में बंधे, नशे में गड़गप्प बंधनपाल को चूमने के बहाने उसकी जीभ काट ली।

५१ : फिर जीभ काटने से बेहोश उसे चिल्लाने लायक न छोड़कर, वह अपना स्त्री वेश उसे पहराकर जैल की सांकल हटाकर भाग गयी।

५२ : इस तरह अपना बंधन छुड़ाकर रात में वह विजयेश्वर पहुँच गयी और 'मै महामात्य की लड़की अनुपमा हूँ' यह खबर फैला दी।

५३ : उसने वहाँ भोगमित्र की कृपा से ढलती हुई जवानी वाले अपने पुराने रूप को रत्नों से सजाया।

५४ : उसने यत्नपूर्वक अपने कुच उभारे, नकली बाल लगाए और उन्हें रेशमी फीतों (पाटलपट्टक) से सजाया और आंखों में सरल पर गहरा काजल लगाया। उस विद्याधरी ने आधी नाक तक चादर से अपना मुँह ढका। तब वह मुग्धों को लुभाकर यह कहलाने में समर्थ हुई, 'यह कौन नई नवेली आई है?'

५५ : कोई भी प्रथम कौतुक से उसे एक बार नंगी देखकर फिर उस रास्ते से आने का नाम तक नहीं लेता था।

५६ : शिशिर में ठंडे घर (शीतशाला), दिन में दीपक और मुरझाई हुई प्रसाद की माला की तरह वेश्या किसे अच्छी लगती है।

५७. : वह वहाँ साँझ समय ग्राहकों के अभाव में चलते हुए बटोहियों के पल्ले खींच कर थोड़े में सौदा पटाने के लिए गिड़गिड़ाती फिरती थी।

५८ : बाद में तपस्विनी शिखा नाम धरकर उसने भैरवसोम तपस्वी का साथ किया और वह अपनी भिक्षा का आधा हिस्सा उसे दे दिया करता था।

५९ : अपने शरीर की शोभा भस्म रमाकर उसने बढ़ाई, आँखों में काजल लगाया, गले में सफेद बिल्लौर की माला पहनकर घूमती हुई उसने बिना संकोच के अपनी बाहुओं और कुचों को कसे कंचुक से ढँका और इस तरह भिक्षा माँगने के समय वह मंदबुद्धियों की खलबली का कारण बन गयी।

६० : पर वहाँ अकाल पड़ने से भीख मिलना दुर्लभ हो गया और तब वह रात में तपस्वी के देवताओं का गहना लेकर गायब हो गयी।

६१ : वह बेसमझ कृत्याश्रम नामक बौद्ध बिहार में जाकर ध्यान निश्चल होकर वज्रघंटा नामक भिक्षुणी बन गयी।

६२ : उसने अपने हाथ में गुणों का व्यापक भिक्षा का पात्र ले लिया, तथा कामुक के झूठे प्रेम की तरह पुराना काषाय वस्त्र पहन लिया। भिक्षा के लिए उसने कोहड़े की तरह पके सिर को, जो एक समय विटों की टकटकियों का स्थान था, मुड़ा दिया।

६३ : वह प्रणतों की सदा मंडली की शिक्षा देती थी और घर-घर कुलस्त्रियों को दुराचार का संदेश देती थी।

६४ : वह वशीकरण प्रयोगों से वेश्याओं की, धन बढ़ाने के जादू से बनियों की, मंत्रवाद से मूर्खों की परम पूजनीया बन गई।

६५ : पर मंगल नामक किसी उपासक के दास के साथ पड़े रहने से उसे दंभ और भोग का मूर्त स्वरूप, विघ्न की तरह गर्भ टिक गया।

६६ : भिक्षान्न रुक जाने से वह अपना बड़ा पेट लिये हुए फिरने लगी और जनने के बाद ही बच्चे को छोड़कर वह फिर नगर में चली आयी।

६७ : वहाँ उस नकली बालवाली (कूटकेशी) को जब मंत्री चित्रसेन के घर पुत्र पैदा हुआ तब उसके पुण्यों से चित्रसेन की पत्नी ने उसे धाय रख लिया।

६८ : वहाँ वह अर्धक्षीरा नाम से धाय बनकर सिंहासन पर तकिया (सिंहपादवृसी) लगाकर बैठती थी तथा बच्चे को गोद में लेकर सारे घर को चट कर जाने की सोचती थी।

६९ : दूध की कमी को रोकने के लिए उसे गहरा माल खाने को मिलता था। इस प्रकार ब्रह्मा ने मंत्री के घर में उसे लक्ष्मी का कृपापात्र बना दिया।

७० : उसके गले में मूँगे की माला (कंठिका), कानों में तरकी (ताडी) के जोड़े, भुजाओं पर मोटे-मोटे भारी नकाशीदार टिकरे (वटक), तथा नितंबों पर से होकर एँड़ी तक छूता हुआ गूँथकर बिना हुआ कम्बल उसकी शोभा बढ़ाते थे। धाय का पुष्टि-कारक भोजन करके उसका पुराना शरीर फिर से नया हो गया।

७१ : उसकी लापरवाही से बच्चे को बुखार हो आया। वैद्य ने उसे उपवास करने को कहा पर वह मछली का शोरवा साफ करती रही।

७२ : 'तुझे अहितकर पानी नहीं पीना चाहिए, मांस की तो बात ही क्या करना। बच्चे की भलाई के लिए दूसरे-तीसरे दिन तुझे आँवले का रस पीना चाहिए। बच्चा बच जाने पर उत्सवों पर मजे के मौके मिलेंगे।' वैद्य के ऐसा कहने पर भी उसने सब सुनी अनसुनी कर दी।

७३ : जब उसने देखा कि बच्चे की हालत सुधरती नहीं, और क्योंकि उसका प्रेम तिनके से भी हलका था इसलिए वह निर्दयी रात में बालक की सिकरी (हेम-सूतिका) लेकर गायब हो गयी।

७४ : इसके बाद उसने सरहदी इलाके में बहुत-से बकरे और गोचर भूमि इकट्ठी करके धनवती नाम से ख्यात होकर अपने घर की स्थिति खूब अच्छी बना ली।

७५ : लेकिन वन में बिजली गिरने से पशु धन नष्ट हो गया और उसके शरीर की तरह केवल चमड़ा बच गया।

७६ : पशुपाल का गिरों रक्खा हुआ मोटा कम्बल लेकर वह अवंतिपुर चली आयी और तारा नाम से वहाँ पूए बेचने लगी।

७७ : गणेश के नैवेद्य के मांडों की टोकरी खरीद कर वह उन्हें फिर से गरम करके रास्ते में हर दिन बेचती थी।

७८ : बड़े लाभ की आशा रखे हुयी गृहस्थिनों से वह व्यापार के लिए खूब चावल लेती थी, पर वहाँ तो मूल भी गायब था ब्याज की कौन कहे।

७९ : कुशलिका नाम से वह किसी राह चलती लड़की के शरीर में घी लगाकर झूठमूठ उसके तुरत होने वाले विवाह की बात चलाकर घर-घर भीख माँगती थी।

८० : इसके बाद वह पंजिका नाम धरकर जुएखाने के सामने चुपके-चुपके नकली गोटी और पासे बेचती थी।

८१ : मुकुलिका मालिन का नाम धर कर वह देवताओं के लिए धूप, दीप और नैवेद्य बेचती थी, लेकिन एक दिन मंदिर के पुजारियों से भोग का दाम लेकर वह चंम्त हो गयी।

८२ : गवैये मेलों में हिमा नाम से लोगों के प्याऊ (वारिसत्रदात्री) का वह प्रबंध करती थी और मेले-तमाशे (रंगप्रेक्षण) में मशगूल बच्चों के कड़े इत्यादि झटक देती थी।

८३ : फिर वर्णा नाम से वह षटाष्टक और नक्षत्रों का झूठ-मूठ विचार करती हुई विवाह संबंध मिलाने लगी।

८४ : वह रम्माल (गणविज्ञानिका) भी थी और इसलिए बेवकूफों में उसकी शोहरत हो गयी। नाम निकालने का ढोंग करती हुई वह चोरों को नहीं बता सकती थी।

८५ : भावसिद्धि नाम से उसके सिर देवी आती थीं, पर वे 'भेंट दो' यही कहतीं थीं, दूसरी बात नहीं।

८६ : इसके बाद पगली बनकर नंगी होकर वह कुत्तों से भेंटती थी। इस तरह कुंभादेवी नाम से मशहूर होकर वह पूजी जाने लगी।

८७ : कुलदास मंत्री ने, जो जादूगरी (क्षिप्रोपदेश) में विश्वास रखता था, उसकी पूजा की, पर वह पूजा के चाँदी के बरतन लेकर गायब हो गयी।

८८ : वह चघड़ तक्षकयात्रा में तीन दिन तक कला नामक कलवारिन बन शराब बेचती थी।

८९ : एक दिन कटिघंट नामक एक शराब में बदहोश तपस्वी के रात में सो जाने पर उसने उसके सात घंटे टरका दिये।

९० : इसके बाद शहद के साथ गहरे धतूरे का पुट देकर राहगीरों के बेहोश हो जाने पर उनका मालमता लेकर वह रात में शूरपुर चली आयी।

९१ : लवणसरणि में उसने एक मजदूर को अपना पति बनाया। उसके सो जाने पर रात वह दूसरों के साथ बिताती थी। पर सबेरे वह अपनी मोटी कमर फेंटे से कस कर सारे दिन मौज से सिर पर बोझ ढोती थी।

९२ : बंबा नाम से घूँघट काढ़कर मोटे कम्बल से बदन ढाक कर हेमन्त में सरदी से ठिठुरती हुई वह सूखे और ऊबड़ खाबड़ महाहिमपथों को पार करके अपने को भले घर की औरत बतलाती हुई उस कातर ने (पीर पंजाल) की धार पर बने मठ में ठहरने की इच्छा दिखलाई।

९३ : इसके बाद उसने सत्यवती नाम से वृद्धा ब्रह्मवादिनी बनकर समुद्र और द्वीपों से घिरी हुई पृथ्वी की सैर की।

९४ : कहीं वह अपने को योग से परिचित बताती थी, कहीं एक मास का अपना उपवास बताती थी, कहीं अपने को तीर्थयात्री कहती थी। इस तरह झूठ से वह सबकी पूजनीया बनी रही।

९५ : ग्रहों की गति से चन्द्र और सूर्य ग्रहण बताकर मूर्खों की श्रद्धय बनकर राजमहल में उसने काफी इज्जत पायी।

९६ : 'मैं दुश्मन की सेना का स्तंभन कर सकती हूँ', राजा से यह कह कर वह सोना हजम करके लड़ाई की रात को गायब हो गयी।

९७ : केदार में तर्पण, गया श्राद्ध, गंगास्नान इत्यादि की बात करके और अपने पुण्यफल को बंधक रखके उसने सार्थों से काफी धन कमाया।

९८ : शरीर की छाया गायब करने की विद्या सिखाने के लिए मार्ग में डाकुओं ने जब उससे प्रार्थना की तो वह बरसात में पालकी पर चढ़ कर चम्पत हुई।

९९ : वह चीनानकों (एक तरह की छोटी तुम्बी) के अंडों को रुद्राक्ष बताकर और रुद्राक्ष से भी अधिक उनकी तारीफ करके चेलों को दाम पर बेच देती थी।

१०० · बिलसिद्धि में श्रद्धा रखने वालों के गहने कपड़े छीनकर उन पाताल के लालचियों को वह अन्धे कुँओं में फेंक देती थी।

१०१ : विषजांगुलिका नाम से वह 'मुझे विष बिंध गया है,' ऐसा कहकर गले में चिकने जहरमोहरे बाँधती थी।

१०२ : चुंगीघरों (शुल्कस्थान) में स्वभावतः चुंगी के अफसरों (शौल्किक) को फौरन बेहोश करने वाला फूल (मुहूर्त-मोहन पुष्प) देकर वह स्वतन्त्रता से चल देती थी।

१०३ : 'मेरी उमर हजार बरस से भी ज्यादा है, मैं कीमियागरी जानती हूँ, मेरी वाणी सिद्ध है, त्रिपुर रहस्य मेरी मुट्ठियों में है। इस प्रदेश में मैंने सब गुरुओं का गर्व चूर्ण कर दिया है।' इस तरह की बातों से वह ठाकुरों को अपने पैर चाटने वालों कुत्तों की जगह रख देती थी।

१०४ : कंबोज के सरदार संसार में फैले उसके यश के आगे सिर झुकाकर पूजा सज्जा से उसका सत्कार करते थे, तुर्क उसकी सेवा में सूखते रहते थे, चीनी उसकी परिचर्या में लीन रहते थे, त्रिगर्त वाले उसकी फिक्र से घबराते रहते थे, उसकी शुश्रूषा में गौड़ कष्ट पाते थे। उसके दंभ के आरंभ होने पर अंग और बंग काम पीड़ित (कुसुमोत्संग) होते थे।

१०५ : समुद्रों से घिरी सारी दुनिया की सैर करके तथा माया और दुष्टता से बड़ी उन्नति पाकर वह केवल अपना शरीर मात्र लेकर अपने देश लौट आयी क्योंकि शरीर जर्जर होने पर भी कौन अपना देश छोड़ता है।

१०६ : सब देशों के वेश और भाषाओं को जानने वाली, 'मैं निकाले हुए राजा

की लड़की हूँ' यह कहती हुई उस छिनाल को, दाँत से कटी नाक और ललाट में गुदने (नील तिलक) से मैंने पहचान लिया।

१०७ : वह घर में फैले हुए धन की रक्षक नागिन है, ऐसी लोभ–जननी तेरी खाला बनेगी। हे सुतनु, उसकी मदद से कामियों का माल बिना कोशिश अपने हाथ में आया हुआ समझ।

१०८ : इसलिए मैं उस कूट कुटिला के पास तेरे लिए स्वयं जाकर उस सर्वज्ञा को धन-सिद्धि के लिए मनाऊँगा। मैं क्या-क्या कहूँ, वह तो संसार को अपनी बुद्धि से जीतना जानती है, और कोई दूसरा उपाय नहीं है। यह कहकर हितू नाई चल दिया।

श्री व्यासदास क्षेमेन्द्र कृत समयमातृका का चरितोपन्यास नामक
दूसरा समय समाप्त

तीसरा समय

१-२ : जैसे ही नाई उस धन पैदा करने वाली मलिन स्वभाव वेश्याओं की खाला को लाने पर तैयार हुआ वैसे ही संकोच और क्लेश से भरकर, रागियों की बहादुरी की तरह अपनी शान-शौकत मिटने का अवसर आया देखकर वेश्याएँ ग्लानि से भर गयीं।

३-४ : धीरे-धीरे सूर्य के अस्त होने पर और आकाश में अपना रास्ता कुछ ही बाकी रहने पर लाल सूर्य बिंब एक क्षण के लिए संध्या के घर पर रुक गया। मनचली प्रेमिका संध्या से उपेक्षित होकर प्रताड़ित सूर्य ने समुद्र में अपने शरीर को डुबो दिया।

५ : अँधियारी बढ़ने के साथ-साथ वेश्याओं के प्रसाधन में अगर की धूप से निकले धुएँ से चकला (वेश) भर गया।

६ : अँधेरा यामिनी रूपी कामिनी के काले लहराते बालों की तरह था। दीपकों और चम्पे की मालाओं के साथ अँधेरा आराम करने लगा (हट गया)।

७ : आकाश में, सौतियाडाह की लड़ाई में स्वर्ग की वेश्याओं के कानों से गिरे दन्तपत्र की तरह, चन्द्रमा का आधा अंश निकल आया।

८ : दिन के डूबने पर रजनी रमणी के प्रिय, हिमकिरण चन्द्र के उगने पर लोगों में मदनोत्सव होने लगा।

९ : आकाश लक्ष्मी ने सूर्य की सम्पत्ति को भोग कर उसे केवल लोगों का स्मरण का विषय बनाकर बिना पक्षपात वाली वेश्या की तरह चन्द्रमा के साथ अपना संबंध जोड़ दिया।

१० : उसके बाद वेश्याओं के घरों के सामने की गलियों में शराब के लालची विटों ने बेकार आना-जाना शुरू कर दिया।

११ : दरवाजों पर कान लगाए असामियों की ताक में कुटनियाँ तिनके खड़कने पर भी घड़ी-घड़ी अपने सिर उठाती थीं।

१२ : दिन के यारों की भोगी हुई मालाओं और थूकी हुई पान की सीठी से भरी जमीन को झाड़-बुहार कर तथा सेज लगाकर वेश्याएँ दूसरों की बाट जोहने लगीं।

१३ : जब वे खाट बिछा रही थीं तो किंकिणी की झनकार से तथा कबूतरों की गुटकार से मानो काम की वेदना हो रही थी।

१४ : 'बयाना लेकर भी तू फिर कैसे दूसरा सौदा कर रही है। क्या पहला नहीं आया', एक दूसरी से कहती थी।

१५ : चकले में हुज्जत होने पर शठ वैदेशिकों ने कमर पर कपड़े कस लिये, तथा बाल के जूड़े बाँध लिये।

१६ : अपने और खाला के एक साथ दो बयाने ले लेने पर तीसरे के आ जाने पर वे गायब हो जाती थीं।

१७ : परिचित के न आने पर और उसके लिए नए आये को छोड़ देने पर दोनों के खो देने के शोक से कोई दुःखी होती थी।

१८ : कोई चूसकर फेंक दिये को पुनः धन मिलने पर अपनी खाला को दोष देकर उसकी खुशामद करती थी।

१९ : 'यदि तुझ प्रेम-भरे को मेरी माँ न जान सकी तो मेरा क्या बस, मैं अब जिन्दगी रखकर क्या करूँगी।'

२० : रोजमर्रा अपमान से कुपित उपकारी के प्रति सब तरीकों से वह विदग्धा अपना प्रेम जतलाती थी।

२१ : घर में नकली यारों के घुसने पर मूँहाचाटी में कुटनियाँ घंटे बजने की तरह उन पर चिल्लाती थीं।

२२ : घर में नशे में बदहोश टकहियों के भरे रहने से कोई-कोई वेश्याएँ कामुक को लेकर अपनी सहेली के घर चली जाती थीं।

२३ : कोई रास्ते में छोटी बिल्ली के बुलाने के बहाने तिरछी चितवनों से दूर ही से कामी रूपी लोथड़े को इशारा करती थी।

२४ : 'एक भीतर है, दूसरा आ गया और पहले से बयाना देने वाला तीसरा बड़ा खटपटी है। मैं क्या करूँ', ऐसा कुछ दूसरी अपनी खालाओं से पूछती हैं।

२५ : 'रात बड़ी है, कामी नौजवान है, मेरी बेटी कम उम्र है।' समय बिताने के लिए बूढ़ियों का जखीरा अपना दिमाग लड़ा रहा था।

२६ : अपनी खाटें सूनी देखकर कुछ खिसिया कर कहती थी 'हम बिना जाने-पहचाने से फीस (भाटी) नहीं लेते क्योंकि सड़क में बहुत-से म्लेच्छ गायक फिरते हैं।'

२७ : कुछ दूसरी मना करने पर भी बेइज्जत गरीब कामुक के आने पर सिर और पेट के दर्द का बहाना करके रोती थीं।

२८ : स्वेच्छा से मनमाना खर्च करने वाले बेवकूफ कामुक मित्रों की स्थिर लाभ की आशा से कुटनियाँ तारीफ के पुल बाँध देती थीं।

२९ : 'हे विभाविनी, हम अपनी निर्धनता से लज्जित हैं,' ऐसा कहकर धूर्त नौसिखुए प्रथम कामियों के धन की दसगुनी तारीफ करते हैं।

३० : 'अधिकारी के लड़के के प्रवास से मेरी बेटी अपने को बंद करके रखती है।' ऐसा कहती हुई एक कुटनी रईस गाहक को कोने में ले जाकर उससे तिगुना भाड़ा वसूल करती है।

३१ : 'मेरी बेटी के लायक यह रकम बहुत कम है, मैंने तुम्हें पहले देखा भी नहीं है', ऐसा कहते हुए भी कोई परदे की आड़ से विट को कसके पकड़ कर उसे नहीं छोड़ती।

३२ : 'आज मेरी बेटी को अमात्य पुत्र ले गये थे, आज रात लाड़ प्यार की माफी चाहिए।' ऐसा कहती हुई कोई बूढ़ी खुश प्रेमी को टरका देती है।

३३ : 'टक्क शृंगारहाट में पहुँच कर माशूका से न मिलकर जितना देना चाहिए नहीं देता, क्रूर सेनापति मौका न मिलने से फौरन ही दुश्मनी मोल लेता है, अगर कायस्थ को जवाब दिया तो मंदिर की रोजी मारी जायगी', ऐसा किसी ने घर के पैंडे (वाटीपेटक) में जाते हुए अपनी सखी से कहा।

३४ : 'सखि, वे दूसरी हैं जो अपनी ठगहारी से प्रेमी का धन खींच लेती हैं। हम क्या करें, जन्म से ही हम ठगहारी की कला नहीं जानतीं, सुभाव से टिर्री, हमेशा सबमें शक करने वाला हमारे स्वभाव में कैसे विश्वास करेगा।' प्रकाश में ऐसी बातें किसी ने अपने पर आसक्त के धन को लूटने के लिए कहा।

३५ : 'मौज-मजे में उस रँगीली ने एक क्षण की तरह सारी रात बिता दी। मुझ पापी के रात-दिन तड़पने पर भी उसने खाट पर चढ़ने से रोक दिया।' इस तरह उद्वेग से मंदबुद्धि बने हुए एक विट ने हँसते हुए दूसरे विटों से पूछे जाने पर एक बदमाश कुटनी की कड़ुई कुटिलता को गालियाँ दीं।

३६ : 'गुणीजन जो अच्छी बातों में मजा लेते हैं और इन बातों की वजह से उन्हें दिन भर दूसरी बातें सोचने का मौका ही नहीं मिलता, इन कामियों के सिवाय दूसरों का हमारे घर में प्रवेश नहीं। पर अपनी रोजी की वजह से रात में प्रेमी मुझे घेरते हैं।' इस तरह किसी ने ऊँची आवाज में बहुतों के पास जाने वाली वेश्याओं की शेखी दूर करने के लिए कहा।

३७ : 'तरलिके, गले में हार डाल; मनोहरे, कड़े की जोड़ी पकड़; लीले, हिलती हुई मेखला देख; चित्रे, चंदन में कमी न कर, रात गहरी है।' इस तरह सखियाँ अपनी चातुरी के अनुभवों से वेश्याओं को उपदेश देती थीं।

श्री व्यासदास क्षेमेन्द्र रचित समयमातृका का संध्या
समय वेश्याओं की बातचीत नामक
तीसरा समय समाप्त

चौथा समय

१-४ : उस समय वह चतुर कुटनी, धूर्तों की बातचीत में लीन नाई के साथ ऐसे आयी जैसे अँधियारे के साथ रात। वह बुड्ढी नसों से बँधी हड्डी की ठठरी थी, उस डाइन की आँतें पेट के चमड़े से सट रही थीं। वह सूखी-साखी हड्डियों से ढकी कठपूतना की तरह लगती थी। चमड़े से मढ़े उसके शरीर में बहुत-से छेद थे। मानो वह जगत् को ठगविद्या सिखाने वाले पंछी का पींजड़ा हो। सब चबा जाने के लिए उनका मुख सदा खुला रहता था। मानो वह त्रिलोकी को तौलने वाली कलियुग की तराजू है जिसमें हजार तक अंक लगे हैं।

५-१० : रईसों से समान भाव बरतने वाली, पापियों के लिए पापी, अधमों के लिए अधम उसे विधाता ने बनावटी राग (गीत, बनावटी प्रेम) के स्वरमाला की तरह बनाया था। उसके क्रूर उम्बे दाँत साफ-साफ दिखलाई देते थे। उसकी शक्ल भयंकर थी और वह प्रसव के समय, क्रूर बनी हुई चंचल कुत्ती की तरह दिखलाई देती थी। उल्लू की तरह उसका चेहरा था, कौए की तरह उसकी गर्दन थी और बिल्ली की तरह उसकी आँखें, मानो हमेशा आपस में शत्रुता करने वाले प्राणियों के भिन्न-भिन्न अंगों से उसकी बनावट हुई हो। वेश्याओं के जंगल की एकमात्र रखवारिन वह कामव्रत में कामी के शरीर का खट्वांग (नर-कपाल से बनी गदा) से कचूमर निकाल देती थी। प्रेमियों के आँसू बहवाने वाली, बदमाशी के आग से उठते हुए धुएँ की तरह उसे देखकर कलावती ने बड़ी आवभगत के साथ उठकर उसके पैर छुये और उसे अपना आसन देकर विधिपूर्वक उसकी स्तुति और पूजा की।

११-१३ : 'वेश्याओं के उपदेश के लिए ब्रह्मा, माया प्रपंच के लिए विष्णु, खाली हाथ प्रेमियों से लड़ने के लिए भैरव, तुझमें सृजन, पालन और क्षय ये तीनों विधाता के गुण हैं। माँ, हिरन की तरह आँखों वाली अंगनाएँ फूटती जवानी, मनोहरता, रूप और शोभा से काम के नित्य नए भोग सामने रखती हैं, पर वे भी बिना तेरी सीख के अपनी मनचाही बातें पूरा नहीं कर सकतीं। इसलिए अपनी बेटी समझकर, मुझ को शरण में आयी भक्त समझ कर मेरी सहायता कर। अपने को न्यौछावर करने वाले प्रेमियों के तुरन्त की मुलाकात होने पर भी उन पर बुद्धिमान दया करते हैं।'

१४ : कलावती के ऐसा कहने पर और अपने सुखी रहने का मौका जानकर मनुष्य के माँस खाने वाली डाइन कंकाली ने उससे कहा—

१५ : बेटी, तूने मेरा दिल प्यार से बस में कर लिया। गोकि तू मुझे बिना प्रसव पीड़ा के पैदा हुई और न मैंने तेरे गर्भ का भार ही उठाया, फिर भी तू मेरी लाड़ली बेटी है।

१६ : मेरे जिन्दगी भर के दोस्त कंक ने, जिसने विट द्वारा मेरी नाक कटने पर अनेक बार उसे सिया, तेरी मुझसे सिफारिश की है।

१७ : देवताओं के लायक तू मेरे उपदेश की पात्र है। अच्छी दीवार पर लिखा चित्र ही आँखों को मजा देता है।

१८ : बेटी, धन पैदा करने के लिए जो बात मैं पहले कहती हूँ वह सुन, समयांतर में रोज अभ्यास से कला का खजाना तो तुझे मिल ही जायगा।

१९ : कुल, शील, रूप तथा विद्या से नहीं केवल बुद्धि से ही जान से भी प्यारा धन मिलता है।

२० : प्रायः इस संसार में लोगों में बुद्धि नहीं पायी जाती। मैं जानती हूँ कि यह संसार भेड़ जैसे मूर्खों से भरा है।

२१ : कालोचित कर्मों को न जानने से रोगी रात-दिन परेशान रहते हैं। तीनों जगत् में देव, मनुष्य और नाग ये सब बेवकूफ हैं।

२२ : बड़े जेठे ब्रह्मा ने यह कैसी बेवकूफी का काम किया कि उसने कामिनी के पयोधरों की जवानी बिजली की चमक की तरह क्षणभंगुर बनायी।

२३ : क्या बुद्धिहीन ब्रह्मा की यही चतुराई है कि उसने कोल्हुओं में तो तेल नहीं भरा और दाँत वाले पशुओं को ऊन नहीं बख्शा?

२४ : मधुसूदन ने रत्न के लिए पर्वत से समुद्र मथ कर काफी तकलीफ उठाई। क्यों नहीं उन्होंने पहले ही सब धन लूटने के लिए कपट स्नेह से भरी कांता बनायी?

२५ : निद्रा, पृथ्वी का बोझ ढोना, श्री का सहारा, दूसरे से भीख माँगना, अत्यन्त ऊँचाई तथा गुणहीनता (त्रिगुणातीत), क्या ये सब बातें विष्णु के लायक हैं?

२६ : क्षीणचन्द्र, नंगे गण, आधा वस्त्र छीनने वाली स्त्री, धनपति कुबेर के साथ शिव का प्रेम, मैं नहीं जानती कहाँ तक ये बातें ठीक हैं।

२७ : तन में तो भस्म पोते हैं पर दिन दहाड़े गोद में है ललना, क्या शिव की यह बात ठीक है? कहते हैं अपने को निःसंग पर रमते हैं सदा गणों (समूह) में। क्या यही सत्यव्रत है? परमेश्वर होकर भी जो बंजारा (बैल लादने वाला) बना हुआ हैं यह क्या कोई नीति है! जो कुटिल कला (चलाकी और चन्द्रमा) छिपाने की है उसे क्या बुद्धिमान प्रकट करते हैं?

२८ : क्या कामिनी के प्रेमी सूर्य ने खराद की धार पर अपना शरीर नहीं छिलवा दिया? पैसा सामने आने पर कौन स्त्री अनुकूल नहीं हो जाती? धन के लिए तो अबला भी तेज-से-तेज को सह जाती है।

२९ : दुबले-पतले चन्द्र द्वारा महादेव की सेवा किये जाने पर भी उसकी क्षीणता नहीं मिटी। मानी अगर दिमाग का कमजोर हो तो उसे सम्पूर्णता कैसे मिल सकती है। अपनी बढ़ोतरी चाहने वाला यदि उसके चरणों में भरोसा न करे तो क्या करे। ऊँची स्थिति वाला सेवक अपने गुणमद से अपना काम बिगाड़ लेता है।

३० : स्त्री द्वारा शिव को हराने के लिए हाथ में धनुष-बाण लेकर काम क्यों गया? वनिता रूपी प्रत्यंचा को उसने पहले नहीं चढ़ाया। इसी से वह मूर्ख समाप्त हो गया।

३१ : उस वसंत को प्रणाम जिसके यौवन के समय रक्ताशोक रूपी कामी तो लात खाता है और भौंरों की तरह धूर्त लोग जमावड़ा करके सब रस पी जाते हैं।

३२. उसकी सारे संसार की मिलकियत है, दिव्य मुनि उसके मंत्री हैं, उसका राज्य स्वर्ग और पृथ्वी पर है, उसका मणियों का खजाना है, अमृत भरा उसका समुद्र है, मेरु का शिखर उसका दुर्ग है, देवता उसके फौज में है, विष्णु उसके मित्र हैं, पर देवताओं के राजा इन्द्र की ऐसी अक्ल है जिससे उसका सारा शरीर भगांकित हो गया।

३३ : कालकूट विष जैसे बढ़ते हुए क्रोध से भरे, तेजरहित, सब रत्नों का खजाना समुद्र द्वारा सब कुछ देने को तैयार होने पर भी ये देवता कितने मूर्ख हैं कि उन्होंने अपनी बेवकूफी से सिर्फ एक गज, अश्व, कल्पवृक्ष और थोड़ी सुरा लेकर ही प्रसन्न हो गये।

३४ : सोने का हिरन पकड़ लाने को उत्सुक राम ने, नकली पासे के खेल से युधिष्ठिर ने, ईर्ष्या भरे और ब्राह्मणों से क्रोधित जनमेजय ने मनुष्य के रास्ते में उल्लूपन का पुल बना दिया।

३५ : यत्न और परिश्रम से भी दुर्लभ अमृत को नागों ने गरुड़ को सौंप दिया। न उसे पिया, न देखा, न छिपाया, केवल उसे बेवकूफी से खो दिया। इसलिए तीनों लोक में साफ-सुथरी अक्ल का जर्रा भी किसी के पास नहीं है, सब लोग अपने पुराने जन्म के फल से ही धन लूटते हैं।

३६ : जब लोग ऐसे बेवकूफ हैं तो भोलीभाली स्त्री की क्या बात? हम तो बेवकूफों की मिहरबानी से ही जीती हैं।

३७ : आँख के सामने बुराई करने पर भी मूर्ख पतिया लेता है। वेश्याओं की शान-शौकत का कारण ही माया और प्रपंच है।

३८-४२ : पुरानी बात है। मैंने मठरक नामक ब्राह्मण के हाथ पर खिलवाड़ में पान की सीठी थूक दी। वह बेवकूफ अपमान से उसे अपनी बेइज्जती समझ कर भीड़ में उबल पड़ा और मारने-मरने को तैयार हो गया। 'अरे भले आदमी, धातु प्रकोप के कारण तुझे भ्रम हो गया। मैंने थूका नहीं। तू अपने हाथ दीवार से रगड़ कर देख ले। चमड़े की आँखों पर इतना विश्वास, मुझ सद्भाव वाली की बात का तुझे भरोसा नहीं।' यह कह कर गहरी कसमें खाकर, गले में हाथ डालकर और बातचीत करके मैंने उसे समझा दिया और वह फिर ज्यों-का-त्यों हो गया।

४३ : देव ने इस संसार में कदम-कदम पर धन रख दिया है। विट, चारण और वेश्याओं को बेवकूफों का ही तो सहारा है।

४४-५१ : मेरी जवानी में मेरे घर में शंकरवाहन नामक ब्राह्मण रात की मौज उड़ाने को घुसा। मुस्टण्डेपन से खूब कड़े और मोटे यौवन वाले उस ब्रह्मचारी को देख चिन्तापूर्वक मैंने सोचा—'यह है पट्ठा, लम्बी रात है और मैं यारों से थकी हुई हूँ। इसलिए इसे भोग से रोकने के लिए मुझे प्रयत्न करना चाहिए।' यह सोचकर बहुत देर तक कथा कहानी कहकर सेज चढ़ने का समय रात की पहली पहर बिता दी। उसके बार-बार कहने पर कि 'यह सब तो सुन चुका, दूसरी बात भी है, मुझे नींद आ रही है' कथा-कहानी खतम होने पर फिर उससे बचने के लिए पेट दर्द का बहाना करके मैं चिल्लाने लगी। वह स्वभाव से मूर्ख उस बहाने को सच मान कर मेरा दर्द मिटाने के लिए मेरा सारा बदन मलने लगा। प्रेम के साथ उसके धीरे-धीरे शरीर मलते-मलते रात एक क्षण की तरह बीत गयी।

५२-५५ : सबेरे उसको मजे से बुत्ता देने की वजह से मैंने सोचा—'इस जानवर को दर्द के बहाने से तो मैंने टरकाया पर इस बेवकूफ ने मुझे चौगुनी फीस अदा की थी जिसे वह अब जरूर वापस माँगेगा। इसलिए उससे चुहल करनी चाहिए जिससे

सुरत का कुछ जूठा ही उसे मिल जाय।' यह सोच कर रात ढलते-ढलते मैंने रति-भोग की ब्योंत बाँधी और प्रेम से उसे चूमने लगी।

५६-५७ : मेरे दर्द की तकलीफ से दुःखी, आरूढ़रतियन्त्र होने पर भी उसने मुझसे सानुरोध संगम करने की मनाही की। पर उस 'दयावान' को मना करने के लिए मैंने और भी झूठी प्रेमभरी बातों से उसे रिझाना चाहा।

५८-५९ : 'आह, तेरे अंगों का स्पर्श अमृत-सा लगता है, अभी-अभी मैंने उसका साफ-साफ लक्षण देखा है। तेरे गुप्तांग और मेरे रमणस्थल के स्पर्श से न जाने मेरा दर्द कहाँ भाग गया, मेरे पुण्य से तू यहाँ आ गया था।'

६० : मेरी यह बात सुनकर एकाएक आँखों में आँसू भरकर, रति से विमुख होकर, उसका दिल शोक से भर कर खिन्न हो गया।

६१ : हाथ से अपनी छाती और सिर पीट कर 'हाय मैं मारा गया', ऐसा चिल्लाते हुए उसने मुझसे कहा—

६२-६५ : 'मुझे पहले ऐसा पता नहीं था कि मेरे अंग के समागम से मणि, मंत्र और औषधि की तरह स्त्रियों का दर्द दूर हो जाता है। भद्रे, मुझ अभागे की प्यारी माँ बहुत दिनों के दर्द से मर गयी। अगर ऐसा होने की मुझे बात मालूम होती तो मुझ बेवकूफ की माँ का वियोग कभी न होता। हाय मैं ठगा गया,' यह कहकर वह पुरुष के आकार में बिना सींग का बैल भाग निकला।

६६ : इस संसार में शून्याशय, केवल भोजन और मैथुन के शौकीन सब काम छोड़कर केवल गलचौथ में सुख पाते हैं। ये भेंड़ की तरह बिना एक क्षण भी सोचे हुए सब कुछ लूटने वाले की गोद में निःशंक होकर अपना सिर रख देते हैं।

६७-६८ : इस तरह बेवकूफों के माल काट कर जवानी कटती है। सत्य से अलग वेश्याएँ झूठ से ही जीती हैं। वे सत्य से ही नष्ट हो जाती हैं जैसे शराब से भले घर की स्त्रियाँ।

६९ : गणिकाओं की झूठी शोभा दूसरी स्त्रियों का सत बिगाड़ने के लिए ही होती है। सत्य से वेश्या गरीब की झोपड़ी की तरह दीख पड़ती है जिसमें कोई रहना नहीं चाहता।

७० : बनिया दान से चौपट हो जाता है, वेश्या हमेशा सत्य से नष्ट हो जाती है, गुरु सीधेपन से चौपट हो जाता है और कृपा से कायस्थ।

७१ : ठगों की ठगहारी की तरह वेश्याओं की माया से लोग खुश होते हैं और कहते हैं—वाह कैसी चतुराई है।

७२ : एक समय समुद्र से घिरी हुई सारी दुनिया की यात्रा करके मैं लालच से वेश्याओं के घर पाटलिपुत्र में पहुँची।

७३ : वहाँ की चंद कुटनियाँ मुझे बेवकूफ समझकर ठठाकर हँसी जिससे लजाकर मैंने जमीन में घुस जाना चाहा।

७४ : उस बेइज्जती से दुःखी होकर मैं अभिमान छोड़कर गणेश मंदिर के आगे उपवास करके बैठ गयी।

७५-७६ : सपने में गणेश जी के गण ने मुझसे घड़ी-घड़ी पूछा कि मेरे उपवास के कितने दिन बीते थे। उनके ऐसा पूछने पर जान देने की नकल साधकर मैंने जवाब दिया कि अनशन व्रत के मेरे दो महीने बीत चुके थे।

७७-७८ : यह सुनकर मुस्कराते हुए सर्वज्ञ गण ने कहा—'वाह, व्रत और सपने में भी तू झूठ बोलने से बाज नहीं आती। भद्रे, मैं तुझ से प्रसन्न हूँ क्योंकि तू अपने झूठ से डगमगाती नहीं। अपनी महामायाविनी कला से तुझे अनेक भोगों की प्राप्ति होगी।'

७९ : गणेश के अनुचर ने इस तरह प्राचीन काल में मुझे वर दिया। असत्य से ही वेश्याओं को मालमता मिलता है।

८० : संसार में धन ही लोगों का प्राण है, विशेषकर लोगों के जीतने पर तत्पर राजाओं और मृगाक्षी वेश्याओं का।

८१ : धन से बुद्धि मिलती है, बुद्धि से धन मिलता है। इस जीव-लोक में बुद्धि और धन एक-दूसरे के सहायक हैं।

८२-८३ : इस संसार में जिसके पास धन है वही जगत्वंद्य शिव, वाग्मी ब्रह्मा और पुरुषोत्तम विष्णु है। जिसके पास धन नहीं है वही हृदयहीन राहु, सनीचर और टेढ़ा मंगल है।

८४-८५ : सुजात धनिक का विकार भी नशे के विकार की तरह लोगों को मजा देता है। छायेदार चंदन के वृक्ष की तरह धनिक मनोहारी माना जाता है और लोग बिना फल के भी उसका साथ करना चाहते हैं।

८६ : धनी की तलवार भी दया की द्योतक है, पर गरीब के अपने बाल भी रूखे स्नेहरहित होने से और मलिन हो जाते हैं।

८७ : कवि, पण्डित, शूर और कलावंत, ये धनवान् का सहारा लेकर ही बढ़ते हैं जैसे आकाश में शुक्र और बुध वृहस्पति के उच्च होने पर।

८८ : निर्धन द्विज अपने गुणों को मांस की तरह बेंच कर बेजान होकर गिर जाता है, फिर गिरे हुए की कौन पूजा करता है?

८९ : गुणियों के गुण चित्त की विकलता से बेवकूफों की खुशामद करते-करते विधवाओं के स्तनों की तरह दिल ही में मसोसते रहते हैं।

९० : धन के कारण मनुष्य विद्वानों से घिर कर गुणी बन बैठता है। घराने-दार सिपाहियों से घिर कर वह सिपाही, और उच्च कुल के रिश्ते से वह कुलीन बन बैठता है। इसलिए गुण धन के सहारे ही रहते हैं, धन दूसरों के सहारे नहीं। इसलिए घड़ी-घड़ी हम एकचित्त 'हाय पैसा, हाय पैसा' की प्रार्थना करते हैं।

९१ : बिना कुँभलाई मालाएँ और आभरण पहनने वालों, वारांगना के आनंद-गृहों, हमेशा प्रकाश और उत्सवों से भरे स्वर्ग और धन में कौन बड़ा है?

९२ : सब दोषों के हट जाने और मित्रों के आने और उमंग भरे रागरंग को देनेवाला धन मनुष्यों को खुश रखता है जैसे रात्रि के जाने और सूर्य के आने से कमल।

९३ : धन से आदमी कुलीन, गुणी, परिजनों का पालक, मानी, साखवाला बनता है तथा जानवर भी भलेमानसों से साधु की पदवी पा जाता है, और बहुत क्या कहूँ धन से व्रत, तीर्थ और घूमने की तकलीफें उठाये बिना ब्रह्महत्या आदि भयंकर पाप करने वाले भी तर जाते हैं।

९४ : एक समय वाराणसी में मैंने एक नामी-गिरामी गृहस्थ की बात सुनी। उसे सुन—

९५ : वहाँ पृथ्वी पर कुबेर की तरह धनवान् श्रीधर नामक ब्राह्मण हुआ जो समुद्र की तरह रत्नों से भरा था।

९६-९७ : गरीबों के लिए कल्पवृक्ष की तरह उसके घर में सदा अर्थियों के लिए राजाओं के खाने के योग्य भोजन से भरा अन्नसत्र चलता रहता था। उसके द्वारा हर रोज हजार ब्राह्मणों को भोजन कराने से लोक में युधिष्ठिर की कथा फीकी पड़ गयी।

९८ : एक समय उस आचार के खजाने के घर नियतात्मा, दिव्य बुद्धिवाला ज्ञानात्मा नामक एक यति आया।

९९ : उस पूज्य की पूजा करके उसने उसे निमंत्रित किया और उसने पाक-शाला में जाकर वहाँ सैकड़ों तरह के खाने के सामान की ढेरियाँ देखीं।

१००-१०२ : वहाँ उसने उन व्यंजनों की ढेरियों पर सफेद यज्ञोपवीत पहने एक शव पड़ा हुआ देखा। उसके अंगों से खून की छोटी-छोटी बूँदें झर रही थीं जो सबके अनदेखे अन्न को सींच रही थीं। उस वीभत्स दृश्य को देखकर घृणा से भरकर कान पकड़कर वह जल्दी से बिना किसी के देखे चल दिया।

१०३-१०४ : एक वर्ष बीत जाने पर वह कौतुक से फिर वापस आया और उस शव को बिना मांस का केवल स्नायुओं से बँधा देखा। उसकी हजारों शिराओं से चिक-नाई निकलती हुई और भोजन पर बहती हुई देखकर घृणा से उसने अपनी आँखें बंद कर लीं।

१०५-१०७ : एक वर्ष बाद फिर से वापस आकर उसने ठठरी मात्र बचे उस शव से, जिसमें केवल चर्बी के एक-दो कण बच गये थे, ढके व्यंजनों को देखा। कौतुक के बस वह फिर एक बरस बाद आया और अन्न के ऊपर बचे हुए कपाल की धूल देखी। छह महीने के बाद फिर लौटने पर उसने रसोई बिना शव के शुद्ध और रमणीय देखकर पुरोहित से कहा—

१०८ : 'अरे इस गृहपति का पातक महाभोज में करोड़ों याचकों द्वारा चाट लिये जाने पर थोड़े ही समय में समाप्त हो गया।

१०९-११० : 'पूर्व पुरुषों द्वारा उपार्जित सैकड़ों ब्रह्महत्याएँ घर में बैठी हुई थीं, वे इसके दान से समाप्त हो गयीं। जिन्होंने उसके घर में खाया उन्होंने उस पाप को हर लिया। आदमी का पाप उसका अन्न खाने वालों के पास चला जाता है।

१११ : 'जो ब्रह्महत्या शिव को भी भयप्रद हुई वह धन से छीज गयी, वाह रे धन, वाह रे धन।'

११२-११३ : यह कह कर पुरोहित से वंदित ज्ञानलोचन शिलापट्ट पर आदर से यह श्लोक लिख कर चला गया। विद्वानों और अद्भुतवादियों द्वारा पढ़े जाते हुए उस श्लोकार्थ को गौरवपूर्वक मैंने स्वयं सुना—

११४ : 'वह संचित पाप को हटाता है, दुःसह शाप को दूर करता है, कलंकों को हटा कर कल्याणों को बढ़ाता है, धन आदमियों के लिए पवित्र तीर्थ और भारी तप है, सुकृतियों के खजाने, श्रद्धा के घर, धन को मेरा नमस्कार।'

११५ : मैंने सटीक और अर्थ-स्तुतिमय उस श्लोक को सुनकर इसे सब तंत्रों के सार की तरह देश-देश में फैलाया।

११६-११७ : बेटी, फौरन धन पैदा कर। शरीर ढलने पर जवानी सहायता नहीं देती। तन्तुवल्ली वसंत की शोभा की तरह है और मुखचन्द्र की शोभा शरद की रात्रि की तरह है, कुचों का उद्गम बरसात की तरह है और जवानी की शोभा बिजली की कौंध की तरह है।

११८ : नजारे चलाने वाली, तरल जवानी में स्त्रियों के पीन स्तनों का भोग दो-तीन दिनों का जलसा है।

११९ : यह जलसा बाँकी भौंहों वाली के मुख-कमल पर मँडराते भौंरे की तरह है, कुच के बीच घूमने वाला वह हिरन है तथा पृथु नितम्बों के बीच नाचने वाला मोर है, सुन्दर कान्ति से भरी त्रिवली रूपी नदी के किनारे यौवनमद से भरा राजहंस हमेशा नहीं घूमता।

१२० : सुख रूपी अलान तुड़ाकर जवानी रूपी हाथी के भागने के लिए तैयार

होने पर, कामियों के भाग जाने पर स्त्रियों के कुच प्रताड़न के भय से गिरने लगते हैं।

१२१ : पीन पयोधर युवतीरूपी बरसाती नदी की तरह हैं, कामी मतवाले मोर की तरह हैं।

१२२ : फूलों से भरी क्रीड़ावल्ली की तरह, सूर्य की ललाई की तरह, दर्प के बगीचे की तरह, कातिक में चन्द्र की चाँदनी की तरह, बेवकूफ के धन की तरह, कामियों के मित्र यौवन के चले जाने पर वेश्याओं की श्री एकाएक दुर्दशाग्रस्त होती है।

१२३ : पर केवल जवानी से ही ललनाएँ धन नहीं पातीं। वन में बूढ़ी हथिनी और जवान हरिणी दोनों ही स्पृहणीय हैं।

१२४ : कान्ते, मैं बड़ी ही सुन्दरी हूँ, यह मद तू छोड़। वन में बेचारे मोर सूखते रहते हैं और कौए बलि खाते रहते हैं।

१२५-१२६ : तेरी भौंहें काम के धनुष प्रत्यंचा की शोभा हरती हैं, तेरा मुख चन्द्र को फीका करता है, तेरे होंठ बिम्बाफल की शोभा चुरा लेते हैं, तेरा रूप तो नेत्र की औषधि हैं। हे सुश्रोणि, तू और भी है, फिर भी बिना शिक्षा के मतवाले हाथी की तरह धन प्राप्त नहीं कर सकती।

१२७ : तेरी यह जवानी रूपी पेड़ की विस्मयकारिणी छाया है जो कामियों में काम की गरमी पैदा करती है।

१२८ : प्रेमरूपी समुद्र से पैदा मूँगे के पेड़ के पल्लवों की तरह अधरों से सजा तेरा सुन्दर मुख नाचती भौंहों से और सुन्दर बना हुआ है।

१२९ : चन्दन का तिलक लगाये, कालागुरु, कुटिल पल्लवों के आभरण तथा भ्रूलतिका से शोभित तेरा मुख चन्दन और तिलक वृक्षों वाले, कालागुरु के कुटिल पल्लवों से सज्जित नंदनवन की तरह है।

१३० : सुन्दरि, अभी स्तन भार उठाने के परिश्रम से थकी हुई और लड़कपन के विछोह से दुःखी तेरी कमर और पतली पड़ गयी है।

१३१ : फिर भी सुन्दरि रूप से बिना उपाय किये हुए आप-ही-आप धन नहीं आ जाता, उसके लिए कोशिश जरूरी है।

१३२. गुणवती और ललित सुकवि की सूक्ति जैसे अर्थहीन होने पर अच्छी नहीं लगती वैसे ही वेश्या भी; किन्तु वही अर्थवती होने पर लोगों को भाती है।

१३३ : हे सुभ्रु, चाहनेवालों के लिए सुरा की तरह, धनी और गुणियों के लिए लक्ष्मी की तरह, रईसों के लिए अमृत की तरह, निर्धन के लिए विष की तरह, नितांत

कुटिला वेश्या सद्भाववालों के लिए शंख की तरह है। क्षीर सागर की लहर की तरह वह देवताओं को भी मोह लेती है।

१३४ : उसके वचनामृत से कानों को तृप्त करके कलावती ने कहा—'माँ मुझे किस तरह अधिक धन पैदा हो ऐसी बात कह।' उसने कहा—

श्री व्यासदास क्षेमेन्द्र विरचित समयमातृका का पूजाघरोपन्यास नामक चतुर्थ समय समाप्त।

पंचम समय

१ : काम से मतवाले कामियों को हाथियों की तरह बाँधने के लिए बुड्ढी ने कलावती से वेश्याओं की शिक्षा कही।

२ : बेटी सुन, मैं मातृप्रेम से सब काल के लिए विचित्र उपायों से अपने काम बनाने की बातें कहती हूँ।

३ : पहले यत्नपूर्वक कामियों की भाव परीक्षा करनी चाहिए। फिर उनके राग के विभागों को जानकर उन्हें छोड़ना चाहिए अथवा रखना चाहिए।

४-६ : रंगों का आश्रित आठ राग हैं यथा कुसुंभी राग (कुसुंभराग), सिंदूरिया राग (सिन्दूर राग), केसरिया राग (कुंकुम राग), लाखी (लाक्षाराग), मांजिष्ठ (मजीठी) राग, काषाय (गेरुआ) राग, हारिद्र राग (हलदिया) तथा नीलराग।

धातुओं पर आश्रित आठ राग हैं यथा सोनहरा राग (सुवर्ण), तमैला (ताम्र), कसैला, (रीति), सीसे का (सीसक), लोहिया (लौह), मणि, काँच और पथरिया (शैल)।

७-९ : आठ आकाशी राग हैं यथा सांध्यराग, चान्द्र, इन्द्रधनुष, वैद्युत, आंगार, केतु, रवि और राहु।

आठ इन्द्रिय संज्ञक राग हैं—श्रोत्र, अक्षि, रसना, त्वक्, घ्राण, मानस, बुद्धि, अहंकार।

१०-१२ : आठ पशुराग हैं यथा वृष, अश्व, गिरगिट, खर, मेष, कुत्ता, बिल्ली और हाथी।

पक्षिजाति के आठ राग हैं यथा, शुक, हंस, कबूतर, मयूर, गौरैया, मुर्गी, कोकिल तथा जीवंजीव (चकोर)।

१३-१५ : आठ अंग से जाने गये आठ राग हैं यथा केश, अस्थि, नख, पाणि, दंत, पाद, तिलक और कर्णपूर।

आठ महाराग हैं यथा छाया, भूत, अपस्मार, ग्रह, गंधर्व, यक्ष, क्षोभ और पिशाच।

१६-१८ : मिले-जुले सोलह राग हैं यथा, कौसुम, कुंभ, नारंग, दाड़िम, मद्य, कुष्ठ, चिन्ता, भ्रामर, पतंग, वृश्चिक, ज्वर, भ्रम, स्मृतिजन्मा, रतिग्रह और रुधिर।

क्रम से इन सबके मैं संक्षेप में लक्षण कहती हूं :

१९ : कुसुंभी राग रक्षा करने से स्थायी होता है पर उपेक्षा करने से क्षण भर में नष्ट हो जाता है। सिंदूर राग स्वभाव से रूखा होता है पर स्नेह (तेल) से उसे धारण किया जा सकता है।

२० : कुंकुम (केसरिया) राग हलका होने से अच्छा लगता है पर गाढ़ा होने से खराब, लाक्षा राग गरम होने पर कस कर पकड़ता है पर ठंडा होने पर वह बिलकुल नहीं पकड़ता।

२१-२२ : मांजिष्ठ राग गरम और ठंडा दोनों ही एक सा टिकाऊ होता है, रुखाई गेरुआ (काषाय) राग को बहुत दिनों तक स्थिर रखती हैं पर स्नेह (तेल) के लगने से वह नष्ट हो जाता है। अच्छी तरह से रक्षा करने पर भी हरिद्रा राग फीका पड़ जाता है, नील राग अंत तक बना रहता है, ठोकने-पीटने पर भी वह निश्चल रहता है।

२३ : सुवर्ण राग घिसने, काटने और तपाने पर भी हमेशा चमकदार बना रहता है, पर ताम्र राग केवल माँजने से चमकता है दूसरी तरह नहीं।

२४ : रीति (कांसा) राग स्नेह (तेल) से भी मैला हो जाता है तथा सीसक राग आदि मध्य और अंत तीनों ही में गँदला बना रहता है।

२५ : लोह राग तीखेपन से झुकता नहीं, मणि राग स्वभाव से ही अकपट साफ और टिकाऊ होता है।

२६ : काँच राग स्वभाव से ही टूटने वाला और छल ढूंढने वाला होता है। शैल-राग भारी और गाढ़ा होता है और हृदयहीनता के कारण नीरस होता है।

२७ सांध्य राग चल और अचल दोनों साथ ही है, इसमें एक दोष है कि वह दशा के साथ बनता-बिगड़ता है। बढ़ने-घटने वाला चन्द्र राग प्रशांत और दुःख में ठंडक देने वाला होता है।

२८-२९ : इन्द्रधनुष राग रंग-बिरंगा है तथा ठगहारी से भरा है। विद्युत राग देखते ही पैदा होता है और वैसे ही समाप्त हो जाता है। अंगार (मंगल) राग स्त्रियों की अवज्ञा करने से धकधका कर जल उठता है तथा केतु राग बंधन अथवा मृत्यु जैसा अनर्थकारी होता है।

३० : अर्क (सूर्य) राग अपनी तेजी से और हमेशा अपने उदय से तकलीफ देता है, तथा महाग्रह राहु राग बदमाश और मित्र (सूर्य) का क्षय चाहने वाला होता है।

३१ : श्रौत्र (कान) राग कनरसिया होने से दूसरे के गुण सुनने को तैयार रहता है और अक्षि राग केवल रूपमात्र से ही छक जाता है।

३२ : रसना (जीभ) राग तरह-तरह के स्वादिष्ट पदार्थों के खाने का लालची होता है तथा त्वक् राग सब कुछ छोड़कर सब शरीर के आलिंगन का ही उत्सुक होता है।

३३ : घ्राण (सूँघना) राग पुष्प, धूप तथा बड़ी सुगंधियों का लोभी होता है तथा मानस राग हमेशा इच्छाओं की पूर्ति से भरा रहता है।

३४ : बुद्धि राग सिवाय गुणी कांता के प्रेम के और व्यसनों से रहित होता है तथा अहंकार राग मनचाहे के साथ मेल और उन्नति चाहता है।

३५ : वृष (बैल) राग जवानी में शरीर और बल के घमंड से पैदा होता है तथा अश्व राग फौरन ही मैथुन के लिए कातर रहता है।

३६ : कृकलास (गिरगिट) राग स्त्री दर्शन के लिए चंचल रहता है तथा मेष (मेढा) राग जैसे मेढा घास खाने का अभ्यासी होता है उसी तरह रति का इच्छुक होता है।

३७ : श्वान (कुत्ता) राग श्रम के बाद विमुख और स्त्री रहस्य का प्रकाशक होता है तथा गर्दभ राग केवल गहरी रगड़ में मजा लेता है।

३८ : माजीर राग बिल्ली की तरह बहुत पास रहना चाहता है तथा कुंजर राग बंधनों की परवाह किए बिना रति के लिए दौड़ता है।

३९ : शुकराग दिल में तो निःस्नेह पर मुँह में स्नेही रहता है, तथा हंस राग सुख-पूर्वक गुणों और दोषों को अलग करता है।

४०-४१ : पारावत राग स्नेह के साथ केवल रति में ही जुट जाता है तथा मायूर राग अपना बदन फ़ैला कर रूप के अभिमान से नाचता है। चटका (गौरेया) राग बहुतों के साथ रति चाहता है, तथा कृकवाक (कुक्कुट) राग वह है जो अपनी कांता के साथ जरा-सी भी तकलीफ बँटाना चाहता है।

४२ : कोकिल राग मधुरालापी और बक्की होता है तथा जीवंजीव (चकोर) राग केवल चुंबनमात्र है।

४३ : केश राग बहुत मुश्किल से सात दिनों तक रहने वाला होता है। अस्थि राग हड्डियों के भीतर रहता है और छिपी मुहब्बत से जीता रहता है।

४४ : नख राग एक महीने रहकर फिर धीरे धीरे गायब हो जाता है। पाणि राग जगने पर मुट्ठी में बंद होने से दीख नहीं पड़ता।

४५ : दंत राग पान की ललाई की तरह क्षणिक है तथा पाद राग चरण में निरत होने से केवल प्रणाम से ही प्राप्त होता है।

४६ : तिलक राग में नीच का उच्चकुलीन स्त्री से समागम होता है तथा कर्ण-पूर राग कुटिलता से कान लगकर शेखी बघारता है।

४७ : छायाग्रह राग सब के पीछे चलने वाला और शोषक है, स्तब्ध राग दिल न जानने वाला तथा भूत राग बेहोशी लाने वाला है।

४८ : अपस्मार (मिरगी) राग हर-घड़ी भयंकर क्रोध दिखलाता है तथा ग्रह राग भीड़ भरे अथवा खाली रास्ते में कपड़े का आंचल पकड़ता अथवा छेड़छाड़ करता है।

४९ : गांधर्व राग गीत, नाच और रस में मन लगाता है, तथा यक्ष राग बाहर निकालने पर भी नहीं निकलता और फिर से घर में घुस आने में वह चतुर है।

५० : क्षोभ राग वेलगाम बकता-झकता है तथा पिशाच राग गंदगी और नोच खसोट में रत होता है।

५१ : कुसुम राग क्षण भर के लिए उदार होता है और उसका ग्रहण केवल पूजा के लिए होता है तथा कुंभ राग टूटने पर भी फिर से जुड़ने की कोशिश करता है।

५२ : नारंग राग भीतर से रसीला और बाहर से तीखा और कड़आ होता है। बहुत-से बच्चे हो जाने के बाद हृदय में जो प्रेम पैदा होता है वह दाड़िम राग है।

५३ : मद्य राग क्षणिक बदहोशी है जिसके मिटने पर फिर से लज्जा घेर लेती है। कुष्ठ राग बड़ा ही घृणित है और वह घृणित उपायों से अपने को संतुष्ट करता है।

५४ : चिता राग वशीकरण से बढ़ता है और सारे अंगों को जलाता है और मर्मांगों को काटकर उन्हें बदसूरत बनाता है।

५५ : भ्रमर राग केवल अपने कौतुकी स्वभाव से नित्य नई-नई की खोज करता है तथा पतंग राग कामिनी की चमक-दमक का रसिक बनकर अपने को जला देता है।

५६ : वृश्चिक राग द्वेषी, तकलीफ देने वाला और गहरा टिकाऊ है तथा ज्वर राग खाना-पीना छोड़कर अत्यन्त संताप से द्युतिहीन हो जाता है।

५७ : भ्रम राग बुद्धिभष्ट होने से चरखे पर चढ़े हुए की तरह आकुल होता है तथा स्मरण राग प्रिय का ध्यान करके भी दूसरी स्त्री का समागम करता है।

५८ : रतिग्रह राग सदा सपने में सुरतोत्सव मनाता है, तथा रुधिर राग कलह में नीच के रक्तपात से बढ़ता है।

इस तरह मैंने तुझसे रागों के अस्सी भेद कहे, अगर उनका विस्तार किया जाय तो उन्हें कौन गिन सकता है।

६० : बारविलासिनी को पहले मित्रों की पूजा करनी चाहिए क्योंकि पद्मिनियों की तरह वेश्याओं की विभूति मित्र (सूर्य) से बढ़ती है।

६१ : कामुकों के मित्रों से ही वह उनके धन और गुण, उनके चित्ताकर्षण का उपाय शील और प्यार तथा विमुखता जानती है।

६२ : रईसों के प्रेमी और कामी मित्रों के साथ तो छिपकर भी उनके साथ सोकर उन्हें मनाना चाहिए।

६३-६७ : सुयौवने, तुझे निम्नलिखित प्रेमी बनाने चाहिए—एकलौता बिना बाप का धनी लड़का, बेवकूफ राजा का कायस्थ, काम में उपरा-चढ़ी करने वाला बनिए का बेटा, हमेशा बीमार किसी अमात्य के वैद्य का पुत्र, काम छिपाने वाला बेवकूफ धनी, अपनी नपुंसकता के प्रवाद को दबाने का इच्छुक फलाहारी, मतवाला, धूर्तों का साथी निरंकुश राजकुमार, कामुक द्विज का गंवार बेटा, माल पैदा किए हुए गवैया, तुरत का आया हुआ सार्थपति, देवताओं का भक्त श्रीमान्, आँख मूँदकर दूसरे के पीछे चलने वाला मूर्ख, शास्त्र का घमंडी पंडित, तथा रोज का शराबी—ये सब वेश्याओं के चलते फिरते कल्पवृक्ष की तरह हैं।

६८ : पहले प्रार्थना करने पर वेश्या को 'समय नहीं है', ऐसा कहना चाहिए। लोगों का यह स्वभाव है कि वे सुलभ वस्तु की परवाह नहीं करते।

६९ : पहले ही नखरा दिखलाने के लिए सिर दर्द तथा फौरन आने वाली साफ-सुथरी और कोई बीमारी का बहाना बता देना चाहिए।

७० : बड़े धनी के पीछे-पीछे उसकी पत्नी की तरह आवभगत करनी चाहिए। 'तुमने धन, मंत्र अथवा जप से मुझे वश में कर लिया है', ऐसा कहना चाहिए।

७१ : खुद उसे खरोंचकर उसकी प्रीति के बारे में शक करके उससे झगड़ना चाहिए। भरपूर अपने बरखिलाफ अपनी खाला की निंदा करनी चाहिए और स्वयं कामुक के घर जाना चाहिए।

७२ : उसके साथ रिश्ता जोड़ कर उसके साथ अपनी विदेश यात्रा की भी सलाह देनी चाहिए, सोने पर उसे चूमना चाहिए और आधे जागने पर बराबर उसकी तारीफ करते रहना चाहिए।

७३ : स्वप्न में भी उसका नाम रह-रह कर लेना चाहिए, उसके प्रेम के बारे में बड़बड़ाना चाहिए। हमेशा उसके साथ लिपटी रहना चाहिए। उसके खर्च करने पर मना करना चाहिए।

७४ : उससे पुत्र होने का मनोरथ करना चाहिए और उसके विरह में प्राण चले जाने की बात कहनी चाहिए। इन सब बस में करने की बातों से बेवकूफ से माल वसूलना चाहिए।

७५ : जब तक वह प्रेम से बेहोश रहे तब तक जल्दी से उसका माल चूस लेना चाहिए, प्रेम रूपी आग ठंडी पड़ जाने पर वह लोहपिंड की तरह कठिन हो जायगा।

७६ : उसके कामार्त होने पर अपनी टाँगों में उसे कस कर उससे सब कुछ माँगना चाहिए। प्रायः तृप्त आदमी को झुकी हुई शाख से लटकता हुआ पका आम ठीक नहीं जँचता।

७८ : जब तक उसका माल साफ न हो जाय उसकी परवाह करना चाहिए। जैसे तेल रहने तक दीए की बत्ती जलती है उसी तरह उसके चेहरे पर प्रेमी के थोड़ा धन रहते तक स्नेह रहना चाहिए।

७८ : उसका सार पीकर, उसका उपकार भूलकर चूसी खोई की तरह उसे फेंक देना चाहिए, जैसे केशपाश फूल की सुगंध लेकर सूखने पर उसे फेंक देता है।

७९-८२ : हेमंत के बिल्ले की तरह प्रेम में मग्न अगर वह निकालने पर भी न निकले तब उसे मर्मभेदी बातों और कठोर बर्ताव से निकालना चाहिए। उसे अपनी सेज पर न आने देकर , उस पर तानाकशी करके, तरह-तरह के क्रोध से और कुटनी के उकसाने से उसे तंग करके कुटिलता भरी तरकीबों से, रंडीबाजी से आने वाली मुसीबतों से, लेने के झगड़ों से, उसके निर्धन होने से, दूसरे की प्रशंसा से, उसकी निंदा से, कठोर झगड़ों से, विटों के झगड़े से, उसे गाली देकर, बार-बार प्रवास करके, कलह के उपवास से, छलपूर्वक घर की छोटी बातें करवाकर, भौहें तानकर, तथा काफी दिन तक बाहर रह कर उसे रति से विरत करके निकाल बाहर करना चाहिए।

८३ : अगर वह फिर भी रागरूपी लाख से बंध कर कठोर अपमानों से भी नहीं निकलता तब दासी को अपनी बाहें उठाकर और मुँह फिराकर उस धन निकल जाने से दीन बने हुए से कहना चाहिए—

८४-८६ : जहाँ कामुकों की अनेक भाँति की लोकयात्रा होती थी और जहाँ हमेशा हर तरह का धन छाया रहता था वहाँ आज चौथा दिन है कि मैंने बारबनिता का उत्सव देखा। । जिस हिजड़े के पास संपत्ति नहीं है उसका वेश्या के घर में क्या काम। जिसके हाथ में पार जाने का भाड़ा (तर) नहीं है वह कैसे नाव पर चढ़ता है? धन नाश होने पर निरुद्यम के रूप को लेकर वेश्या क्या करेगी? ठाठ गाय की सुंदरता से क्या लाभ?

८७ : खुख बना हुआ केवल, हाथ फेर कर खुशामद और प्रेम भरी बात से रिझाता है। दूध सूख जाने पर चूमचाम कर धाय बालक को पालती है।

८८ : ताने भरी इन बातों से गरमी के कुहासे की तरह उसके गायब हो जाने पर उसे दूसरा ढूंढ़ना चाहिए, चाहे वह भले ही पहले उसे चूस चुकी हो पर फिर से उसने धन पैदा कर लिया हो।

८९ : फिर उस धनी को किसी तरह पाकर उसे कहना चाहिए—'तू मेरा सब कुछ है, तू मेरा दिल है, प्राण है।' यह कर जैसे नागिन केंचुल छोड़ती है उसी तरह उसको छोड़कर उसे दूसरे धनी के पास जाना चाहिए। यही वैशिक कला का सार है।

९० : उपदेश की तरह जो कुछ ऊपर कहा गया है उसका प्रयोग समय पड़ने पर अपनी बुद्धि के अनुसार करना चाहिए। यह कह कर वह बुड्ढी चुप हो गयी।

श्री व्यासदास क्षेमेन्द्र रचित समयमातृका का राग विभागोपन्यास नामक पंचम समय समाप्त।

छठा समय

१ : जब चन्द्रमा धीरे-धीरे प्रेमी के भाल की तरह रात क्षीण होने से अपनी प्रभा छोड़ रहा था तब आकाश ने मानो सवेरा होने पर देखे जाने से घबरा कर अपनी तारा रूपी आँखें मीच लीं।

२ : रातभर मजे लूट कर चन्द्रमा के चले जाने पर चिर कामुक सूर्य के आने का समय हुआ। रात ने वेश्या की तरह आकाश के आँगन में तारों के फूल फैला दिये।

३ : स्वस्थ और दानदक्ष, श्रीमान् बालरवि के उगने पर कमलिनी के खिलने पर भौरों की, विटों के शराब पीने की लड़ाई की तरह, छीना-झपटी होने लगी।

४ : कलावती मोतियों के गहने पहन कर तथा धम्मिल्ल की माला के चारों ओर मंडराते भौरों से घिर कर दर्पण देखती हुई तारों और चन्द्रमा से युक्त रात्रि की तरह दिखने लगी।

५ : उसने वेश्या के पालतू शुक की तरह अपने हाथ में पान का बीड़ा पकड़ रखा था तथा अपनी खाला के साथ और नाई से हाथ मिलाकर वह अपना शरीर बेचने के लिए तैयार खड़ी थी।

६ : नखरे के साथ चलने से हिलती हुई कांची की झनकार से कबूतरों की कूक बढ़ाती हुई वह धन की लोभी राजपथ से लगे हर्म्य पर मानों प्रिय की गोद में चढ़ने की तरह चढ़ी।

७ : सबेरे-सबेरे परिभोग्य योग्य नए कामुक की तलाश करते हुए कंक ने सोकर उठी हुई वेश्याओं की चाल-ढाल देखते हुए उससे कहा—

८ : मित्र की तरह सूर्य के आने पर रात के यार वेश्याओं के घरों से बुझते दीपकों की तरह निकल रहे हैं।

९ : मुर्गे की बाग के साथ-ही-साथ जटा-जूटधारी लीला शिव एकाएक जग पड़ा और नलिनी के घर से राजमार्ग छोड़कर गलियों से होकर मठ की ओर चल दिया।

१० : ये विट भद्रा के घर में सबेरे-सबेरे रात की मौज की बात करके निग्रह भट्ट-पुत्र के रात के बचे माल को खाने-पीने और उड़ाने के लिए आपस में बाँट रहे हैं।

११ : वह देख, अनंगसार नामक महाविट के घर के दरवाजे पर पहुँचते ही बसंतसेना रात में अकेली सोने पर भी रात की मौज की झूठी बात कहती है।

१२ : मतंग नामक गणपालक द्वारा बाजूबंद (अंगद) और कनफूल (कर्ण-पाली) तोड़ दिये जाने पर अपना अपराध छिपाते हुए रामा अपनी खाला के सामने बिखल रही है।

१३ : ग्रामनियोगी के लुक-छिपकर बाहर निकलते ही उसके पीछे बुड्ढी जाकर उसे सैकड़ों संदेशे देती है।

१४ : अनंगलेखा माधव के साथ कुज्जे उड़ाने जा रही है। उसके आगे-आगे मधुकुंभ लिए हुए तथा एक भेंड़ा खींचते हुए एक आदमी जा रहा है।

१५-१६ : यह देखो, सबेरे-सबेरे शशांकलेखा शृंगार के लिए जाने को तैयार है। अर्जुन के साथ मल्लिका का रात के समय बगीचे में बिहार करना निश्चित हो गया था लेकिन सबेरे उसके नए चीनी कपड़े न देने पर, देख, उसकी थोड़ी किरकिरी हो गयी।

१७ : इन्द्रवसु नामक ब्राह्मण के दिए हुए भेड़े का माँस ठूँस कर रात में विषूचिका हो जाने से विट के मजे का सामान बनी यह कुटनी वैद्य के लिए चिल्ला रही है।

१८ : मंडल गुल्म नामक वह वैद्य भी कमाने के लिए सबेरे-सबेरे नगर में घूमता हुआ वहाँ से मिली हुई सुपारियों में से मुट्ठी भर कर कुरंगिका को दे रहा है।

१९ : कक्षाल नामक गवैये ने रात के समय चकले में मौका न देने से बरतन भाड़े तोड़ डाले, पर सबेरे हमारे पैर पकड़ कर हमारी खुशामद कर ली। अब कौन ऐसी है जो बरतन-भांडा का दाम चुकाने के लिए उसका पल्ला पकड़ेगी।

२० : चकले में पहुँचकर शंभु बनिया रात में चुपचाप शयनगृह में सो गया। नंदा जब दूसरे प्रेमी के घर से लौटी तो नखरे से कसम खाने लगी।

२१ : बाप के घर से बहुत-से गहने चुराकर लानेवाले मदन को मृणाली ने पकड़ा। उसे घर में छिपाकर भी वह खोजने वालों को खाली घर दिखलाती है।

२२ : एक मुट्ठी आटा देने वाले के घुसने पर भूखी पाटलिका ने श्रोत्रिय अत्रि-रात्र से कहा—ओ सूखा आटा देने वाले, क्या तू इससे पिंडा पार रहा है।

२३ : हरिणी की बिल्ली की तरह चटोरी खाला ने हरिणी और पद्म का भोजन रात में चुरा लिया। सबेरे एकांत में डरती हुई वह उसे खा रही है।

२४ : मलय के साथ ईर्ष्या से अभिभूत लड़ाई में बेहोश रमणी की सखियाँ कहती हैं—कुछ गहने देकर इसे मना।

२५ : बालों में खिजाब लगाने पर भी झुर्रियों से उसके बुढ़ापे का पता देने वाले शंबरसार नामक गुरु योगी के घर एक्के (युग्म) पर चढ़कर यज्ञ कराने जा रहे हैं।

२६ : यह जनस्थान के विनाश के लिए केतु के समान, अपनी क्रूरता से प्रसिद्ध चिटिवत्स नामक आस्थानभट्ट (वकील) फटे कपड़े पहने एक्के पर जाता है।

२७ : कलावती, कोठे की तरफ देर तक टकटकी लगाकर घूरते हुए घोड़े पर सवार अधिकारी कमल तुझे देखता हुआ ऐसा लगता है मानों सूली चढ़े आदमी की आँखें बाहर निकली हों।

२८ : सफेद चन्दन का चमेली की कली की शक्ल का तिलक दिए हुए, सोने के मोटे कड़े पहने हुए, कहीं जुड़ी टेढ़ी-मेढ़ी नाक से बदचलनी की गरमी दिखलाता हुआ यह प्रपंच नामक मालवराज का दूत तुझे देखकर ऐंठता कुलमुलाता हुआ मंत्रमुग्ध साँप की तरह बन रहा है।

२९ : कपट से विटों के जमावड़े में हंसी मजाक करने वाला, यह मशहूर ठग, सब कलयुग की कलाओं का उस्ताद मूलदेव की तरह श्रीगुप्त नामक धूर्त है। दूर से ही तेरी प्रसिद्ध नई खाला को देखकर हाथ जोड़े हुए, आँखों से इशारा करते हुए, मुस्कराहट से ठुड्डी चलाते हुए वह उसकी खुशामद कर रहा है।

३० : पाताल की तरह उत्ताल तालु वाले खुले मुख से साफ साफ दिखलाई देने वाले दाँतोंवाली, सारे संसार को खा जाने की इच्छा से उसकी जीभ मानों आग की लवर की तरह है। वह मेढों के सिरों की हड्डी कटकट करती हुई चबानेवाली चमुंडा देवी है। सिद्ध, सूखी, भरी हुई भगवती कुटनी चंडघंटा को फतह कर रही है।

३१ : यह बड़ा माल पैदा किए हुए, लोभ का घर, पाप की मूर्ति, शंख नामक बाजार के रईस व्यापारी का बेटा पंक है। हिरन के छौने जैसा भोला यह बगल के घर से निकले विटों से आकृष्ट होकर, हे सुभ्रु, वह तुझे भूसी के ढेर पर फुदुकते चिरौंटे की तरह देखता है।

३२ : इस भेंड़ा को विधाता ने तेरे लिए ही खजाना बनाकर भेजा है। इसका चेहरा गबदा तथा चुंदी मोटी है और इसके कनफूल कंधों पर लहराते हैं।

३३ : इस तरह कंक के खोदबीन करने पर और बनिए के लड़के पर आँख पड़ने पर मनचाहे माल मिलने की आशा से संतुष्ट होकर कंकालिका ने हंसकर कहा—

३४-३५ : चूते हुए पान की पीक से चितकबरी बनी हुई गर्दन को घुमाकर देखने वाला, लाल जूते पहनकर सरसर और डगमगाते चाल से चलने वाला, ऐसा बेव-

कूफ लड़का वेश्याओं को खूब माल भरने और जल्दी पटने वाला कभी चकले के भाग्य से ही आ जाता है। कलावती, तेरे चेहरे पर आँख गड़ाए यह नया लौंडा महाविट भोग और धन की इच्छा से तेरे देवता के सामने बलि के बकरे की तरह चढ़ाया गया मालूम पड़ता है।

३६ : कंक, तू दूतकार्य के लिए जल्दी से इसके बगल में जा। ये तुझसे दूत का काम लेंगे। इस तरह उसको हुक्म देने पर वह खुशी-खुशी कोठे से नीचे उतर कर चला।

श्री व्यासदास क्षेमेन्द्र विरचित समयमातृका का छठा समय समाप्त

सातवां समय

१ : धीरे-धीरे नए काम विकार को पैदा करने वाला, लताओं का आलिंगन करने वाला फूलों से भरा वसंत आया।

२-३ : सूर्य ने मानो सोचा कि कामियों के संयोग का सुख दूसरे पर मुनहसर है, यह समझ कर उसने कुबेर की आशा (उत्तर दिशा) पकड़ी। दक्षिण वायु के थपेड़ों से सफेद फूलों से लदी नाजुक लताएँ मानों कामोत्सुकता से जँभाई लेने लगीं।

४ : शिव के क्रोध से बूढ़े कामदेव के जलने पर प्रजापति ऋतुराज ने पुनः काम की रचना की।

५ : कोकिलों की कूकों से बड़बड़ाती, भौरों के झनकारों से मानो गाती हुई वेश्या की तरह मदमस्त वनराजि शोभा पा रही थी।

६ : लताओं ने जब मदमस्त वसंत के साथ छेड़खानी की तो उनमें नए कोपल फूटे। उन्हें उनके मुख पर नखच्छद समझ कर लोभी स्थलकमलों के मुख ईर्ष्या से तम-तमा गये।

७ : मरे-गिरे, बूढ़े शिशिर को दूर छोड़कर गाढ़े प्रेम से जवान सरदी को अलग फेंक कर उद्यान-लक्ष्मी मनचाहे बालक वसंत से लिपट गयी। प्रायः कार्य तत्पर स्त्रियों को उमर की परवाह नहीं होती।

८-९ : वह नापित दूत दो-तीन बार आया गया, पर उस कमसिन को लेने-न लेने में उसने झूठी आनाकानी की। कुछ खुशामद के बाद माल लूटने पर तैयार कलावती संध्या को खूब सज-धज कर वासकसज्जा बन गयी।

१० : गालों पर कस्तूरी से टेढ़े पत्रभंग लिखे, ललाट पर घुंघराले बाल के पास कपूर से तिलक बनाया, सोनहरे बदन पर केसर पोती। उसका शृंगार पहले कभी ऐसा नहीं चमका था।

११ : उस नतमेखला ने लजाते हुए कहा, 'मैं जवानों से परिचित बाल संगम के योग्य नहीं।'

१२ : मनचोर उसका वदन, मनचोर उसकी कुचस्थली, मनचोर उसकी निगाहें काम से भर गयीं।

१३ : इसके बाद बनिए का बेटा गणिका के घर में पैसा पैदा करने पर तैयार चकले के वाशिन्दों के साथ घुसा।

१४-१७ : कानों में सोने और मोती के भारी बाले (बालक), जो अपने भारीपन से कानों को तकलीफ दे रहे थे, गले में कंठाभरण के बीच में चार सोने के जंतर (हेमरक्षा) तथा बाल में माता के हाथ से रखे सरसों के दाने पड़े थे। चाँदी के बने पैरों के कड़े लाजवर्द की बड़ी गुरियों से सजे थे। लंबे दुपट्टे के आँचल के गिरते किनारे को वह खींचता जाता था। अधिक चूनेवाले पान से मुँह कटने पर वह सी-सी करता जाता था।

१८ : पूर्व से घुस कर उसने कलावती को आदर के साथ शीशा देखते देखा मानों वह चाँदभरी रात हो।

१९ : पालने लायक यह बच्चा कैसे संभोग के लायक है, ऐसा मानों हँसते हुए स्तनमंडल से तारहार कह रहा था।

२० : पैसा चुराने के यज्ञ में ऋत्विज भारी काइयें सात महाविट उसके आगे-आगे घुसे।

२१-२२ : निर्धन निर्गुट, लेखक कमलाकर, भरताचार्य रेचक, खुक्खे हाथ तुलाधर, गणक सिंहगुप्त, वैद्यपुत्र तिक्त, और शिकारी कटि, ये सात भोगरूपी कमल के भौंरे थे।

२३ : बाहर उन विटों से वेश्या समागम की शैली की शिक्षा पाकर वह भीतर घुसकर कामिनी के बगल में प्रौढ़ की तरह जम गया।

२४ : कपड़े से अपनी आधी नाक ढाँक कर वह कटु प्रस्ताव से भरी, सिखाई हुई मजाक की बातें सुग्गे की तरह रटने लगा।

२५ : उसके बाद कंकाली भीतर घुस कर ऊँचे आसन पर बैठ गयी और उसके आगे खुश करने के लिए विटों की तारीफ करने लगी--

२६ : यह रईस का लड़का धन्य है जिसने आप सब का साथ किया। आप जैसों का परिचय पुण्य से ही मिलता है।

२७ : कमसिन होते हुए भी यह कामुक मुझे प्यारा है। बाल सूर्य ही कमलिनी को खिलाता है।

२८ : ऐसी तारीफों से कुटनी ने विटों को जब तक बस में किया तब तक थूके हुए पान की पीक से फर्श लाल होता रहा।

२९ : इसके बाद काली वेतालिका नाम की कलावती की धाय पान बांटने का मौका पाकर अपने को धन्य समझ कर बोली--

३० : इस घर में पान लेने वालों की संख्या बहुत कम है, दूसरी वेश्याओं के घर की तरह नहीं, जहाँ हजारों पान लेने को तैयार रहते हैं।

३१ : देवता की तरह, उदार बुद्धि कंक सबसे पहले पूजनीय है, जिसके अनु-रोध से दुर्लभ कलावती भी सुलभ हैं।

३२ : कन्या देने से गौरव के योग्य शांखिक कमल इस घर का जमाई होने से पूज्य हैं और इसलिए पहले सम्मान का पात्र है।

३३ : और यह महाव्रती शक्ति है जो कल ही पर्व दिवस के कारण आया है। इसने एक समय कलावती के पिता का क्रियाकर्म किया था।

३४ : यह स्थलपति कपिल का पुत्र कलह है और यह कलावती का गुरु भाई मधुप्रद कलवार है।

३५ : यह मृदंगोदर कलावती का जीजा है, यह उसका मामा कलह और यह उसका छोटा भाई बिंदुसार है।

३६ : यह कलावती के गोद आए पुत्र कलायुष की धाय है और यह है रुग्णचन्द्र उसका पति।

३७ : भागवत का पुत्र, भरत नाट्यशास्त्र में पटु यह कांब है और यह है महा-मात्य का मित्र गवैया स्वरदास।

३८ : ये हैं निगिल रसोइयाँ, कुंभार कर्पर, छत्रधर बक और एक्केवान खंजन।

३९ : वेश्याओं की ग्रह शांति कराने वाला यह रतिशर्मा ब्राह्मण है, और ये हैं प्रधान माली (आरामरक्षक) कराव और नाविक कीलवर्त।

४० : ये हैं उद्यानपाल कन्द, माली (पौष्पिक) मुकुल, चमार वर्मदत्त और धावक मारच्छिद्र।

४१ : घर्घरा चांडाली बाहर बड़बड़ा रही है, तथा ये हैं चंडर डोम और कोठारी प्रहारिक।

४२ : जब ये यहाँ आते हैं तब उन्हें पान दिया जाता है पर इसकी सखी शंकर-माला और गुरु दंभभूति को रोज सबेरे ही सबेरे पान भेज दिया जाता है।

४३ : यह कहकर सुपारी लूटने में तत्पर वेश्यालय में आए हुए तथा खूब शराब पीकर घूरते हुए आने जाने वालों को वेतालिका ने पान देकर बिदा किया।

४४ : नशे में मतवाले एक-दूसरे को गालियाँ देते हुए विटों से घबराकर मानो रात धूप के बहाने निकल गई।

४५-४६ : उन मतवालों ने कहना शुरू किया—'लड़ाई में मैं राजा का दाहिना हाथ हूँ,' 'मेरी कलम के सहारे ही राज्य खड़ा है', 'मेरे रहते ही नाट्यशास्त्र की हस्ती है', 'मेरी तराजू के सहारे ही धनवान की लक्ष्मी है,' 'मैं अपनी गणित से तीनों लोक का घेरा जानता हूँ,' 'मैंने ही राजा की चिकित्सा की,' 'मेरी सूक्तियों से ही राजाओं ने मेरी इज्जत की।'

४७ : कलावती ने पान देने के बहाने उन्हें टरकाया और वे मन के लड्डू मन में ही बनाते हुए चले गये।

४८ : इसके बाद वह हरिणाक्षी, जिसके मुख पर अपने परिजनों के मजाक के याद की हँसी खेल रही थी, अपने बालक यार को खींच कर उसके साथ लेट गयी। उसकी शैय्या पर चंदवा तना था, हंस की तरह सफेद उसकी तकिया थी तथा उस पर चीनी कपड़े की चादर बिछी थी।

४९ : उस बच्चे कामुक के सामने मानों मुँह घुमाकर लज्जा से दीपक टिमटिमाने लगे पर वास्तव में फूलों की वास के लोभी भौरों के दीपकों पर मंडराने से लपलपाते और अगर के धूएँ से वे काले पड़ रहे थे।

श्री व्यासदास क्षेमेन्द्र विरचित समयमातृका का कामुक समागम नामक सातवाँ समय समाप्त

आठवाँ समय

१ : मानो चन्द्रमा के साथ रतिश्रम से उनींदे खिन्न तारों वाली रजनी प्रभात के ओस की बूंदों के पसीने से युक्त होकर टल गयी।

२ : सबेरे सारी रात जागने से लाल आँखों वाली वेश्या ने रात का हाल-चाल पूछने के लिए तैयार कंकाली के पास जा कर कहा—

३ : सुन माँ, बचपन होने पर भी असमय में ही उसकी जवानी फूट पड़ी है। छोटा होने पर भी वह मिर्च की बुकनी की तरह काफी तीखा है।

४ : दासी द्वारा ऊँची खाट पर सुला दिए जाने पर धीरे-धीरे उस बच्चे ने शरीर की हरकत रोक कर नकली सोने का बहाना कर लिया।

५ : स्त्री सुलभ कुतूहल और चपलता से मैंने उसका आलिंगन किया, पर नए-नए सुरत के अंत होते ही वह एकाएक निश्चेष्ट हो गया।

६ : शायद उसे सुपारी लग गई है, यह जानकर मैंने ठंडे जल से हाथ भिगो-कर उसके सिर पर फिराया। जैसे प्रलय हो रहा हो उस भय से वह चौंक कर होश में आ गया।

७ : अब वह जागरण का मूर्त स्वरूप बन गया और मजा पाकर गौरैया के जोड़े खाने की तरह अनगिनत तरकीबों से मुझे पसीने-पसीने कर दिया।

८ : देखने में बालक पर जवान उसे रस के बस जगाकर, हाय, मानों मैंने अपने हाथ से जलता अँगारा पकड़ लिया।

९ : बच्चा है, रोएगा, इस दया से मैंने दशनक्षत नहीं किया पर इसके विपरीत, देख, उसने सुग्गे की तरह मेरा ओंठ काट डाला है।

१० : बच्चे का साथ होने से क्षणभर के लिए मानों लज्जित होकर मेरे स्तन-युगल नहीं उठे, पर उसने घड़ी-घड़ी चढ़ने के खेल और आलिंगनों से उन्हें मानों कहीं का नहीं रक्खा।

११ : उसने मेरी तनुलता के गुप्त स्थानों को भी नोच-खसोट डाला, चतुरों के साथ मिलने पर मैं अंग कैसे छिपा सकूँगी।

१२ : रात भर जागने से सुस्त वह गणिका यह कहकर जमीन देखती हुई नखरे से क्षण भर के लिए खड़ी रही।

१३ : अपने ऊबड़-खाबड़ दांतों से मुस्कराते हुए मानों विटों के भोग मनोरथ को तोड़ती हुई कंकाली ने उससे कहा——

१४ : अरे मुग्धे, हाट के बदमाशों और गुंडों से सीखे व्यापारी बच्चों की तीखी हवस ऐसी ही होती है।

१५ : बाप के घर से चोरी की गई रकम उसके हाथ में है क्योंकि खाली हाथ वाला ऐसी ढिठाई नहीं कर सकता।

१६ : अरे, बिल में छिपे हुए धन-कण से चपल-गति मूसा और भी कूदता है, पर छूँछे कर (सूंड) वाला हाथी मद रहित होकर सो जाता है।

१७ : विटों के भगाने की तरकीब से मैं अभी जाकर तेरे उपभोग्य बनिए के बेटे को मक्खियों से रहित शहद के छत्ते की तरह उपभोग्य बना दूंगी।

१८ : हम सब का बिक्री के लिए तैयार शरीर बड़ा भारी खजाना है, ये दोगले विट क्यों बहाने से लूटे खायँ!

१९ : यह कहकर जल्दी से शय्या भवन में स्थित उस बच्चे के पास जाकर चुपके-चुपके कंकाली ने उससे कहा——

२० : बेटा, क्या तूने उस कुमुदहासिनी के साथ अच्छी तरह से सारी रात गुजारी। कलावती के हृदय का चोर, तू जेल भेज देने लायक है।

२१ : ध्यान, बदन तोड़ना, जंभाई, उसास, काँपना, डगमगाहट—ये सब बातें वह तेरे साथ रहने पर भी करती है, तेरे जाने पर तो बात ही क्या है।

२२ : जवानों के समुंदर को पार करनेवाली कलावती, जिसे पाने के लिए दक्षिण का राजा भोज दूत भेजता है, कैसे तेरा आँचल पकड़ती है।

२३ : निश्चय ही पूर्व जन्म में विधना ने तुम दोनो की जोड़ी बाँधी। अगर ऐसी बात न होती तो क्यों मुझे अपने मरने के बाद तुमसे श्राद्ध इत्यादि की आशा होती।

२४ : इस संयोग में एक ही विघ्न जानकर मुझे भय होता है कि कहीं तुम विटों के काँटों में न फँस जाओ।

२५ : आन के धन लक्ष्मीनरायन करने वाले, बिलकुल कंगाल ये धूर्त तुम्हारा सब खा-पीकर तुम्हें पिता के हवाले कर देना चाहते हैं।

२६ : इसलिए अगर तुम एक दिन भी छिपकर रहो तो इन कुटीचर विटों का जमघट निराशा से तितर-बितर हो जायगा।

२७ : कुटनी के ऐसा कहने पर बाल-सुलभ सरलता से भरे बनिए के बेटे ने कहा—माँ प्रेमवश होकर तुमने यह ठीक ही कहा।

२८ : बाप की रोकड़ से कुछ रकम मेरे गाँठ में बंधी है, इसे ले लो और अपनी लाड़ली के सिंगार-पटार के लिए खर्चो।

२९ : यह कहकर उस बच्चे ने गहरा माल उसे सौंप दिया और उसके दिखलाए हुए छिपे रास्ते से मकान के दादरे (हर्म्यतल कोष्ठ) में जा घुसा।

३० : उसे छिपाकर खुशी-खुशी पर ऊपर से नया विषाद दिखाती हुई कंकाली ने कलकल मचाते हुए विटों के पास जाकर कहा—

३१ : जिन्दगी भर के दोस्तों, हमारे खातिर से संतुष्ट क्या तुम सबको यह उचित था कि तुम हमारे साथ ऐसा दुकड़हापन करते?

३२ : तुमने उस डाकू के लड़के को बनिए के लड़के के बहाने से गहने जवाहरातों से भरे इस घर में रात को घुसा दिया।

३३ : अगर दूसरी वेश्याओं ने तुम्हें उकसाया था और तुम हमारा मजाक बनाने पर तैयार हो गये तो कैसे तुमने स्त्री-बध जैसे बड़े पाप का साहस किया?

३४ : कलावती के सबेरे की नींद में पड़ जाने पर वह कामी फौरन हार के साथ केयूर का जोड़ा लेकर चंपत हो गया।

३५ : सुना जाता है कि प्रतिनगर में गहनों के लालचियों ने स्त्रियों को मार डाला। अपने कुल देवता की कृपा से भाग्यवश कलावती आज बच गयी।

३६ : अगर वह वेश्याओं द्वारा पकड़ कर राजदरबार में लाया गया तो दोष किसके सिर पड़ेगा और तुम्हारे जैसों की कौन वेश्या जमानत करेगी ?

३७ : अरे देखो लोगों, कैसा कलजुग का कारनामा है कि प्यारे और मालदार मित्र स्त्री-वध का पाप मोल लेते हैं।

३८ : गुण का विभाग कौन जानता है, जाति की परीक्षा हाथ से कैसे हो सकती है, कुटिलों की चेष्टा कुछ होती है और बातें कुछ।

३९ : यह कहकर घर के परिजनों के साथ मानो गहरी लड़ाई हुई हो ऐसा भाव बनाकर आने-जाने वालों से भरे राजपथ पर कंकाली ढाढ़ें मारकर रोने लगी।

४० : डर से विटों का रंग फीका पड़ गया और उनकी बोलती बंद हो गयी। वे गलियों से भाग कर एक दूर जगह इकट्ठे हुए।

४१ : उसके बाद भोग भ्रष्ट, कष्ट में पड़े, झूठे अपवाद से घबराए, तथा फजूल तकलीफ उठाए उन सब ने बहुत देर तक सोच-विचार कर टरक रहना ही ठीक समझा।

४२ : "हमने बनिए के बच्चे को भागते नहीं देखा। पासे के हेर-फेर की तरह कंकाली ने हमें लूट लिया," ऐसा निर्गुट ने कहा।

४३ : लेखक ने सोचते हुए कहा, "उसने (बनिए रूपी) रोजगार के माल को छिपा दिया है और लेखे-जोखे (भूर्ज) में हमें पकड़ रही है।"

४४ : अब नाटकाचार्य ने कहा, "कुटनी ने अंगहार साधकर पूर्वरंग के योग्य ही काम किया। उसने हमें खूब नाच नचाया और अब क्या चाहिए।"

४५ : तुलाधर ने क्रोध से कहा, "ऐबीली झूठी सौ अंकों वाली तराजू की तरह कंकाली को मैं खूब जानता हूँ। उसने खूब झाँसा दिया।"

४६ : ज्योतिषी ने कहा, "बनिया का सूर्य इस समय मेष से बहुत दूर है, कंकाली ने उसे पूरी तरह से ग्रस लिया है।"

४७ : वैद्य ने कहा, "बहुत शराब पिए हुए हमें उसने बुखार में पड़े हुए को फाँके-कशी के इलाज की तरह दवा दी है।"

४८ : विरस कवि ने साँस भर कर कहा, "हम चरित्र-भ्रष्टों का अलगंठ नया मजा किरकिरा पड़ गया।"

४९ : दुःख, क्रोध, विस्मय और लज्जा से भरे आपस में बात करके फूल के बगीचे से च्युत भौरों की तरह विट लंबे पड़े।

५० : अब कंकाली ने अकेले में बेखटके भोग सामग्री का स्वाद चखकर बड़े जलसे के साथ रात बिताई।

५१ : सबेरे वह दूसरी तरकीब सोचकर हाट की भांडशाला में पहुँची और कामी के बनिए बाप की अतुल संपत्ति देखी।

५२ : वह बहुत धन और फायदा होने पर भी दूकान पर ग्राह की तरह ग्राहकों के आसरे बैठा रहता था, पर वह लड़के द्वारा सोना चुराए जाने की चिंता की तकलीफ से दुखारी बन रहा था।

५३-५७ : ऊँची गद्दी पर बैठा हुआ, तीन तरह की बहियों (संपुटी) को हाथ में लेकर अर्थियों के चेहरे देखते ही आँखें बंद कर लेने से वह हमेशा अंधा मालूम पड़ता था। बंधक छुड़ाने वालों के द्वारा सूद का कुछ अंश छुड़वाने की प्रार्थना को अनसुनी करके वह बहिरा लगता था तथा बहुत कम दाम लगाने वालों के सवालों का जवाब न देकर वह गूँगा-सा मालूम पड़ता था।

बालों के तेल से चिकटी, मूसे से काटी गई उसकी आधी टोपी (टुप्पिका) बेढंगी थी। उसकी फटी ऊनी चादर उसके लंबे मोटे कंचुक के छोरों पर लहरा रही थी। उसकी चौड़े, ढीले, धूएं से काले, फटे मोजे (मोचोट) से नंगी जाँघें और घुटने खुले थे।

उसकी रूखी दाढ़ी मोटी, हिलती लट्टूनुमा गाँठ से बँधी थी। घर के रोजमर्रा खर्च माँगने के लिए आई हुई लौंडी को वह मार रहा था। डोरी से बँधी भूखी बिल्ली की आवाज से भी उस निर्दई को दया नहीं आती थी।

५८ : कंकाली ने दूर से ही नाक पर उँगली रखकर उसे भांपा और यह वही मशहूर बनिया है, ऐसा उसे निश्चय हो गया।

५९ : वह धीरे-धीरे उसके पास गयी और अकेला पाकर कहा—"भांडपति, मुझे अकेले में आपसे कुछ कहना है।

६० : "हिरन के छौने की तरह मूर्ख तेरे बेटे को शिकारी विटों ने अपनी ओर खींच कर कल की साँझ उसके कपड़े गहने छीन लिये, ऐसा मैंने देखा है।

६१ : "उस सुन्दर जवान को मैंने दयावश अपने घर में घुसा लिया पर न जाने किस राह से वह मेरी लड़की के हृदय में घुस गया।

६२ : "उसने स्नान के बाद उसे सुन्दर वस्त्र और आभूषण प्रेम से दिये और राजाओं के योग्य विविध भोजनों से भक्ति के साथ काम की तरह उसकी पूजा की।

६३ : "वंश के गौरव, सीधेपन और प्रशंसनीय रूप, इन सब बातों से उस गुणी को उसने अपने गले का हार बना लिया।

६४ : "राजपुत्रों तथा अमात्यों को अपना शरीर बेचकर बहुत धन पैदा करके अब तेरा पुत्र पहले जन्म के योग से आज उसका पति है।

६५ : "मनचाहे के साथ योग, प्रेम और जवानी से पागल कलावती का स्त्रीधन समेत घर मैं तुझे सुपुर्द करती हूँ।

६६ : "कुछ समय के बाद मेरे तीर्थयात्रा जाने पर तू कलावती के मुहर लगे हुए धन की रक्षा करना।

६७ : "आज तू कृपा करके पुत्र स्नेह और पतोहू के अनुरोध से हमारे घर थोड़ा भोजन करके मंगलाचार में योग दे।"

६८ : यह कहकर आँखों में आँसू भर कर कंकाली पुत्र मिलने से खुश उस वज्र-हृदय के पैरों पर गिर पड़ी।

६९ : उसने कंकाली से कहा—"भद्रे, यह सब खुशी बढ़ाने वाली मंगलमय बातें हैं, पर तुम्हारा अकेले तीर्थयात्रा पर जाना मुझे नहीं भाता। हम दोनों साथ ही चलेंगे।

७० : "दूसरे का भोजन न करने का नियम लेने से मैं तेरे घर कैसे खा सकता हूँ, अगर तू भोजन का दाम ले ले तब मैं चल सकूँगा।"

७१ : यह कहकर उसने कंकाली के हाथ में डेढ़ रुपए पकड़ा दिये और उस भीतर से हँसती हुई को बिदा करके बाद में भोजन करने के लिए चला।

७२ : वहाँ ठाटबाट से प्यारी के भोग में निरत अपने पुत्र को देखकर तथा बिना पैसे-कौड़ी के गहरी ज्योनार से वह निश्चित और प्रीतिमान बन बैठा।

७३ : कपूर और इलायची से सुगंधित तथा रस भरे तरह-तरह के पदार्थ खाकर तथा डटकर शराब पीने के बाद उस लालची ने कंकाली से कहा—

७४ : "तुम लोगों के रोजमर्रे का उचित खर्च मैं दूँगा, फिर भी गहरी रकम मत खरचना।"

७५ : यह कहकर आकाश में खेती करने के कुलावे बाँधता हुआ वह अपने घर गया। लालची को ठगने का उपाय केवल लोभ दिखाना है।

७६ : दूसरे दिन उस कुटीचर से दिन का खर्च लाने और उसका मतलब जानने के लिए कलावती ने अपनी निजी दासी को भेजा।

७७ : बहुत देर बाद दासी हींग की पुड़िया और कसोरे लिये हुए लौटी और हाथ से चुटकी बजाकर हँसती हुई कलावती से कहा—

७८ : "तेरे ससुर ने बेशकीमती भोज्य पदार्थों का ढेर भेजा है। उठ कर बाँट दे और नाते रिश्तेदारों को बुला।

७९ : "एक तोला तेल, दो तोले नमक का चूरा देकर उसने टेढ़ी भौं करके मुझसे कहा—

८० : यह तेल है, यह नोन है, शाक के लिए दो कौड़ियाँ हैं, क्या कामी वेश्या को दिन में खरचने के लिए एक लाख देता है?"

८१ : यह कहकर और उसका भेजा हुआ दिखलाकर दासी ने उस पर बहुत बार थूका और उसे दूर फेंककर उसके मुख देखने से मलिन आँखों की निन्दा की।

८२ : दूसरे दिन कंकाली उसको ठगने का सहज उपाय निकाल कर अकेले में कलावती को सब हाल-चाल समझा कर चल पड़ी।

८३ : उसने रंग, नाम और मुद्रा में एक समान दो नए संदूक बनवाकर एक में गहने और दूसरे में पत्थर के ढोके भर लिये।

८४ : खूब मोटे तूल के परदे से ढकी दूकान के आगे वह काँख तले आँचल में संदूक छिपाए हुए सेठ से बोली—

८५-८६ : "बनारस जाने की साइत एकाएक निकल आई है। मेरे चले जाने पर फिर शायद भेंट-मुलाकात न हो, जड़ाऊ गहनों से भरा यह संदूक है। स्त्री और बालक के धन की आपको सदा प्राणों की तरह रक्षा करनी चाहिए।"

८७ : यह कहकर और उसे सब माल दिखाकर और पेटी पर मुहर लगाकर तथा उसके सामने रखकर मानो उसे चिढ़ाते हुए उसने कहा—

८८ : "सखे, राह खर्च के लिए मुझे कोई लाख नहीं चाहिए। केवल मुझे इतना दो जिसे देवालय से मिलने वाले गुजारे से मैं अदा कर सकूँ।"

८९ : हँसी से ऐसी बात करती हुई उसने दोनों संदूकों की हेराफेरी कर दी और एक क्षण में लाख की रकम लेकर कंकाली अपने घर आ पहुँची।

९० : काम पूरा करके बनिए के घर से वह घर वापस आ गई है, यह जानकर कलावती ने घर में जाकर शंख के लड़के से कहा—

९१ : "तुमको मैंने अपना दिल दे दिया। अब यह जबरदस्ती खींचने पर भी नहीं आता। तू रईस ब्याह कर लेगा, मुझे ऐसा शक है।

९२ : "वेश्या का एक दिन का संग भला, पर ब्याहता का जन्म भर का भी अच्छा नहीं। फिर भी मोह और बेवकूफी से बेवकूफ विवाह का आदर करते हैं।

९३ : "रोज-रोज बच्चे पैदा होने से ढलती जवानी वाली, मद छोड़कर वेश्याओं के नखरों से अनजान, गोष्ठी, विलास और रस-केलियों का अनादर करने वाली पत्नियों में सिवाय लड़ाई-झगड़े के चुहलबाजियाँ कहाँ से आ सकती हैं?

९४ : "दूसरी ओर प्रकृति से ही कामियों का मनोरंजन करनेवाली वेश्याओं के नाज-नखरों में कुशल, सुगंधियों से गमगमाती, मौज उड़ाने में प्रवीण, सदा मुस्कराने वाली वेश्याओं से कौन प्रेम नहीं करेगा ?

९५ : "मेरी दिलजमई के लिए तुम मुझे दस्तावेज (धनधारण पत्रिका) लिख दो जिससे विवाह कर लेने पर मैं उसकी मदद से मतवाले हाथी को जैसे आँकुस बस में रखता हूँ उसी तरह तुम्हें बस में रख सकूँ।"

९६ : उसके ऐसा कहने पर बनिए के बेटे ने भारी रकम का उधारनामा (उज्जास पत्रिका) राजा के साले के बेटे विक्रमशक्ति के नाम से लिख दी।

९७-९८ : पर इतना ही नहीं, सबेरे-सबेरे कंकाली शैय्या भवन में उसके पास आई और अपने जमाई से बनावटी उदास चेहरा बनाकर कहा—"तुम्हारी जवानी चढ़ रही है पर मेरी बेटी की जवानी तुम चाट चुके। अनदेखे ही स्त्रियों का जोवन सहसा ढल जाता है।

९९ : "प्रकृति से ही पुरुष साल और सरल के पेड़ों की तरह हमेशा पट्ठे बने रहते हैं पर स्त्री तो कल कन्या, आज तरुणी और दूसरे दिन बूढ़ी हो जाती है।

१०० : "उसके ऋतुस्नान से एक महीना दो दिन अधिक हो गये हैं इसलिए कलावती आज पेट रह जाने के भय से घबरा रही है।

१.१ : "जवानी की चुहलबाजियों का शाप, शरीर रूपी कमलिनी का गहरा पाला, स्त्रियों का प्रसव दिन स्तनों का पूरा पाप है।

१०२ : "प्रसव से गायब जवानी वालियों के कुच मानो लज्जा से झुक जाते हैं और तब वेश्याओं को कोई तिनके के लिए भी नहीं पूछता।

१०३ : "बुढ़ापे में पुरुषों की शान से मजे में रोजी चल जाती है पर जवानी खतम होने पर तो वेश्याओं का केवल घूमकर भीख माँगना ही रह जाता है।

१०४ : "सुमति, इसलिए पिता के मरने के बाद अपनी पूरी जर-जायदाद का कबाला (अधिकरणपत्र) लिखकर कलावती को दे दो।"

१०५ : कुटनी के ऐसा कहने पर बनिए के बेटे ने उत्साह और प्रसन्नता से सारी जायदाद कलावती को दे दी।

१०६ : इसके बाद शिथिलादर कंकाली ने दो-तीन दिनों के बाद कंक को इशारे से चला कर पंक के सुनते में कलावती से कहा—

१०७ : "अरे प्रेमजली कलावति, क्यों तू व्रत-सा रख रही है, यह ठाकुर का बेटा रणविलास तुझे चाह रहा है।

१०८ : "मंदिर के खजाने का कायस्थ मकरगुप्त हमेशा से पीछे-पीछे चलते तेरी एक कठोर बात से भी अपने को धन्य मानता है।

१०९ : "आज भेंट के दिन महामात्य सत्यरथ ने तुम्हारे लिए तेहवार के दिन कपड़े का जोड़ा भेजा है फिर भी तुमने उस पर कृपा नहीं की।

११० : "जलसे (प्रेक्षणक) में राजपुत्र साहसराज ने तुझे देखकर तुमसे चित लगने से अपनी रखेली (अवरुद्धिका) वासबसेना को छोड़ दिया है।

१११ : "अगर तू इस नई जवानी में केवल एक मालिक से फँसी रहेगी तो जवानी ढलने पर, अरी बेवकूफ कौन, तुझे धन देगा।

११२ : "जिन्होंने जवानी में प्रेम के बस होकर धन पैदा करना छोड़ दिया वे सब अब तक देह में भभूत रमाती हैं और चीवर पहनती हैं।

११३ : "कुचों के सोने के कलसे लिए हुए, नितंब रूपी सिंहासन पर बैठी हुई, मुस्कराहट की छतरी लगाए हुई काम की राज्यलक्ष्मी, तू निश्चय ही राजा के भोगने ही लायक है।

११४ : "मैंने इसकी दौलत खाई है, ऐसा दाक्षिण्य तू उसके धन समाप्त हो जाने पर मत कर। कल का खाया आज थोड़े ही तृप्तिकर हो रहा है?

११५ : "वेश्या तब तक पुरुष की चेरी रहती है जब तक कुछ उसके हाथ में है। रकम छीज जाने से वह स्वर्ग नगरी की तरह बहुत मुश्किल से ही मिलती है।

११६ : "कल ही रकम देकर आज कैसे चल दूँ, ऐसा कहने वाला आदमी बेवकूफ है क्योंकि वेश्याएं तुरत रुपए पाकर ही मजा लेने देती हैं।"

११७ : इस तरह कंक के मुख से निकले हुए वाक्शरों से घायल बनिए का बेटा क्षण भर के लिए बेहोश हो गया और फीका पड़ कर जमीन झाँकने लगा।

११८ : इसके बाद पेटदर्द, भाई की मौत, तथा शरीर कष्ट इत्यादि के बहाने करके कलावती ने शंख पुत्र का सेज पर जाना बंद कर दिया।

११९-१२० : "बुरा सपना देखने से आज मैंने माता का व्रत किया है। आज राजकुल में छट्ठी का जागरन है वहीं मेरा बिस्तर लगेगा। आज मेरी सखी के पुत्र मृगांकदत्त का मूड़न है।" इन सब बहानों से वह कामियों के घर जाने लगी।

१२१-१२२ : एक दिन सबेरे काँपती हुई, भय से घबराई कंकाली ने शंख पुत्र से कहा—"बेटे जल्दी उठकर सिर पर पैर रखकर भाग। हमारे लिए जवानों के आपसी झगड़े में एक जवान मारा गया है।

१२३ : "नगरपति बहुत टेढ़ा है, कलावती अपने मित्र के घर चल दी है। तू बनिया का बेटा बिचारा भोला भाला है और हमारा राजा रुपया सूँघता रहता है।

१२४ : "रजाई फेंक, बालों की थैली (तूस्ती) रहठ से निकालकर पीठ पर ले ले। कौन जानता है कि रास्ते में कोई तुझे पहचान कर न जाने क्या करे?"

१२६ : घर का कांटा साफ करने के लिए कंकाली द्वारा ऐसी झूठ बात कही जाने पर पंक पीछे की गली से भाग निकला।

१२६-१२७ : वेश्या रूपी लताएं पहले लाल, उसके बाद कम लाल और अंत में बिलकुल गायब ललाई वाले कोंपल की तरह अपनी करतूत दिखलाती हैं। कुटनी कंकाली की चतुराई से बनिए का मालमता पाकर कलाबती पूरी रईस बन गई।

१२८ : अनेक उपायों से कामुकों की भलाई न मानने वाली कृतघ्न कुटनी ठगती है। हाय, बनस्थलि में रोज हिरन फंसाने का जाल देखते हुए भी मृगछौने कूटपास में फंसते हैं।

१२९ : कलावती ने ठीक समय नकली मां बनाई, उसी नाम से क्षेमेन्द्र ने समय-मातृका की रचना की।

श्री व्यासदास क्षेमेन्द्र कृत सयमातृका का कामुक-प्राप्ति नामक अष्टम अध्याय समाप्त

---

१ : प्रौढ़ा कलावती वेश्या चित्त हरती है। वह अलंकारों,पत्रभंग रचना तथा विशेषक से युक्त बांकी, मृदुभाषिणी, रसपूर्ण बेवकूफों से पैसा पैदा करने वाली आश्चर्योचित वर्णना से नए नए स्वाद का मजा लेने वाली होती है, जैसे सत्कवि की मँजी हुई गुणवती वाणी जो अलंकार, विभक्ति और विशेष पदार्थ से बांकी, रसवती और सरलार्थ वाली होती है एवं आश्चर्य युक्त वर्णनों के नए नए अनुभवों से पूजित होती है।

२ : लौकिक संवत्सर पचीस (ई० सन् १०५०) में पौष शुक्ल प्रतिपदा के दिन रईसों का धन बचाने के लिए यह हंसोड रचना की गयी।

३ : यहां पहाड़ी गुफाओं में सोते हुए भयंकर सर्पों का झुंड है, वहां मतवाले हाथी रहते हैं, यहां शेर रहते हैं, भयभीत बूढ़ी शबरी राह चलते बटोहियों से ऐसा कहती है। इस बन में फंसकर पकड़ने वाली दुश्मन औरतें रहती हैं, उनसे हमेशा बचना चाहिए।

४ : वीर, आर्तों पर दयालु, शील से अलंकृत, विजय में शत्रुओं को काटने वाली खड्ग ही जिसका अकेला मित्र है उस प्रतापवान राजा अनंत के राज्य में क्षेमेन्द्र ने भलों की रक्षा में समर्थ इस सुभाषित की रचना की।

श्री व्यासदास क्षेमेन्द्र कृत समयमातृका सम्पूर्ण

क्षेमेन्द्र कृत देशोपदेश (अनुवाद)

प्रथम उपदेश

१ : देव गणेश की जय हो, जिसके कमल नाल जैसे दांतों के ऊपर नीचे करने की चमक से दशों दिशाएं हंस रही हैं।

२ : व्यसन रूपी बादल की बिजली वेश्याओं की जय हो। कुटिलाई की कला के नट विटों की जय हो। हमेशा जनरूपी वृक्षों को गिराने वाली, मायारूपी वेगवती नदी की तरह, कुटनियों की सदा जय हो।

३ : जो दंभ और माया जैसे दोषों में फंसे हैं उनके लिए यह मेरा यत्न नहीं है, मैंने तो यहां हंसी के बहाने से लोगों के सीख की कुछ बातें कही हैं।

४ : हंसी से बहुत लजाकर आदमी बुराई में नहीं फंसता; ऐसों के लिए ही मेरी यह मेहनत है।

५ : खल को नमस्कार जो सदा छांटने (खंडन) में कुशल, बहुत दोषों वाला तथा व्यर्थ की बातों (तुषपूर्णाशया) से भरा है। ऊखल को भी नमस्कार जो हमेशा छांटता है तथा बहुत से दानों और भूसियों से भरा रहता है।

६ : जो शत्रु और मित्र को एक भाव से देखता है और मान और अपमान में एक सा रहता है, जिसे दूसरों की रोज़ी अथवा चित्तवृत्ति मारने का अभ्यास है, ऐसे खल और मुमुक्षु को नमस्कार।

७ : जीभ से सत्पात्र (अच्छा बरतन, भला आदमी) को गंदा करने वाला, भोजन का लालची (पिंडार्थी) झगड़ालू और हमेशा गंदा—ये बातें खल और कुत्ते में समान हैं।

८ : मंदता, पापग्रह (दुष्ट के अर्थ में पापी), क्रूरता से शुभ काम में अनिष्ट पैदा करने वाला—ये बातें खल और शनि में समान हैं। यह अचरज है कि शनितुल्य होने पर भी दुष्ट मनुष्यों के लिए अशनि (वज्र) है।

९ : आश्चर्य है कि मूर्ख और लंठ खल अपने पुण्यों से अपनी तारीफ छांटने में तो शेषनाग से हैं, और दूसरों की निंदा में बृहस्पति से।

१० : खल भलेमानुसों की बुराई में चारों तरफ आंखें गड़ाए और मुंह बाये रहता है, पर विद्वान सब के ऐबों को ढांके रखता है।

११ : ईर्ष्या रूपी गले के रोगी दुष्ट की जीभ संड़सी (कंकमुख) से पकड़ कर खींचने पर भी उससे भले की तारीफ नहीं निकल सकती।

१२ : स्वभाव से ही मायामय, रागद्वेष और मद से भरा, बड़ों को भी भुलावे में डालने वाला, संसार की तरह दुर्जन है।

१३ : लज्जा, दुःख और आकर्षण का हेतु, कामोद्दीपक जघनस्थल (योनि) की तरह खल ने किसे नीचा नहीं दिखलाया।

१४ : अपने अथवा दूसरे के खाने का भेद भूलकर, अपने प्रभु के पास बैठ कर, ब्रह्मविद्या की तरह बदमाश, कान में बदमाशी का पाठ पढ़ता है।

१५ : खल सब की निंदा करता है, पर खल की कौन निंदा करता है। गंदे कपड़े की गंदगी का कौन विचार करता है।

१६ : हंसी खेल में वह ख (आकाश) में भी चित्र बना सकता है, बड़ों के बीच में वह लघु (छोटा) है, इसीलिए वह खल कहलाता है।

१७ : धन से मतवाला खल, मालिक बना नीच, तथा पद पर आसीन बदमाश से बच कर हाय जनता तू कहां जायगी ?

१८ : टूटे हुए दांतवाले सर्प की तरह मूर्ख खल अच्छा है, पर पंखदार काले सर्प की तरह पंडित खल अच्छा नहीं।

१९ : हमेशा दूषण से अनुगत, जनस्थान (दंडकारण्य का एक भाग) को उजाड़ने वाला, अभिमानी, देवताओं का द्वेषी, नरभक्षक खर राक्षस तथा बुराइयों से भरा, बस्तियों को उजाड़ने वाला, अहंकारी, विद्वानों का द्वेषी और आदमियों को चबा जानेवाला खल है।

२० : अगर दैव योग से खल भलमनसाहत पर उतरता है तो मानो वन में दोनों हाथ उठाकर बंदर तप करता है।

२१ : खल होकर गुणों की प्रशंसा करता है, यह व्यर्थ है; प्रेम करता है, यह बेकार है; दुष्ट गरदन मरोड़ता है, यह झूठ हो नहीं सकता।

२२ : रात दिन कान में बदमाशी का मंत्र जपता हुआ, रईस को अपने बस में करके, खल चारों ओर वैसे ही अपना दबदबा जमा देता है जैसे मौन जप से मातृका और शिव साधन।

२३ : खल की सभा के दरवाजे की धूल जिसके सिर पर गिरी है वे दोषी हैं गुणी नहीं; उनके पैदा करने में गुण का स्थान नहीं।

२४ : टेढ़ी भौंहे करके देखनेवाला, जरा से ही धन से मदमाता, बढ़चढ़ कर बोलनेवाला, वह विधाता की अजीब बनावट है। सभा में दुर्जन सज्जनों के, कैलास की तरह विस्तृत यश को मलिन करता है।

दुर्जन वर्णन नामक पहला उपदेश समाप्त

दूसरा उपदेश

१ : कठोर, सब तरह से निष्फल, अंत में विट का भोज्य कत्था और कठोर, ठनठन, अंत में विट का ने वाला लालची को नमस्कार।

२ : जितेन्द्रिय, धूल में लोटनेवाला (पांसुशायी) बिना साथी का (निस्संगः) मुट्ठी भर अन्न पर जीनेवाला (प्रसृति पंच) कंजूस, क्रोधहीन, धूल से सने, अकेले, मुट्ठी-भर अन्न पर जीने वाले मुनि की तरह है, केवल उसकी लालच बढ़ती जाती है।

३ : सब लोगों का बुरा चाहनेवाले, सब कष्टों के घर लालची से रिश्तेदार हमेशा, श्मशान से लौटने की तरह, उलटे लौटते हैं।

४ : हमेशा लोगों के थूके जाने वाले, रात में भी जागते रहने वाले उल्लू की तरह, लालची का दर्शन कल्याणकर नहीं है।

५ : खूब लाल मुंह वाली पिरकी और खूब मालदार कंजूस को दबाना ही लाभ-कारी है।

६ : बुड्ढ और कंजूस का जन्म भर का कमाया हुआ धन, जमीन, घर और स्त्रियां अंत में दूसरों के लिए हैं।

७ : घास भूसे में भी खोजबीन करने के लिए हजार आंखों वाला (सहस्त्राक्ष), घर के खर्च में बज्रधारी, खाने कपड़े में कांट-छांट करने वाला कंजूस हजार आंखों वाले, बज्रपाणि, मेघदलन इन्द्र की तरह है।

८ : नीरस कंजूस की बातों में मिठास कहां? बिना नमक वाले के घर में लुनाई कहां?

९ : नंगा, रूखा, न नहाने से सदा जटियाए बालों वाला, गंदी गरदन वाला कंजूस नमक न खाने से, बाघम्बर पहने, रूखे, सदा भस्म लगाने से जटाधारी, विष से नीलकंठ, लवणासुर को मारनेवाले शिव की तरह है।

१० : काम में तकलीफ और रुकावट होने पर भी वह कंजूस पैसा नहीं खरचता। संचय में ही एक आंख गड़ाए कंजूस, काम में बाधा आने पर भी पैसा न खरचने वाले काने शुक्र ग्रह की तरह है।

११ : निःसत्व समुद्र, छायाहीन वृक्ष और जमीन के लोभी कंजूस की लोकातीत छटा है।

१२ : संसार में कंजूस के समान दाता कौन है जो स्वयं नहीं खाता पर याचकों को गर्दनिया और घर में ब्योंड़ा देता है।

१३ : दिन भर फांके के बाद रात में खानेवाला, शुद्ध साग की जड़ का झोल पीनेवाला, आश्चर्य है कि ऐसा कंजूस नरक में पड़ता है।

१४ : पगड़ी (पटी) दादा की खरीदी हुई, उसके भी पहले पीढ़ी की खरीदी धोती-(शाटक)—कंजूस के दिव्य कपड़े युगों तक नहीं फटते।

१५ : उत्सवों को छोड़नेवाले और त्योहारों की परवाह न करनेवाले कंजूस की कभी नमक न देखनेवाली स्त्री को उसके पड़ोसी न्योता देते हैं।

१६ : घर खर्च के लिए मुट्ठी भर अन्न देने में भी कंजूस की जान निकल जाती है, लेकिन दूसरे का मुट्ठी भर लेकर वह किसी तकलीफ को नहीं गिनता।

१७ : अपने पिता के श्राद्ध के दिन तथा तेहवारों (देशोत्सव) के दिन कंजूस सूतक अथवा ज्वर का बहाना करता है।

१८ : एकाएक अपने घर स्वेच्छा से रिश्तेदारों को आया देख कर कंजूस अपनी पत्नी के साथ लड़ाई का बहाना करके अनशन कर लेता है।

१९ : कंजूस शाम को पाहुन के आने पर भोजन कराने के डर से न उससे कुशल प्रश्न पूछता है न सुनता है।

२० : गाने से वह घबड़ाता है, किसी को छूना नहीं चाहता, भोजन से बैर साधता है, सुगंधि से विमुख रहता है, रूप की उसे चाह नहीं, वह सब इंद्रियों का त्यागी है।

२१ : याचकों से झगड़ने वाले कंजूस से शव बेहतर है जो चुपचाप श्वासहीन होकर मांसखोर पशु-पक्षियों का भोजन है।

२२ : जीते जी वह अपने शुरू से इकट्ठे किये हुए धन से एक कौड़ी भी नहीं निकालता, पर मरने पर उसका सब का सब एक साथ ही चल देता है।

२३ : खरचने में डरपोक, लड़के के कामकाज में भी पुरोहित को कुछ न देने वाले कंजूस की पत्नी अपने यार के साथ मौज उड़ाने में खरचती है।

२४-२५ : चांडाल की सहायता से भी जरा-सा लाभ देखकर कंजूस काम पूरा होने की आशा से उसके दोनों पैर चूमता है। बाद में शुद्धि (खर्च) के डर से नियम पेश करता हुआ वह खाना पीना, विष की तरह छोड़ देता है।

२६ : निठुराई, अलगंठ रहना, बदमाशी, क्रूरता, चंटपन, भलाई को भुला देना, ये सब कंजूस के लक्षण हैं।

२७ : जो पैसे खर्च होने के भय से उपकारी की भी बुराई करता है, ऐसा कृतघ्न भलेमानसों से निंदित, उसे कंजूस समझिये।

२८ : जहां चूल्हा नहीं जलता, जहां हंसी ठठोली नहीं होती, आराम रहित, निर्जन, उत्सव कथा से विहीन जो हो, वही कंजूस का घर है।

२९ : मंदाग्नि से पीड़ित, पीलिया का रोगी, मुंह से लार टपकती हुई, आंखों में कीचड़ भरा हुआ, मुंह से बदबू निकलती हुई—ऐसा कंजूस होता है।

३० : कंजूस के गंदे दातों में तथा धुयें से गंदे बने पीले पड़े कंबल में जरूर लक्ष्मी रहती है क्योंकि वह नीच जनों के साथ रहने वाली है।[1]

३१ : उसके दांत ज्वर के मूत्र जैसे पीले हैं, उसका मुंह पके फल की तरह है, रूखा-सूखा खाने वाले कंजूस का शरीर रूखे चमड़े जैसा होता है।

३२ : कंजूस के जिस पाप से लक्ष्मी घड़े में बंद करके गढ़े में गाड़ी जाती है, उसका वही पाप उसे कुंभीपाक नरक में गलाता पचाता है।

३३ : सब नाश करनेवाला काल है, उसे भी कंजूस भूल जाता है, इसलिए वह साठ बरस का चावल (अधिक मुनाफे की आशा से) भी नहीं बेचता।

३४ : अतिवृष्टि और अनावृष्टि के समय भुखमरी और उपद्रव चाहनेवाला अपने अन्न की शान से नाचता है।

३५ : जो जीवों के लिए रात है उसमें संयमी जागता रहता है। पर जिस समय सब जागते हैं वही कंजूस की रात है।

३६ : वह वेवकूफ लाभ की आशा से धन बटोरता है, यति की तरह संयम से इन्द्रियों को जला देता है, अपने धन के नाश की रक्षा करने वालों का आचार्य प्रवर कंजूस खरचने के डर से अपनी स्त्री के साथ रति भी नहीं करता।

कदर्यवर्णन नामक द्वितीय उपदेश समाप्त

तीसरा उपदेश

१ : धन की लोभी (अर्थलुब्धा) प्रौढ़ा, नकाशीदार अलंकारों (चित्रालंकार) को लूटने वाली, स्वच्छंद वेश्या और कवि की अर्थवती, प्रौढ़ा, चित्रालंकारों से वर्जित स्वच्छंद वाणी को मैं नमस्कार करता हूं।

---

१. चंडाल आदि नीच जातियों के लोग हाथीदांत से टेसू को मैले कंबल में लपेट कर लक्ष्मी की तरह पूजते हैं, उसी की ओर संकेत किया गया है। बाण ने इसका उल्लेख किया है।

२ : लालच से प्रेम विहीन (स्पृहाराग विनिर्मुक्ता) काम की इच्छा से रहित (निष्काम), अपने मन की करने वाली (कामचारिणी), अपनी ही परवाह करने वाली निर्गुण वेश्या, स्पृहा और क्रोध से विमुक्त, निष्काम, स्वच्छंद, ध्यान में लगी निर्गुण योगिनी की तरह है।

३ : नीचों को संपत्ति भोगनेवाली, सदाचार से विमुख, दुख देने वाली वेश्या नीचों को उपभोग्य संपत्तिवाली, सदाचार से विरत, दुख देनेवाली लक्ष्मी की तरह चलायमान है।

४ : सब का संग करनेवाली, अन्त में फलविहीन वेश्या लोभ के आवेश में मूर्ख बने लोगों में ठांव-कुठांव नहीं जानती।

५ : सब कुछ लूटने पर तैयार वेश्या बूढ़ी होने पर भी, बढ़ी हुई लालच की तरह शांत नहीं होती। उस अपूरी को कौन पूर सकता है।

६ : सुरत में अपना शरीर सिकोड़ने वाली, खून घटाने वाली, जनता के पैसे लूटने वाली वेश्या कमजोरी में सिकुड़ी, रक्तहीन बदसूरत बुढ़ापे की तरह है।

७ : बुद्धि, भक्ति, युक्ति, शक्ति अथवा गुण, इन सबको कुलटा, खल सेवा की तरह, मान को कुम्हला देने वाली है।

८ : मृत्यु की तरह कुलटा का न बालकों से स्नेह है, न तरुणी में इच्छा और न वृद्धों में अनुरोध।

९ : सौ बरस साथ रहने पर भी उसका प्रेम बनावटी होता है। सुग्गी की तरह वेश्या साथ छूटते ही फौरन भागती है।

१० : फांस (पण) से ही सब कुछ हरने वाली, नखरे से आंखें मटकानेवाली, वेश्या सफाई से पांसे फेंककर सब कुछ हरने वाली जुआड़ी की माया की तरह, धूर्तों को भी मोह लेती है।

११ : चित्त के सद्भावों से वर्जित चपला नर्तकी, सूत से बंधी बेजान कठ-पुतली (यंत्रपुत्रिका) की तरह बनावटीपन दिखलाती है।

१२ : एक बाहर जाता है, एक भीतर आता है, एक दरवाजे पर आसरा जोहता है, सभा की तरह ऐसी वेश्या कामकाजियों से हमेशा घिरी रहती है।

१३ : बोली में शहद की धार-सी पर हृदय में छूरे की धार की तरह, वेश्या कुल्हाड़ी की तेज धार की तरह कामियों की जड़ काटने के लिए है।

१४ : सरलता में बाला, रति में प्रौढ़ा, सैकड़ों मायाओं में वृद्धा, बहुरूपिया वेश्या लहू और मांस से नहीं अघाती।

१५ : पंडित से मूर्ख, धनी से निर्धन, पवित्र से चोर, छोटे से बड़ा, वेश्या भाग्यवश लोगों को ऐसा बना देती है।

१६ : कोची (सुई से न छिदने वाली) पर प्रौढ़ा की नकल करने वाली बाला को पाकर सबेरे कामी चिल्लाता है—हाय, मैं लुट गया।

१७ : उभरे हुए नकली कुच (कूटकुच) वाली, सुरत में अयोग्य बाला प्रौढ़ा की तरह भाड़ा लेकर केवल चुंबनों से ही लोगों को लूटती है।

१८ : लोभ से खाला जिसे सौंपती है, शौकीन जिसे पसंद करते हैं, ऐसी वेश्या बिना गर्भ धारण किये पुरुष संगम करती रहती है।

१९ : 'मैं पहले पहल ऋतुमती बाला तेरे बगलशीर हुई हूँ', कामुकों से ऐसा कह कर वेश्या हमेशा मजे लूटती है।

२० : न चाहने पर भी बचपन से ही कभी भी उसका धकापेल सुरत नहीं रुकता, फिर वह किस पर प्रेम कर सकती है?

२१ : वेश्या के जघनरूपी बगीचे में यौवनरूपी वृक्ष फूलने पर रात दिन सोनहरे फूल इकट्ठे होते रहते हैं।

२२ : अपने पुण्यों से यौवन संज्ञक शरत्कालीन फल लगने पर वह अपने को सहस्र भग इन्द्र की तरह सौभाग्यशालिनी समझती है।

२३ : वेश्या के नखक्षत और दंतक्षत से भरे स्तन और कटे ओठ प्रेम और लज्जा के प्रतीक न होकर केवल दाम बढ़ाने के द्योतक हैं।

२४ : सब संसारी भाव अंत में नीरस हो जाता है, पर वेश्या का रति-समागम आदि मध्य और अंत सब में नीरस होता है।

२५ : सैकड़ों विटों से रद्दे खाई जिसकी कमर है, बटोहियों से चूमा जूठा मुंह है, सैकड़ों से मले गये स्तन हैं, वह किसकी अपनी होती है।

२६ : साफ-साफ अच्छा खाना छोड़कर जो अकेले में बुरा खाती है ऐसी जगत को ठगने वाली वेश्या अपने को ठगती है।

१७ : वेश्या रात को नौसिखुए के साथ पहला पहर कहानी और शराब पीने में, दूसरा पहर नखरे चोचले में और बाकी बची रात झूठमूठ नींद का बहाना करके बिताती है।

२८ : रति संगम में वेश्या का मन समाधि ले लेता है, प्रेम से वैसे ही घुलता नहीं जैसे पानी से पद्मपत्र।

२९ : वेश्या (दासी) सबेरे झूठमूठ उससे आकर कहती है आज मेरी सालगिरह है, पर रात में आते ही वह सिरदर्द या रिश्तेदार की मृत्यु का बहाना करती है।

३० : लोगों द्वारा नित्य रजस्वला, नीरस वेश्या का उपभोग काम और धर्म के लिये नहीं केवल धन नाश के लिए है।

३१ : जोवन ढल जाने पर सफेद बालों को रंगने में तत्पर तथा लोगों को बस में करने के योगों की जानकारी की इच्छुक वेश्या किसकी शिष्यता स्वीकार नहीं करती।

३२ : मछली के शोरबे, घी, दूध, लहसुन से वह अपने रूठे हुए प्रियतम की तरह जवानी को वापिस लाती है।

३३ : साठ बरस की भी वेश्या नौची (बाला) की तरह अपना चेहरा सजाती है। इससे ज्ञात होता है कि सृष्टि के आरंभ में अवश्य उसने कौओं के साथ अमृत पिया होगा।

३४ : झूठा सौदा बेचने के दोष से तथा ब्राह्मणों का माल हजम करने से गिरे हुए स्तनों को वेश्या यत्नपूर्वक छिपाती है।

३५ : वह विष (रसायन) क्या है हम नहीं जानते, हम भी क्यों न उसे पिएं जिससे पुरानी छिनाल ज्यों की त्यों दीख पड़ती है।

३६ : जरा सा घूंघट निकाल कर (छन्नाननार्धा), छाती उभार कर, झड़े बालों वाली बूढ़ी वेश्या जवानी का धोखा देकर बेवकूफों को लूटती है।

३७ : फटे कपड़े ओढ़े हुए (क्षीणाध्वान्तपटा), पानी भरी आंखों वाली (सवाष्पा) धुंधली नजर वाली (नष्टतारका) बूढ़ी वेश्या, सब कुछ लूट लेने में कुशल, हलके अंधेरे का कपड़ा पहने, धुंवासी, डूबे तारों वाली प्रभात बेला की तरह है।

३८ : बिगड़े खूनवाली, पीली पड़ी, जनने से कमजोर बनी वेश्या भूत के डर से गुरुओं से गंडा (रक्षासूत्र) मांगती है।

३९ : सिर और भुजाओं पर तथा कंठ में सैकड़ों जंतर (जतुरक्षा) पहन कर भूतों का डर दिखाने वाली वह लोगों की भेंट चाहती है।

४० : हमेशा पुण्यदिनों पर तीर्थ में खड़ी रह कर विधवा के वेष में सफेद कपड़े पहन कर वेश्या मैथुन बेचती है।

४१ : प्रसिद्ध शिवमंदिर में लिंग की पूजा और व्रत करके वेश्या महाश्वेता की तरह शैव लोक की अभिलाषा करती हुई निकलती है।

४२ : गुस्से, कोसने और कसम खाने से कमजोर बनी जीभ, हाथ और अधरों वाली, ठंडे कपड़े पहने, बिना यार के वह रात में ठंड से ठिठुरती है।

४३ : रोज उबटन लगाकर, आंखें आंज कर (वर्तिलिप्तनयना) वह गंदी वेश्या जिसके सामने आती है, वह फिर दूसरी ओर नहीं जाता।

४४ : वह धन की लोभी, देवपूजा और स्वप्नफल सुनने में तत्पर हमेशा ज्योतिषी के घर ग्रह दशा पूछने जाती है।

४५ : 'मैं बनारस जाती हूं, पर उसमें एक बड़ी अड़चन है, बिना प्याज के मैं वहां जी नहीं सकती,' ऐसा वह कहती है।

४६ : कुम्हलाई आंखों वाली, दीनता पैदा करने वाली, घरघरा कर बोलने वाली दुख से सांस भरने वाली नीच की गिड़गिड़ाहट की तरह बूढ़ी ठीक नहीं।

४७ : तेजहीन (नष्टच्छाया), अंजन लगाए (अंजनवती) रोगी (रोगार्त्या) सोने की पारखी (धातुवादिनी), लोगों को पकड़ने में होशियार वेश्या छायाविहीन अंजन का प्रयोग जानने वाले, कुंठ का सेवन करने वाले, धातुवादी, भूतावेश से युक्त, सिद्धों के गुणों की तरह है।

४८ : दिल और आंखें चुराने वाली, नखरे से भौंहें चलानेवाली वेश्या कपड़े पहन कर जब तक यह नहीं कहती कि 'तुम सबेरे आना, अब चल दो' तब तक धनी वहां रहता है ।

वेश्या वर्णन नामक तीसरा उपदेश समाप्त

चौथा उपदेश

१ : गहरे हलाहल विष से भरी, काली, कुटिला, वेश्या की रति को सजाने की कमी से बचाने वाली, महानागिन कुटनी को हमारा नमस्कार।

२ : इंद्र के भी राज्य को हर लेने में क्षम, देवताओं से वर्जित, शिव को भी भयप्रद, ब्रह्म हत्या की तरह इंद्र के राज्य को भी हजम करने वाली, विद्वानों से निंदनीय, संसार को भय देने वाली कुटनी है।

३ : कालरूपी कापालिक के भयंकर कंकाल के ढांचेवाली, खून चूसने वाली आकुल कुटनी आदमियों को खा जाती है।

४ : क्षण भर में बुद्धिमान बेवकूफ बन बैठता है, पैसेवाला (समुद्रोऽपि) कंगाल हो जाता है, कुटनी की आंखों में पड़ने से बाकी बचा भी समाप्त हो जाता है।

५ : भगदान के प्रभाव से रईस बनी, कान को सालनेवाली आवाज वाली कुटनी, भगदत्त कर्ण और शल्य से युक्त कुरुराज की सेना की तरह है, परंतु उस सेना में कृपाचार्य हैं और वह बिना कृपा के है।

६ : कांत, कलावंत और शूर को उलटे रास्ते ले जाने वाली, भयंकर कुटनी वैसे ही नहीं सहन करती जैसे सुंदर, कलाओं से युक्त चन्द्र को उलटे रास्ते जाने वाली घोर राहु की छाया सहन नहीं करती।

७ : वह जान-पहचान की परवाह नहीं करती, उपकार की उसे याद नहीं रहती, हमेशा बैरागिन बनी कुटनी, नीरसता में अंत होनेवाली खल की मित्रता की तरह है।

८ : बड़दंती, निर्दयी, यारों को खींचने वाली कुटनी मानों दांतों वाली, घोर नागपाश युक्त यम की दूसरी मूर्ति ही बन गयी हो।

९ : यह लोगों का बड़ा भाग्य होगा यदि मनुष्यों को चापड़ करने वाली और नौजवानों को बाल कंकाली की तरह खा जाने वाली कुटनी का सत्यानाश हो जाय।

१० : राम ने तारका को और कृष्ण ने पूतना को वृथा मारा, संसार में कांटे बोने वाली कुटनी क्यों नहीं मारी गयी।

११ : सब लोगों को मारने वाला यम भी कुटनी से डरता है क्योंकि स्नायु, चर्म और हाड़ बच जाने पर भी वह माया की तरह अक्षय है।

१२ : लड़ाई में नुचे बालों वाली, टूटे कानों वाली, नककटी कुटनी और डाइन समान हैं।

१३ : कुत्ते की दुम, बकरे की सींग, सर्प, ऊंट की गर्दन, खल और कुटनी का दिल, इन सब से ही मैं समझता हूँ कि कुटलाई जिंदा रहती है।

१४ : जवानी में दाम की नहर की तरह, रति वेचने में तराजू की तरह, वेश्याओं का हर तरह से काम साधने वाली कुटनी को विधाता ने बनाया।

१५ : जर्जर, बूढ़ी कुटनी मानों जांबवान की बड़ी बहन लगती है, हजारों वेश्याओं के घरों की रखवारिन दूसरी क्या हो सकती है।

१६ : धनी कामी को बेरोक टोक आया देखकर, बेधड़क कुटनी काम बनने की लालच से जीभ लपलपाती हुई बाहर निकलती है।

१७ : अच्छे गहने पहरे आदमी को भीतर घुसते देखकर कुटनी, कसाई जैसे पशु के सींग और खुर देखता है, वैसे ही देखती है।

१८ : लाड़-प्यार से भरी बोलीवाली, सब की माता की तरह कुटनी बूढ़े ब्रह्म को भी बेटा कह कर पुकारती है।

१९ : 'तुझ से बढ़ कर कोई दिलदार नहीं है, तेरा काना और गंजा होना शोभनीय है।' धन लूटने को तैयार कुटनी बदसूरत की भी बड़ाई करती है।

२० : कच्चे को वह बेरोक-टोक लूटती है और पके को सफाई से निगल जाती है, लुटेरी कुटनी मनुष्यों को बिलकुल खुख कर देती है।

२१ : प्रयत्नशील वेश्या के भोजन कामी से कुटनी ऐसे नहीं अघाती जैसे भैंसे से महाकाली।

२२ : अदृश्य साधनों से वह मनुष्य को खोखला करती है। जो जंभाई के लिए मुंह भी खोलता है उसकी वह जीभ खींच लेती है।

२३ : रात में हैजे से बीमार, रोती चिल्लाती और कै करती हुई बंधुजनों को सेवा से कुटनी की जान मानों फिर से लौटी।

२४-२६ : (पाठ भंग)

२७ : 'मैं भृगुतुंग जाती हूं', ऐसी तिथि निश्चित करके कुटनी ने रिश्तेदारों द्वारा लाया गया तर माल उड़ाया।

२८ : ज्वरातिसार और सूजन से पीड़ित रिश्तेदारों द्वारा तीर्थ ले जाई जाकर कुछ दिनों में विजयेश्वर से उलटी लौट आई।

२९ : सब चोर इकट्ठे हैं, किसने मेरी सोने की अंगूठी (हेमवालिका) उड़ा दी ? यह कह कर स्वस्थ्य कुटनी ने रिश्तेदारों को निकाल बाहर किया।

३० : वेश्या में आंख गड़ाए कामी के सुरत सुख में किसी प्राचीन राजा की कथा के बहाने कुटनी रोड़े अटकाती है।

३१ : घर-बिगाड़ कुटनी, दुर्दशा की तरह, क्षीण व्यसनी और मूर्ख को दुश्मनी से लड़ाई के लिए उभाड़ती है।

३२ : छूछे हाथ वालों के लिए विरक्त तथा उसे छिपे और खुले उपायों से निकालने में मुस्तैद कुटनी को नींद नहीं आती।

३३ : सब कुछ देने पर भी असंतुष्ट, खूब प्रेम करने पर भी रूखी, कामियों के लिए विघ्नस्वरूप कुटनी को किसने बनाया। आंख से आंख मिलाने वाली, रक्त-मांस की लोभी, सब लोगों को चट करके अट्टहास करने वाली, झगड़े का सोता बहाने वाली कुटनी संसार में विचरती है।

कुटनी वर्णन नामक चौथा उपदेश समाप्त

पांचवा उपदेश

१ : क्षीण, गुणहीन, सदोष, कलाधारी तथा कुटिल कृष्णपक्ष के चन्द्रमा को तथा गरीब, गुणहीन, दोषी कला के पारखी और टेढ़े विट को नमस्कार।

२ : विलासी और भुजंग (सर्प तथा कामी) की चेष्टा उद्वेगकारी होती है। विट और सर्प इन दोनों का केवल अपने भोग (विट के अर्थ में मौज, सर्प के अर्थ में फन) का अभिमान होता है।

३ : दूसरे की स्त्री में अनुरक्त (परदारानुबद्ध), बदमाश (सराग) विट तथा पारे से बने लाल और भयंकर परिणाम वाले विष में कौन बड़ा है, मैं नहीं जानता।

४ : विट की तुलना हम सदा ऊधमी, ओधी, बदमाश, और चपल बंदर से कर सकते हैं।

५ : अन्तर्मुख, अंतरालीन, ध्यानी और इंद्रिय निग्रही होकर क्षणभर में आत्माराम में स्थित विट योगी पद पा लेता है।

६ : वेश्याओं से थूका हुआ मुखवाला, भलेमानसों से विलग, अशुभ की मूर्ति की तरह विट घूमा करता है।

७ : हाथ में सूई लेकर यज्ञोपवीत पहने हुए, कड़े पहन कर क्षीण विट, सूचीहस्त, सूत्रधार और प्रवेशक से युक्त कपट रूपी नाटक में विट रूपी नट काम कर रहा है।

८ : कुलटा के घर में कुटनी रूपी शूर्पणखा के नाक कान काटकर विट काकुस्थ राम की तरह विराजता है।

९ : आने जाने में अखिन्न, हमेशा चक्र चलाने वाला, तेज आवाज़ से अपने को प्रकट करने वाला विट मानों बिना थके आने जाने वाला, हमेशा पहिये पर घिसटने वाला, खड़खड़ाहट से अपने आने का पता देने वाला छकड़ा है।

१० : स्त्रियों में शूर, दोषाकर (चंद्र अथवा दोषी), चित्त में बक्र बुद्ध, पाप में गुरु (नक्षत्र) अथवा भारी व्यय में शुक्र (नक्षत्र अथवा कंजूस) तथा रास्ते में शनैश्चर (ग्रह और धीमे चलनेवाला) है।

११ : वेश्याओं द्वारा हंसी उड़ाये जाने वाला, हमेशा धता बताए जाने वाला विट, जिस तरह लकड़ी से मारने पर कुत्ता फिर घर में घुसता है, वैसे ही घुसता है।

१२ : गरीब फांकेकश विट झूठमूठ सूने देव मंदिर में भोग लगाने का उपक्रम करके बड़ाई लूटना चाहता है।

१३ : भयंकर गरमी में मोटा कपड़ा पहने तथा माघ में झीना कपड़ा पहने विट वेश्या के हाथ के केसरिया थापे लगा हुआ घेरदार पाजामा (पिंग) पहनता है।

१४ : स्वयं अपने कपड़े में अतर लगाकर तथा स्वयं शरीर पर नखच्छेद करके वेश्या संभोग के सौभाग्य को प्रकट करता हुआ विट जाता है।

१५ : सिर पर किनारेदार कपड़े से (पटपल्लव) घोघी बनाकर विट वेश्याओं की पान की पीक से भर जाता है।

१६ : टुड्डी पर दाढ़ी बांधने से फर्राटे बाल वाला विट दिन में मंदिर के अध्यक्ष का मुंह निहारता है।

१७ : पान से दांत चमकाते हुए, पोपले मुंह से दन्त्याक्षर युक्त पदों से बिना ओठ बंद किये विट कड़ी गालियां बकता है।

१८ : रूखे और बाद में तेल लगे नकली घुंघराले (कृत्रिम कुंचित) बालों वाला, सिर हिलाता हुआ, बाल ही को अपना धन मानने वाला विट वेश्या से बात करता है।

१९ : हाथ में देर तक मना करने के सूचक कड़े को संवार कर सब गुन आगर विट अंगुली से इशारे से सब कुछ कह देता है।

२० : यत्नपूर्वक खैर की धड़ी ओठों पर जमा कर, चकला ही जिसका धन है, ऐसा विट बावड़ी पर मांड़ा खाता है।

२१ : रात में पुआल पर करवटे बदलते उसे नींद नहीं आती, तूस की चादर (तूस्त प्रावरण) देखकर—

२२ : लोगों के सामने वह शेखीबाज विट अपनी माता से कहता है—'यह मेरी पनिहारिन है।'

२३ : सिर पर ढेला मारने से मस्तक फूटने की शंका से बड़बड़ाता हुआ बूढ़ा विट वेश्या के घर जाता है।

२४ : कर्ज से लदा, रागी वेश्याओं के नखरे से मंडित तथा दुश्मनों से दंडित विट पंडित विदेश जाता है।

२५ : वह शठ महीने भर किसी खश की कुटी में ठहरकर दाक्षिणात्यों की ऐंठ (भंगी) और बोली ठोली से सान बघारता है।

२६ : अफसोस है कि परदेश गया हुआ विट अपशकुन की तरह असह्य जूंओं से भरी चादर जूड़े पर बांधता है।

१७ : बूढ़ा विट रसायन शास्त्र, विज्ञान, असंगत योगशास्त्र तथा अतर बनाने की युक्तियों से मूर्खों को ठगता है।

२८ : विटों का प्रधान यों ही अपना समय खराब करता है, हमेशा गंदी झोली और भस्म की डिबिया (मूषा) से युक्त, उलझे खड़े बालों से भीषण, काजल से पुते ललाटवाला, फटे कपड़े पहने, रस से झुलसा हुआ, वह पिशाच घूमता है।

विट वर्णन नामक पांचवां उपदेश समाप्त

छठा उपदेश

१ : छात्रालय (सत्र) में हमेशा बाई और स्त्री को बैठानेवाले, क्रोधी, विषैले, रात में पेट के दर्द से पीड़ित छात्र तथा हमेशा अपनी बाई ओर पार्वती को धारण करने वाले, उग्र, विषभोजी तथा तीखा त्रिशूल धारण करने वाले शिव को नमस्कार।

२ : काल की हड्डी के ढांचे की तरह विदेश से आए छात्र को लोग भीड़ में दूर ही से नर-कंकाल समझ कर अपने को बचाते हैं।

३ : पवित्र क्षत्रिय के भी छूने से भनभनाने वाले, दूसरे के भोजन पर मस्त गौड़ के सामने मुनि गण भी लजाते हैं।

४ : ग्रह शांति में जीमने वाला, भोजन पर लौ लगाये, झुका हुआ, दो-दो पहर तक व्रती छात्र जप करता रहता है।

५ : छात्रालय में तिलकधारी बनकर भोजन और मालिश से वह सांप की तरह केंचुल छोड़कर, फिर नया हो गया।

६ : व्रत से खिन्न विदेशी (दैशिक) वेश्याओं का भाड़ा (भाटी) पूछता है, सदा जीत वाले जूए की बात पूछता है और भोजन में मांस मांगता है।

७ : बूढ़े तोते को जीतने की आशा से छात्र पंडिताई की ओर झुका। मुश्किल से तो वह ओंकार पढ़ पाया, स्वस्तिज्ञान की तो बात ही क्या है।

८ : अक्षर ज्ञान न होने पर भी वह अहंकार से ऐंठा हुआ है। ज्ञानार्जन के लिए गौड़ विद्यार्थी महाभाष्य, तर्क और मीमांसा पढ़ना शुरू करता है।

९ : गौड़ कोख में आंचल दबाकर, दूसरे के छूने से अपने को बचाता है, दंभ के बोझ से दबकर मानों वह एक तरफ टेढ़ा हो जाता है।

१० : आलते भरे चमचमाते नखों वाला, नकाशीदार कपड़े (चित्रांबर) पहन कर वह चक्र और नाराच के संचय का इच्छुक स्याही-भूर्जपत्र से लजाता है।

११ : गुस्से से लाठी मार कर सब नौकरों को निकाल बाहर करके वह उसी नौकर की परवाह करता है जिसकी घरनी जवान होती है।

१२ : वह जूतों की बुरी चरमराहट की शेखी से धीरे-धीरे चलता हुआ लाल पेटी में छुरी खोंसे हुए कमर की ओर टकटकी लगाए रहता है।

१३ : विदेशी (दैशिक) मौज में हाथ सिकोड़, भौहें टेढ़ी करके वेश्या के घर के आगे की गली में शाम को घूमता है।

१४ : जुआरी, कुटनी, वेश्या, मोची, और नाई, ये पांच व्यभिचारी बदमाश गौड़ की गठरी की गांठ काटने वाले हैं।

१५ : वह छात्र कजरौटे जैसे मुख से सनीचर को जीतता है, पर बेहूदे गायक उसके कामदेव होने का गाना गाते हैं।

१६ : धकापेल रति करने वाला वह अपने कड़ेपन से ख्याति पाता है इसलिए तिगुने भाड़े पर भी वेश्या उसे नहीं मिलती।

१७ : सेज पर जब दैशिक गहरा जुट बांधता है तो वेश्या भयभीत होकर चिल्लाती है—'हाय मैं मारी गयी।'

१८ : दूसरे नाम से भी दैशिक से जो वेश्या भाड़ा वसूल करती है वह भाड़ा चौगुना होकर उसके कमर दर्द की दवा के रास्ते निकल जाता है।

१९ : स्नान के समय जिसकी शुद्धि के लिए नदी भी काफी नहीं पड़ती वही वेश्याओं की जूठी शराब और भोजन चखता है।

२० : सरदी में दैशिक वेश्याओं के कोठों पर सिर पर चादर (शिरःशाटी) बांध कर हंसता हुआ, सफेद दांतों वाले लंगूर जैसा लगता है ।

२१ : रांड़ अथवा परस्त्री की खोज करने के लिए वह अपने पिता के नाम से घर-घर में पहचान बढ़ाता है।

२२ : मठ में मिलने वाले भोजन की बात कह कर 'आप क्यों हंसती हैं?', 'क्या कहती हैं?' इस प्रकार की मीठी-मीठी बातों से वह धूर्त पराई स्त्रियों को विश्वास दिलाता है।

२३ : दैशिक चमचमाते सोने के कुंडल (कर्णसुवर्णांकः) तिपेची अंगूठी (त्रिगुण-वालकी) पहन कर सबेरे कुबेर की तरह निकलता है।

२४ : सांझ को जुए में हार कर नंगा बना, मुंह बनाए, धूल से सना, लजाया हुआ वह छात्रालय का मालिक पिशाच की तरह लगता है।

२५ : पेट पर फेंटा कस कर, बालों की गांठ लगाकर, चिल्लाते हुए हाथ में लाठी लेकर छात्र ने मठ को ढहा डाला।

२६ : छुरी की बहुतेरी चोटों से बिंधे पेटवाले, मरने-मारने पर तैयार गौड़ रूपी यक्ष के विरुद्ध मठ में जाने वाला कौन है।

२७ : प्रीति, भय, अथवा गौरव की परवाह किये बिना वह सब डकार जाता है। इस संसार में मुश्किल से पंजे में आने वाला गौड़ लड़ाई लड़ता फिरता है।

२८ : दूसरों की तरह गौड़ भी सत्र बंद होने से द्वादशी को उपवास करता है, पर खुद पकाए मछली के मांस से वह उस व्रत का पारण करता है।

२९ : दैशिक अपने देश में नाई, मोची, धीवर अथवा कसाई था। निश्चय ही वह संध्या पाठ तक नहीं जानता।

३० : सत्र में योग्य छात्र के भोजन कर लेने पर वेश्याएं खीर-लड्डू से उसे संतुष्ट करतीं हैं।

३१ : मठ रूपी बन में रंडीबाज, जुआड़ी, लफंगा (चाक्रिक) अवसरवादी तथा पेट में छुरी मारने वाला छात्र पंच तप करने वाले महामुनि की तरह है।

३२ : न तो वह ब्रह्मचारी है न गृहस्थ, न तो वाणप्रस्थी है न यति, छात्रों का यह पंचमेल (पंचभद्र) आश्रम है।

३३ : जिसकी कृपा से दरिद्र दैशिक लाया गया, उसी का वह जहरीला भोजन बन ब्रह्म हत्या करता है।

३४ : शृंगारहाट के ज्वर से पीड़ित, छात्रालय रूपी सन्निपात का रोगी, मठ का नाश करने वाला दैशिक मालताल अथवा हार्दिकताओं से साधा नहीं जा सकता।

३५ : दही दूध पर सामने से टूटने वाला (शृंगग्राही) रसोइये को मारने में लाठीबाज, मठ का छात्र हमेशा छत्र हाथ में लिये रहता है। फिर भी वह सींगी और दंड लिये हुए छातेवाला दीक्षित नहीं है।

३६ : चक्रांकित वैष्णव गौड़ चोरी से शैव बन कर शिव मंदिर में घुसने पर कर्मचारियों द्वारा पकड़जाने पर शेखी से गरदन उठाकर कहता है—'जानते नहीं, मैं ठाकुर हूं।'

३७ : छात्रालय का माल हड़प कर जो बौद्ध दैशिक मरे, वे ही मुर्गे होकर छात्रालय की तूरी (तूर्य) की तरह बांग देते हैं।

३८ : सवेरे झगड़ालू दैशिक बनिएं की दुकान पर कम पैसा बेकर अधिक सौदे के लिए बखेड़ा करता है।

३९ : छात्र रोगी के छत्र, पेटारियां, पट, धोती, (शाटक) और कंबलों को पहले से ही क्षण भर में आपस में बांट कर, जैसे मछलियां एक मछली को जल्दी से चट कर जाती हैं, वैसे ही चट कर जाते हैं।

४० : श्राद्ध पक्ष में मठ का छात्र कभी ठाकुर के घर खाकर मानो सूली पर चढ़े हुए की तरह नीची नजर नहीं करता।

४१ : यह मठ बदमाशों का मठ नहीं, न यह ऊंचा हठियों का मठ है। पुराने राक्षसों से भरी लकड़ी के पर्वत (दारुगुहा) की यह भयंकर गुहा है।

४२ : मठरूपी श्मशान के वेताल, स्नान घर के पिशाच, छात्रालय में छात्र लोगों को डरावने भैरवों की तरह लगते हैं।

४३ : क्रोधी बंदर को भेंट कर, भयंकर सर्प को गले में बांध कर तथा बीमार गौड़ को पाकर वैद्य की कुशल कहां।

४४ : स्नान, दान, व्रत और श्राद्ध में अकारण क्रोध से जलने वाला, 'तेरी मां....' ऐसा वह सबसे कहता है और करता है।

४५ : बिना थके दिन में वह लजीली सत्रपाली के साथ घूमता है तथा कुमारी के साथ विरूप हाथी की तरह रमण करता है। वह मठ का पापी और बदमाश विद्यार्थी अपनी कुलाली के साथ रमण करके उसे निचोड़ डालता है।

छात्र वर्णन नामक छटा उपदेश समाप्त

सांतवां उपदेश

१ : ऋतुमती, सुंदरी, जवान, परपुरुष के स्पर्श से अछूती, गढ़े में पैदा हुई लता की तरह, कन्या को हमारा प्रणाम।

२ : अविद्या, बुढ़ापा, तथा हवस से मदमाता बूढ़ा कन्या की उसी तरह मंगनी करता है जैसे कंजूस संपत्ति की।

३ : बुद्धिमान और हंसौड़ बूढे की सगाई पर कहते हैं—'यह आदमी परलोक के लिए विवाह कर रहा है।'

४ : अरुचि पैदा करनेवाला, जोर से सांस भरने वाला, धुंधली आंखों तथा फीके रंग वाला, बूढ़ा मानों मूर्तरूप ज्वर होकर आ गया हो।

५ : 'बेटी, यह धनी बर असमय में ही बूढ़ा हो गया है', आंसू बहाती हुई अपनी कन्या से बूढ़ा बाप ऐसा कहता है!

६ : 'बूढ़े के हाथों से मेरे इन कुचों का कैसे स्पर्श होगा' आहें भरती हुई कन्या अपनी जवानी पर शोक करती है।

७ : बूढ़ा विवाह में कन्या रूपी मंजरी का पाणिपल्लव पकड़ कर और कुचरूपी फल पर मुंह मार कर बंदर सा लगता है।

८ : बहू बरात में आये जवानों पर आंखें डालने के बाद बूढ़े की सेज को बध्य-शिला मान उस पर नहीं जाती।

९ : भार्या के समागम में, सिर झुकाने पर वह बूढ़ा लात खाने से जमीन पर बेहोश होकर गिर पड़ा।

१० : लार भरे मुंह से चुंबन चाहने वाले बूढ़े से उसने कहा, 'धिक्कार है, तेरी अक्ल खब्त हो गयी है।

११ : 'मेरे परदादा तेरी तरह हैं। तू लजाता नहीं। बता, तुझ कुपति द्वारा मैं यहां किसके लिये लाई गई?'

१२ : इस तरह बकझक करने वाली बहू से वह बूढ़ा गिरे दांतों के बीच से गल-गलाते और लार भरे वाक्यों से सोने की प्रार्थना करता है।

१३ : 'हाय रे' कहने वाली बहू बूढ़े कामी से छू जाने पर मानों डसी हुई सी खाट छोड़ कर एक घर से दूसरे घर भागती है।

१४ : रिश्तेदारों द्वारा बलपूर्वक फिर से शैया-गृह में लाये जाने पर बहू बूढ़े का चंडाल की तरह स्पर्श नहीं करती।

१५ : चादर (अंशुक) ओढ़कर अलग सोती हुई प्रिया का आलिंगन चाहने वाले बूढ़े को इस ईर्ष्या से खीझ कर मानों नींद नहीं आती।

१६ : पहले के यार से भेंट करके जब बहू प्रथम रजोदर्शन का ढोंग करती है तो लोग सबेरे बूढ़े के मुंह पर बधाई के लिए सिंदूर छिड़कते हैं।

१७ : सब तरह के हुक्म बजा लाने वाले, फूल गहने और कपड़े देने वाले बूढ़े की बहू कड़ुई दवा की तरह जरा देर के लिए सहन करती है।

१८ : कमजोर बूढ़े का गुप्तांग बार-बार छूने पर भी उसे रति अथवा विरति पैदा नहीं होती।

१९ : प्रमादवश अगर बूढ़े को बेमौके की तेजी आ गयी तो शुक्र के रास्ते उसकी जान निकल जाती है।

२० : भरी छातियां, जंघे और जघनवाली तरुणी को पुरानी बीन की शक्ल वाला बूढ़ा जब छूता है तो रुखाई भी रुखी पड़ जाती है।

२१ : पुष्टिकर भोजन से बाजीकरण चाहने वाले बूढ़े की तीन बरस की तैयारी दस्त और कै साथ गायब हो गयी।

२२ : अहो, अंत में बूढ़े का विवाह उसके सुकर्मों से हो गया, पर उसकी स्त्री सुगत की जगह उसका नाम जपती है।

२३ : उत्सव मनाने वाले बूढ़े की, दूसरे के बीज से गर्भिणी स्त्री, उसे हमेशा पैर दबाने का हुक्म देती है।

२४ : अनुनय के साथ बंधु लोगों के बीच खुशी से पांव पर गिरकर पुत्र-जन्म में बूढ़े ने अपनी स्त्री के मार्फत अपने दुश्मनों को न्योता दिया।

२५ : 'घुने और जले पेड़ को यह आंकुर निकला', ऐसा कहती हुई स्त्रियां उत्सव में नाचती थीं।

२६ : अजीर्ण से बीमार बूढ़े को छट्ठी के रतजगे से जानमारू भयंकर सांस उठी।

२७ : 'अरी बूढ़े की प्रिये, एक साथ पुत्रवती और विधवा बनी तू धन्य है', स्त्रियों के ऐसा कहने पर भी गृहिणी अमंगलकारी आंसू नहीं गिराती।

२८ : कुछ कुशल चाहने वालों ने कहा कि जवानी में स्त्री के पति का मरना उसका दुर्भाग्य है।

२९ : मैंने सब आफतों की जगह, निंद्य, जवान स्त्रीवाला, बूढ़ा और वेश्याप्रेमी गरीब न देखा न सुना।

३० : बूढ़े के अधमरे होने पर चोर की तरह गृहिणी उसके पास जाकर, 'तेरे पास कहां और कितना धन है', यह पूछती है।

३१ : जिसकी रति-शक्ति खो गई है, जो केवल छूने में ही मजा पाता है, जो रात में तीखी बातों से घरनी द्वारा सताया जाता है, ऐसा वृद्ध रूपी यक्ष, भुजा रूपी सर्प से रक्षित, सुंदर भगरूपी खजाने को अपने घर में जुगोता है।

बूढ़े को स्त्री नामक सातवाँ उपदेश समाप्त

आठवाँ उपदेश

१ : मैंने संक्षिप्त रूप से एक जगह देशी भाषाओं के शब्द बीच-बीच में डालकर बहुत से लोगों का वर्णन कर दिया है।

गुरु

२ : रागद्वेष, भयंकर मोह, लालच और दंभ से भरा, भारी होने पर भी छुटपने का कारण, अनेक चालबाजियों से भरा, संसार की माया की तरह मैं गुरु (शैवाचार्य) की प्रार्थना करता हूँ।

३ : गुणहीन, चिल्लानेवाला, शिष्यों की स्त्रियों का गुरु कहता है कि दीनारों का क्षय करना इसी का नाम दीक्षा है, (दीनार का 'दी' और क्षय का 'क्ष') और ऐसा ही कराता है।

४ : 'इस कलयुग में खिलवाड़ में ही मोक्ष पाना सुलभ है', हिचकी भरते हुए ज्ञान से भरे गुरु ऐसा कहते हैं।

कायस्थ (दिविर)

५ : देवताओं, ब्राह्मणों, पुर, नगर, ग्राम और घोष का सब कुछ लूटकर, फिर से लूटने को तैयार चेला कायस्थ गुरु के पास जाता है।

६ : कलम की नोक से मारी जाकर रोती-चिल्लाती जनता का धन लेने वाले कायस्थ को उन्नति के लिए यज्ञ करने की इच्छा होती है (अर्थात् पहले लूटकर फिर यज्ञ करने की इच्छा होती है)।

७ : वह बेताला और बकवादी, ठगी की पटली पर लेखा लिख कर पूरी स्याही उगल देता है।

कुलबधू

८ : घर में मुंह देखने वाली, पति को दास बनाकर, बनठन कर दीक्षिता पत्नी गुरु के पास जाती है।

९ : छुआछूत के विचार से, पशुओं के छूने से नाक भौं चढ़ाने वाली, पास में समय न रहने वाली पति की स्त्री सदा गुरु के सू रत से अपने को पवित्र करके लौटती है।

१० : कठोर पीठ और कमर से धीमे चलने वाली पत्नी घर आकर भोजन में देर होने से पति को लतियाती है।

भट्ट

११ : शराब पीने में तैयार, कौलाचार से जाति-पांति का संकोच छोड़कर, मछली और प्याला हाथ में लेकर दीक्षित भट्ट गुरु के पास जाता है।

१२ : भट्ट घटघट गलगल करके गले तक शराब पीकर, पानी भर जाने से छिन्न धारा में लुढ़कते घड़े-सा दीख पड़ता है।

१३ : नशे में बदहोश, कै करनेवाला, कुत्ते से अपना मुंह चटानेवाला, सारी रात बिताकर भट्ट सबेरे दूसरे भट्टों में अभिवादन से शुद्ध हो जाता है।

बनिया

१४ : जमा की रकम डकार जानेवाला, छिपाने में चतुर, व्याज (कला) रूपी रात का यक्ष, माल पैदा करने का इच्छुक बनिया गुरु के घर आया है, मोक्षार्थी नहीं।

१५ : झाड़ू की धूल से बिकराल बना हुआ, गुड़, शहद, घी और पीले तेल से सने हाथों वाला, ग्राहक को ठगनेवाला, बनिया हाट के पिशाच का मूर्त रूप है।

१६ : तेज बदबू से भरे, धन इकट्ठा करने से गंदे, हाट की जंजीर से बंधे, विधाता ने ऐसे बनिए को श्री गुरुनाथ के बहने का पनाला (माल खपने का) बनाया है।

कवि

१७ : सारस्वत मंत्र को चाहनेवाला, पर थोड़े से संस्कार से पुती जीभ की टूंग-वाला, काव्य का सनकी, कुल की सरस्वती की सिद्धि के लिए गुरु के पास जाता है।

१८ : धातुओं और लिंगों को न जानकर यों ही अंडबंड श्लोक बिना ज्वर के ही कवि मुश्किल से जान तोड़ कर उगलता है।

१९ : सूखे श्लोक के ध्यान से वह रात दिन अपना जी कुढ़ाता है। वह मूर्ख बिना काव्य के अपना काम नहीं करता।

धातुवादी

२० : बुढ़ापे से कमजोर शरीरवाला, कफ और सांस की तकलीफ से कमजोर, रसायनसिद्ध (कीमियागर) बूढ़ा और मरने के करीब होने पर भी अपने गुरु के पास जाता है।

२१ : घरिया का मुख खोलकर इससे बने काफी सोने से मैं अपने और दूसरों को भर देता हूं, कह कर वह बिना धन के ही मर जाता है।

२२ : अंत में पारा सिद्ध करने वाले बूढ़े को अतिसार हो जाने पर, देह के मल की शुद्धि हो रही है, यह समझ कर खुशी होती है।

जुआरी

२३ : सफेद मदार से गणपति बनाकर, जुआरियो के दल को जीतने के लिए मंत्रसिद्ध करनेवाला जुआरी मछली, मांडा, और सिंदूर लेकर गुरु के पास जाता है।

२४ : पेशाब रुकने से बीमार, हमेशा फांकेकशी, इंद्रियों को जीतनेवाला, चुप्पा, संसार को ठगनेवाला जुआरी तपस्वी के विचित्र आचरण स्वीकार करता है।

२५ : जुआरी शरीर में भस्म रमाकर, हमेशा नंगे रह कर, सिर पर हाथ देकर, हाथ में नरकपाल लिये हुए ईश्वर (रईस, शिव) के समान होने पर भी हमेशा दरिद्र का घर है।

बुद्धिहीन

२६ : व्यवहारशील पर पशु तुल्य गुरु को सब बांटता है, बुद्धिहीन कोरा भगत शिष्य केवल गलचौथ करता है।

गुरुभक्त

२७ : यज्ञगृहों में डटा, केवल खाने पीने में ही मस्त चोट्टों का सरदार, ठग गुरु का चेला हमेशा मजा लेता है।

२८ : 'मोक्ष और निर्वाण के लिए संसार बनाने वाले भगवान आपकी जय हो, नाथ, पाप के रास्ते में फंसे मुझे आप अपने हाथों उबारिए।'

२९ : इस तरह की स्तुतियों से गुरु चरणों पर शीश नवा कर वह भक्तिहीन महाधूर्त ढोंग से खूब खाता पीता है।

वैंणिक (बीनकार)

३० : अपने घरघराते गीतों से आए हुए देवताओं को भी भगानेवाला, तूंबीदार बीन कंधे पर रख कर गुरु का चेला यज्ञ में आता है।

३१ : उत्कंठित श्रोताओं में मुश्किल से दिन भर में सुर मिलाकर तारों को घिसते हुए खसखस शब्दों से वह कान में दर्द पैदा करता है।

३२ : अपने स्वर टंकार से वह नारद और तुंबुरु जैसा गर्व रखता है। वाह-वाही के लिए वह घड़ी-घड़ी श्रोताओं का मुंह निहारता है।

वैद्य

३३ : बीमारों के धन से मालदार, फुटकर श्लोक पढ़ने में अपना पांडित्य-दिखलाने वाला वैद्य शिष्य की धनरूपी बीमारी को हड़प करनेवाले गुरु के घर जाता है।

३४ : हृदयहीन, धूर्त, और खुख वह वैद्य है। वह दोषी और चरकटा बीमारी के दोषों को नहीं कहता और न चरक को ही जानता है।

३५ : बातों के बांधनू से भय उपजानेवाला, भयंकर सन्निपात से लोगों को मारने वाला वैद्य, गरज से भय उपजानेवाला, गिरकर लोगों को मारनेवाली बिजली की तरह घरों और खजानों पर टूटता है।

निर्गुंट

३६ : शरीर में जूं पड़े, कीचड़ भरे मुख वाले जिसका नाम है चन्द्रापीड़, पर है वह नयनपीड़, बगल में चावल की पोटली (भस्त्रा) बांधकर वह गुरु के पास जाता है।

३७ : वह चूने हल्दी से रंगी बर्फ की तरह सफेद पगड़ी (शीर्ष शाटांक) पहने है तथा छीर पड़े (खंजनी) मोजे (मोचोट) से उसके अंगूठे निकले हैं।

३८ : कुटुंबियों और भटों (वकील) द्वारा चरे हुए मालवाला, सैकड़ों कर्ज के कागज लिख कर कर्ज से दबा हुआ, निर्गुट देशनिकाले (नीराज) के दंड के भय से वर्ष के अंत में राजदरबार में हो आता है।

पंडित

३९ : मूर्खों पर दबदबा जमाने के लिए धीरे-धीरे नकियाते हुए लंबे पदों से सिरदर्द पैदा करता हुआ पंडित गुरु के पास जाता है।

४० : वाक्य और समन्वयहीन, कलम को जोर से चलाकर पत्र गंदा करके उलटे और आधे कटे हुए टिप्पिकाबंध (तिकोने के आकार में रचित बंध) पदों को वह पढ़ता है।

४१ : अशुद्ध शब्दों से भरा, लिंगभेद भूल जाने वाला, प्रकृति से नपुंसक, समासों को न जानने वाला, विद्वान पंडित सज्जनों में केवल झगड़े (द्वंद्व) के लिए ही जाता है।

४२ : नाक और थूक से मिश्रित, झूठ और गलेबाजी से विद्वान् लट् प्रत्यय भूलने पर पूछने से नाराज होता है।

लेखक

४३ : झूठमूठ ही, मोची की तरह, सवेरे-सवेरे सब को देने का बहाना करनेवाला भक्त लेखक भग-पूजा विधि लिख कर गुरु के पास जाता है।

४४ : अक्षरों में गोलमाल करने वाला, टेढ़ी-मेढ़ी पंक्तियों से पंडितों को भी भयभीत करनेवाला, हमेशा गंदा और पापी लेखक, वर्णसंकर बनानेवाले, पतितों की पांत से देवताओं को भी भयभीत करनेवाले, हमेशा यज्ञ के विपरीत, पापी साक्षात कलजुग की तरह है।

४५ : आकार और शिरोभाग को उड़ा देनेवाला, लिखते समय शब्दों को गलत तोड़ कर अक्षरों को इधर-उधर करनेवाला (नवदरकारी), पदों के अर्थ बिगाड़ने वाला, अक्षर खा जाने वाला, स्याही से पुते मुंह वाला लेखक सबके आकार और शिर खा जाने वाले, भयंकर, सब चीजों को नष्ट करनेवाले, अनंत, सर्वभक्षी, काले काल की तरह है।

जटाधर

४६ : प्रसन्न नेत्र, गंजा, दंतुर, प्रसन्न बदन, ध्यानमग्न, तंत्रमंत्रहीन जटाधारी साधु यज्ञ में घुसते हैं।

४७ : त्रिफला से धो-धाकर साफ, धूप से सुगंधित, मुट्ठीभर भस्म से मारे गये जूं वाले, ऐसे जटाधारियों की जूट की वेश्याएँ तकिया लगाती हैं। (जब वे उनके यहां जाते हैं)।

४८ : तंत्रस्थान में आया हुआ, अनशन करने के बाद मठ का बेढब तपस्वी शिवत्व प्राप्त करने के लिए फिर से छकता है।

रांड़

४९ : कुश, तिल, तथा चांदी की चूड़ी व्यवहार करने वाली, हाथ नचानेवाली, स्नान, दान और जप में निरत, शराब और मांस न पीने-खाने वाली विधवा रक्षक गुरु को स्मरण करती है।

५० : अपने पति के श्राद्ध में ब्राह्मण भोजन न कराना मूर्खता मानकर मृत पति के उद्धार के लिए वह भक्तिपूर्वक अपना गुह्यांग गुरु के हाथ सौंप देती है।

५१ : अपने मोटे जघनस्थल को सजाकर, बड़े कुच-कलशों को लेकर, आंखें मटका कर, नवीन रति सुख भोगने वाली विधवा विटों के सुख के लिए बनती है।

५२ : मैंने मतलब दिखलाने के लिए जो कुछ कहा है उन सब चुहलवाजियों को सहृदय लोग थोड़ी देर के लिए सुनें। क्षेमेन्द्र विनती करता है कि वह हंसी मजाक में चतुर नहीं, उसने तो केवल उपदेश के लिए ही देशोपदेश बनाया।

प्रकीर्ण वर्णन नामक आठवां उपदेश समाप्त

देशोपदेश समाप्त

●

क्षेमेन्द्र कृत नर्ममाला (अनुवाद)

प्रथम परिहास

१ : जिसने अपनी इच्छा और माया से सारे संसार को मोह लिया ऐसे अजित श्रीमान् कायस्थ और परमेश्वर की जय हो।

२ : रईसों का अगुआ, बुद्धिमानों से सजा, इन्द्र की अमरावती का भी दर्प चूर करनेवाला यह कश्मीर मंडल है।

३ : जिसकी विशाल स्तंभरूपी बाहुओं से शत्रुओं की बीरता ढीली पड़ गई है, त्रिविक्रम के समान बलवान (त्रिविक्रम के पक्ष में बलिराजा) श्रीमान् अनंत राजा है।

४-६ : उस बुद्धिमान द्वारा प्रजा का कष्ट दूर किये जाने पर जितने बदमाश सरकारी नौकर (नियोगी) थे वे सब स्मृति शेष हो गये। विद्वानों की गोष्ठी में बड़े, चतुरों के सरदार, बोलियों में आसक्त उन राजा अनंत की प्रेरणा से कोई सहृदय (क्षेमेन्द्र) पुराने कायस्थों के चरित्र मनोरंजन के लिए कहता है और उसी के बहाने दुराचार की खिल्ली उड़ाता है।

७ : माया रचनेवाले, विश्व प्रपंच के निर्माता, उत्पति, स्थिति और संहार करने वाले त्रिपुरारि शिव अथवा जालिए, संसार में झगड़ा-झंझट पैदा करने वाले लोगों को बनाने बिगाड़ने और पालने में चतुर, नगर को बंटाधार करनेवाले कायस्थों को प्रणाम।

८ : सब जगह पहुंच रखने वाले, छोटी जातवाले, गुणहीन, चालबाज, सबका अधिकारी, सब समय बेईमानी से माल खानेवाले कायस्थ तथा सर्वव्यापी, अजन्मा निर्गुण, चंद्रशेखर, सर्वाधीश, कालकूट विष पीने वाले शिव की जय हो।

९-१० : प्राचीन काल में तेजस्वी विष्णु द्वारा दैत्यों के मारे जाने पर उनके घर का खजांची (गणनापति) दुखी होकर वैरागी हो गया और वैतरणी नदी के तीर जाकर देवताओं से वैर चुकाने के लिए अपना मूत्र पीकर हजार वर्ष तप किया।

११-१७ : उससे प्रसन्न होकर बरदायक कलि ने स्वयं प्रकट होकर कहा—'सब देवताओं के नाश के लिए तू पृथ्वी पर जा। मेरे दिए हुए, वार करने वाले इस कलम

रूपी हथियार से तू धूप-दीप-पुष्प और वस्त्रहीन, धूल भरे, कुत्तों से घिरे मंदिरवाले सारे देवताओं को दानापानी का मुहताज कर देगा। तेरे द्वारा संसार में ब्राह्मणों की रोजी मार दी जाने पर और यज्ञ बंद हो जाने पर स्वर्ग में निश्चय देवता नष्ट हो जायेंगे। दैत्यों के मारे जाने पर तू आकाश में रोया (दिविरोदितं) इसीलिए तू दिविर नाम से विख्यात होगा। जिसकी स्याही भरी कलम सबको खा जाने वाली है उस दांव-पेच वाले छल-छंदी कायस्थ को वह सब अर्थों की सिद्धि देती है। तेरे वंश में कायस्थ रूपी दैत्य पैदा होंगे जिनसे लुटकर यह संसार बाकी न बचेगा।'

१८ : यह कह कर कलजुग के गायब हो जाने पर काफी दिन बीतने के बाद वह दिल का काला इस पृथ्वी पर उतरा।

१९ : इस पृथ्वी पर निठुर कसाई पिता और कुदाल चलाने वाली की स्त्री से संसार को उखाड़ फेंकने का व्रत लेने वाले का जन्म हुआ।

२०-२४ : उसके वंश में दगाबाज, सब की रोजी हड़पने वाले, रूखे, सब के दुश्मन, पापी, सब कुछ लूटने वाले प्रलय काल की तरह, स्थावर और जंगम को ग्रसनेवाले, सारे शरीर में स्याही पोतकर मानों काल से आलिंगित, नीचे गिरने पर बहुत कोमल तथा क्षण भर में खड़े होने पर कठोर शरीरगत मल की तरह, दोषी, सेवा के समय तरह-तरह की बातें बनाने वाले, शिकार फंसाने में अनेक बाहुओं वाले, ठगने में बहुत छल-छंदी, बहुरूपिये, देवों के शत्रु उसके पुत्र पैदा होते ही नगर, पत्तन और ग्रामों में व्याप्त हो गये।

२३-२५ : उस समय स्याही भरी कलम से आकाश में लिखते हुए, हाथ में कैंची लिए, भोजपत्र की चादर ओढ़कर कलि नाचने लगा। वह सर्वभक्षी महा असुर बगल में पेटी (भस्त्रा) दबाकर संसार के क्षय के लिए पैदा हुआ है। इस खुशी में पिशाच गाने लगे।

२६ : देवताओं को लूटनेवाला, गायों का नमक और भोजन काटने वाला वह दिविर रात-दिन डट कर खाने पीने लगा।

२७-२९ : देव, नाग और मनुष्यों की नित्य और नैमित्तिक बृत्तियों को मारने-वाले उस कायस्थ नाथ द्वारा त्रैलोक्य पर दूसरी बार आक्रमण होने पर कलि ही पिघल कर स्याही बन गया। जैसे गंगा स्वर्ग देनेवाली है उसी तरह यह स्याही नरक देने वाली है।

३० : फूलते-फलते ग्रामों से दुखी होकर, दूसरी और हथकड़ी और डंडे के उपाय से डर कर उसे वैराग्य हुआ और वह महाव्रती (शैवों का एक भेद) बन बैठा।

३१ : फिर व्यथा कम होने पर अपना व्रत छोड़कर वह परदेश चला गया। बही (लेखा खाता) जानने वाला (भूर्जज्ञ) और झूठा त्याग दिखलानेवाला कालांतर में भूला जाकर वापिस आ गया।

३२ : क्रमशः गांवों में नियुक्त होता हुआ उस घमंडी को भाग्यवश गणपति ने अपना गृहकृत्य (मुख्तार) बनाया।

३३ : उसके निर्दयी, खुले लुटेरे, आज्ञाकारी साथियों ने धन से पटी धरती को उजाड़ बना दिया।

३४-३५ : दंभध्वज, निष्प्रपंच, लुब्धक, कलमाकर, सूचीमुख, भूर्जगुप्त और दुस्सह महीमंड, ये सात दैत्यों के अवतार मद में भर कर कहने लगे कि जो सब पूजनीय हैं उन्हें लूट लो और मार दो।

३६-३७ : उपताप, बज्रताप, परिघ, द्वारभंजक, धूमकेतु, कपिमुख, कुक्षिभेद और गृहोन्मुख, उसके ये आठ प्रधान भट पिशाच मृत्युलोक का नाश करने के लिए हाथ में लाठियां लेकर घूमने लगे।

३८ : शिवपूजा में सैकड़ों सेवकों से हमेशा घिरा वह हाहाकार करता हुआ और आंसू ढालता हुआ स्तोत्र पढ़ता है।

३९-४५ : चितहारिणी, देखती हुई और दृश्यमान स्तुति से, 'वाह, कल विजयेश्वर के मंदिर में कितने ब्राह्मणों को उपवास (प्रायोपवेशन) करा डाला', 'अनंत महिमा से उल्लसित परमेश्वर की जय हो', 'आगे अड़ी हुई गोटियों से मेरा, तीन सात का दांव चले'; 'जो दयालुता, ज्ञान और परमानंद रूपी संपत्ति से बढ़ा है" 'उपवास स्थान में भरे पंडितों को टखने से रस्सियां बांधकर फेंक देना चाहिए,' विद्या से प्रकाशमान माहात्म्य वाले उस अपराजित की जय हो', 'बेचूल्हा करने वाले नियोगियों को इन, इन गांवों में भेजना चाहिए,' 'सर्वानंद स्वरूप, सब मंगलों के हेतु ईश्वर को'···'सजा में विरोध दिखलाने वालों का सब कुछ छीन कर उन्हें मरवा दिया जाय,' 'सब क्लेशों को हरने वाले, चिद्रूपं ब्रह्म को नमस्कार', 'प्रजा दबाने पर गुग्गुल के बीज की तरह जरूर रस देती है', यह [1]कहकर अनेक स्तोत्रों से मुखर वह घंटे की टनटनाहट से सबको बहरा करता हुआ नियोगियों की सभा में घुसा।

---

१. इन स्तुतिश्लोकों की एक कड़ी सें तो वह शिव की प्रार्थना करता है और दूसरी (कड़ी) सें अपनी बदमाशियां सोचता है। श्लोक युग्मों सें दोनों श्लोकों की पहली कड़ियां मिलाकर शिव की स्तुति बनती हैं, और दूसरी कड़ियां मिलाकर उसकी विचारधारा प्रकट होती हैं।

४६ : लोगों के दुर्भाग्य से अपनी ऊंची जगह बैठ मरीच ने हरकारे (कार्यदूत) नियोगी को दूर से आते देखा।

४७-५० : गंदगी से सने पैरोंवाले, मंदिर लूटने का चक्र रचनेवाले, बहुत से छोटे टुकड़े मिलाकर बनी, किनार पर ऊंची टोपी (सुसूक्ष्म दल विन्यास विभागोन्नत टिप्पिकम्) पहनने वाले और तीसी की फूल की तरह नीला बढ़िया अंगरखा (अंगरक्षक) पहने, जायफल और कस्तूरी से सुगंधित मोटी रजाई ओढ़े, अंगुली में तीन पेच की अंगूठी (त्रिगुणावर्तवालिकं) पहने, दूर से आने की थकावट से मुंह बनाये, उस दुष्ट भागवत को पास आता देख मरीच ने हर्षपूर्वक उठकर और उसका हाथ पकड़ कर अपने बगल में बैठाया।

चाक्रिक

५१ : उन खुफियों को नमस्कार जिनकी कृपा से नियोगी दूर से बैठे-बैठे भी हजार आंखों वाले बन जाते हैं।

५२-५९ : वह बोला—'मैं आपकी मुट्ठी में सब ताकत आई सुनकर देव मंदिर से यह बताने आया हूं कि माल (राशि) कहां छिपा है। देवमंदिर में वस्त्र, अलंकार रत्न, इत्यादि जो कुछ है उसका पूरा भंडाफोड़ मैं आपसे करूँगा। विजयेश्वर, वाराह इत्यादि मंदिरों में आपके भाग्य से इतना माल है जो मंदिर के सेवकों से इतर दूसरों को मालामाल कर देगा। बदनामियों से न डरनेवाला, पापों से निःशंक, ऐसे चालाक परिपालक की वहां फौरन नियुक्ति कीजिये। इस संसार में प्रसिद्ध आपके समान वह कायस्थ बिना धन, बिना श्रम और बिना लूट के ही अपनी बुद्धि से मशहूर है। ब्रह्महत्या को वह कुछ नहीं समझता, गोहत्या की तो बात ही क्या है। मालिक की सेवा के लिए वह जड़मूल से लोगों को उखाड़ फेंकता है। दूसरे तो बहुत मिलते हैं, पर उसकी तरह नहीं जो अपने बाप की हत्या करता है और धनी को जेल में ठूंसता है। अगर वह आपके पुण्य से मेरी बात मानकर आ गया तो अपने घर को खजानों का अटूट भंडार समझ लीजिये।'

६० : बार-बार उसके ऐसा कहने पर और कानाफूसी करके महतो (महत्तर) ने कहा—'उसे जल्दी ला।'

६१ : इसके बाद वह आदर के लिए दो-तीन बार आ-जाकर और ठीक-ठाक करके उस पापी परिपालक को लाया।

परिपालक

६२-६४ : गले में काठ पड़ने से मानों अकड़ी गरदन वाला, टकटकी लगाये, ऊंची निगाह वाला, पीले-हरे रंग की सिर पर पगड़ी (शिरःसाटक) और कुरता (कंचुक) पहने, मोटे सुअर की तरह मांस का ढूहा, गहरे लटकते खड़े पेट वाला, तमतमाया हुआ, महाक्रोधी, जान मारने वाला, लाइलाज, उपद्रवी, गरमी से भरा वह जोर-शोर से आने वाले, भयंकर जान लेने वाले, लाइलाज सन्निपात ज्वर जैसा था।

६५ : उसने एक दुस्सह काइयां (दंसन) विट को खिलवाड़ में ही वश में करके बहुत से मंदिरों पर दखल जमा लिया।

६६-६७ : तब सहसा मूर्तिमान कष्टों की तरह, असंख्य प्यादों को लेकर, वह वसूलियाती (अर्घवेला) के लिए चला। लोगों को यह पता लगा कि वह पुरानी दुश्मनी याद करने वाला, नीली आंखवाला, हिरण्याक्ष देवताओं को मारने आया है। डर से धनिकों के मंदिर से भागने पर मंदिर में बाकी बचे सरमाएदार उसके पास आये।

६८-७० : सिपाहियों से कमजोर दरवाजों के किवाड़ों को तुड़वाकर उसने घर के बरतन-भांडे की लूट का बड़ा जलसा आरंभ कर दिया। एकाएक नंगी स्त्रियों और डरे हुए बालकों के दयनीय रोने-बिलखने की आवाज आने लगी।

लेखकोपाध्याय

७१-७३ : वह भूख से सटे पेट वाला, सनीचर के आकारवाला, गंदा, भूखा-प्यासा बहुत दिनों बाद मनमांगी मुराद पाकर डगमगाता हुआ आया। उसके शिर की चादर (शिरःशाट) में बहुत से छेद थे। बगल में तूस (तूस्तक) लड़बड़ा रहा था। उसका गंदा अंगरखा (अंगरक्षक) सैकड़ों प्योंदों (चटूलका) से मरम्मत किया हुआ था। उसकी दुपटी (पटी) फटी पुरानी थी, उसका आंचल बगल में दबा हुआ था और मंगनी के सूखे जूते (पादत्र) से वह दुष्ट तकलीफ पा रहा था।

७४ : लेखाधिकारी गरीब होने पर भी अपनी मुंशीगीरी (लेखसंस्कार) से गर्वित था। परिपालक की आज्ञा पाकर वह हवा पीने वाले सर्प की तरह फूल गया।

७५-७७ : उसकी पत्नी फटे कपड़े से अपनी कमर ढांकती थी, उसकी नाक की टूंग काजल से पुती होती थी। उसके कान में मट्टी के कर्णभूषण होते थे। वह सूप के आधे भाग से अपना सिर ढांक कर सूसू करती तथा चूतर मटकाती हुई अपने भूखे बच्चों पर क्रोध करती थी। बहुत दिनों के बाद अपने पति को पद पाया देखकर उसने अक्षत, पूए, धूप आदि से गणपति की पूजा की।

७८ : उसने अपने मालिक के अनेक अर्थों वाले संदेशों को सुनकर जबर्दस्ती वसूलियाती (दाप्य) के लिए बेरोक हुक्मनामे (लेख) लिखे।

७९ : दौड़ती हुई कलम की चरचराहट से भरा, घायल बंदर की तरह, जल्दी से दीनार गिनते हुए उसने दो सौ हुक्मनामे जारी कर दिये।

८०-८२ : कड़छुल (दर्वी), तकिया (वृसी), कालीन (पटलिका), बरतन-भांड़ा, दौरियां (करंडिका) इत्यादि जो कुछ भी परिपालक को जरूरत होती थी उन सबके लिए हुक्मनामे जारी करके वह खूब प्रसिद्ध होकर कुछ ही दिनों में मोटा-ताजा, मुट्ठी भरा, और मतवाला हो गया। आंखें फाड़कर हुक्मनामों (लेखपत्र) को पढ़ते हुए भौंहें और आंखें टेढ़ी करके वह तरह-तरह से मुंह बनाता था।

गंज-दिविर (खजांची)

८३-८५ : भट्ट और भागवतों की प्रार्थना पर दोनों के बीच में मध्यस्थ के कार्य की गड़बड़ी ठीक करने के लिए गंजदिविर आया। वह भूखे रह कर धरना देने वालों (प्रायस्थ) को चापड़ करके घमंड से फूला हुआ, कपड़े छोड़कर सिर की चादर (शिरः शाटक) ललाट पर बांध कर मानों आधे ललाट पर सफेद कोढ़ वाले जैसा हो गया, मंदिरों की देवोत्तर संपत्ति की जमा का नाश करने पर तुले हुए उस परिपालक ने अनगिनत देवताओं के पास केवल गले के फांसी की रस्सी छोड़ दी।

८६-९६ : उसने पहुँचते ही शरद्‌कालीन छमाही खर्च का लंबा चिट्ठा (शरत् षण्मास कल्पना) पेश किया जिसमें साढ़े चार लाख (वसूलियाती) दर्ज थी। उसके स्वीकार करने पर और सरकारी मालगुजारी पर संतोष दिखलाने पर, कुछ सद्‌भाव से, आए हुए परिपालक से उसने अपने स्वार्थ सिद्धि की बातचीत चलाई। 'इस मंदिर में मेरे विरोधी जो-जो प्रसिद्ध परिपालक थे वह अपना सब कुछ बेंच-बांच कर भाग गये। मैं स्नेहवश आपके साथ कुछ उपकार करना चाहता हूं। क्योंकि हमारे आपके दोनों ही के एक कुलगुरु हैं। मंदिर की प्रबंध समिति (चक्रिका) के लिए स्वीकृत पांच-छः सदस्य ही मंदिर का सारा धन (देवद्रव्य) और सेवकों की वृत्ति (पार्षदी भुक्ति) हड़प जाते हैं। उपर्युक्त मत के अनुसार, देव मंदिर में बेंच-खोंच कर जो बचता है उसे तुम अपना मानकर हड़प जाओ। मैं पहले तांबे का एक बड़ा घड़ा (घटा) लाया था। बाद में भक्तिपूर्वक उसके सांतवे भाग से मैंने मंदिर का घंटा बनवाया। समयांतर में घंटा बेंचकर उसके थोड़े से भाग से मैंने घड़ियाल (घंटी) बनवाया। फिर क्रम से वह भी हजम हो गया और बाकी बच गयी घंटी। बाद में उसको तोड़कर मजीरा (झिल-मिल्ली) बनवाया। ऐसा करने से मंदिर के घंटे का थोड़ा सा भाग रक्षित हुआ। इस तरह

शिवपूजा के बहाने चौहत्थी लूट मचाई जाती है। मंदिर में बहुत से अन्न के कोठार हैं। उनकी खरीदी-बेंची तुम करो। उसके बाद की बात मैं बताऊंगा।' परिपालक ने उसके कहे हुए सैकड़ों उपायों से बूढ़े चूहे की तरह मंदिर रूपी अखरोट को खुख कर डाला।

मार्गपति अथवा ब्यापारी

९७-९९ : वहां पर 'आन के धन पर लक्ष्मीनारायण' बोलनेवाला, साधुजनों की लूट में कुशल वह कामचुस्त बागी गांव को दबाने पहुंचा। गलीज से भरा, महा रौरव का सगा भाई, टूटे-फूटे नासकोर की हौदी (वारिघान) वाला, जिसका रस्सी से बंधा पुराना दरवाजा हिलते ही खड़खड़ाने लगता था, उसकी घर में ऐसी ही स्थिति थी जैसे मुर्गी की उसके दर्बे (कोटर) में।

१००-१०३ : जले कंबल के टुकड़े से अपना सिर ढांक कर, कुत्ते से काटा गया फटा पुराना जूता पहन कर, धीरे-धीरे चलते हुए कथरी (कर्पटी), तिल, मिट्टी, दर्भ, पवित्रा, गुल्लकपेटियों (अर्घ समुद्रक) के साथ टूटी-फूटी, चूहों से काटी गई, भरी दारूपात्री लेकर वह चलता था। नहा कर जप करता हुआ, दाढ़ी हिलाता हुआ, सदाचार में निरत, वह देवालय में जाकर आधे दिन स्तोत्र पढ़ता था। वह गोप्रदक्षिणा करता था, ब्राह्मणों को सिर नवाता था, द्वादशी का व्रत रखता था। बड़े जतन से रास्ते में गरीबों को एक-एक कौड़ी बांटता चलता था।

१०४-१०७ : भाग्यवश उसी नियोगी को जल्दी काम मिल जाने पर सामान और बरतन-मांड़े से उसका घर भर गया। जाड़े में जिसके पड़ोसी एक अंगारा भी नहीं देते थे वे ही उसे अब मनचाहा वस्त्रालंकार देते थे। उसका चूना किया हुआ साफ सुथरा आंगन (अंगन) तथा सिंदूर से पुती हुई भीतरी बैठक (उदरमंदिर) वाला घर बहुत-से दास-दासियों से भर गया। मीठे पकवान खाने से नई लुनाई पाकर उसकी जवान स्त्री कुछ दिनों में अप्सरा की तरह हो गयी।

१०८-११३ : गांव जाते समय डालियां (करंड), सेज, छत्र, कलश, तांबे का कुंडा (ताम्रकुंड), शक्ति, पीकदान (पतद्ग्रह) घंटा, ताम्रपात्र, जूते, पूजा की करवी (करिका), चरण पादुका (भगवत्पादा) भूर्जपत्र की थैली (भस्त्रा), स्रुकस्रुवा, अक्षसूत्र, स्याहीदान (मसीपात्र), दर्पण, खंग, स्नान की धोती (स्नान शाटिका), पायजामा (संपुटी), टोपी (टुप्पिका), पादुकाएं, मंत्रपुस्तिका, पंचांग (नक्षत्र पत्रिका), खंगपत्र, लाल कंबल (लोहित कंम्बल) जनेऊ, बीणा, सुई (सूंत्री), कलम बनाने का चाकू (कलम कर्तरी), बाल बच, लाख का बना जंतर, (जंतुमत्री रक्षा), छुरी, योगपट्ट, स्तोत्रमंत्र, गंगा की मिट्टी, बेल, साफियां, (उच्छिष्ट फालक), ये सब सामान इकट्ठे होकर उसके आगे-आगे

चले। ये सब चीजें इधर उधर से इकट्ठी की गई थीं और उन्हें लौटाने की नियत न थी।

११४-११५ : अपना हाथ ऊंचा करके भाड़े के घोड़े पर चढ़ कर, बगल में झटके से एंड़ी मारता हुआ, मुंह टेढ़ा करके आदमियों को मानो भयभीत करता हुआ, ढीले मोटे कपड़े पहने हुए उछलता-कूदता वह नगर को चला।

११६-११९ : खूब धुले हुए सफेद कपड़े पहन कर वह गांव में ऐसा घुसा मानो बूढ़ा बगला ग्रामीणरूपी मछलियों को गटकने के लिए आ गया हो। भोजनचर्या इत्यादि हजारों बहाने से उसके सामने कुबेर तुल्य खजाने आने लगे। लूटने की चिंता में योगी, कागज-पत्तर का उस्ताद, अपनी स्त्री से वियोगी, नरक संपदा का भोगी, फल मिलने में ठनठन, केवल दोषों का उद्योगी, अशोक, हमेशा रोगी, प्रभु नियोगी की जय हो।

१२०-१२२ : प्राय: गांव के हजारों को ठूंठे पेड़ों पर चढ़ाकर, सैकड़ों को तकलीफ देकर वह नरक के समान हो गया। दंड के लिए गायों को जिसने उनके मरने तक बंद रखा, फिर सब अपराधों के घर आदमियों की तो गिनती ही क्या, 'सब लूट लो', 'बांध दो', 'मार डालो', 'घर उजाड़ दो', उसके मुख से हमेशा यह भयंकर बानी कभी टली नहीं।

१२३-१२५ : उसके हमेशा पांच-छ: ऊंट की तरह मजदूर बने ही रहते थे। वे अविश्रांत रूप से जैसे ही उसका हुक्म होता था उसके घर घी, शहद, दीनार, मिर्च, अदरक, नमक, मूंग, कंबल, मयूरोपानह, मेढ़े, पक्षी, कमल ककड़ी, अंगूरी शराब, (द्राक्षा मधु), अखरोट, पलंग, पीठिकाएं तथा कांसे, तांबे, और लोहे के बने घर के बरतन-भांड़े ले जाते थे।

१२६ : अपने मालिक के पास से रियायत देने के लिए आए हुए आज्ञापत्रों पर थूक कर उनको वह तिलतिल कर डालता था।

१२७ : नित्य मांस और घी खानेवाला वह, जब राजपुरुष आता तब ढोंग से बिना नमक के आध पाव मूंग खाकर रह जाता था।

ग्रामदिविर

१२८-१३१ : चोरों को दंड न देने वाले मूलदिविर (पटवारी) को निकाल कर प्रजा का ठीक तरह से इलाज करने वाले उसने अपने बेटे को पटवारी (ग्रामदिविर) बनाया। उसके द्वारा बारह वर्ष की सजा से छुटकारा पाने पर वह जाली अक्षर (कूटकपटाक्षर) लिखने में चतुर लेख लिखने लगा। कटे हुए अंगूठेवाला वह खल लेखक

बाएं हाथ से कागज-पत्तर (भूर्जयोजन) लिखता था। वह टिहुनियों के बीच शराब का घड़ा दबाकर पहले धीरे-धीरे और बाद में खूब डट कर पीने लगा।

१३२-१४० : वह कनकी अंगुली खून से सान कर अक्षरों को मिटा कर चरचराहट के साथ लिखता था। चमारों के गुरु रुग्णनाथ के बनाये हुए शिव भक्ति से भरे गीत गाते हुए उसने ब्राह्मणों, गायों तथा देवताओं के नित्य और नैमित्तिक गायब कर दिये। फटे गले से गाता हुआ और कभी कंबल से जूं बिन कर और नख के अग्रभाग से उन्हें पीसता हुआ, कभी सांसे भर कर वह संसार के व्यवहार को कोसता था और कभी खुश होकर मीजान लगाता हुआ, शराब के नशे में घूरता हुआ, यक्ष से आविष्ट की तरह, पटली मिश्रित आम्रमंजरी का माला और कंगन पहने हुए, मोटे भूर्जपत्र के फाड़ने की आवाज को बाजे की तरह सुनता हुआ, पायजामे से निकलते अंडकोशों वाला, भरी हुई दावात के लुढ़कने से स्याही से पुते शरीरवाला, नशे में बेहोश नंगा, घड़े और गद्दी तोड़ने फाड़ने वाला लेखक नाचने लगा। धूल से भरा, गंदा, मदहोश वह पिशाच की तरह उठकर लोगों को मारने से खुश हो उठा। वह कांख बजाकर उसकी आवाज से कंधे को बाजे की तरह बजाकर रस लेता था।

कायस्थ सुंदरी

१४१-१४३ : उस चोर लेखक की हवा से रात-दिन सुलगती आंच ने जनरूपी बन को जला डाला। जल्दी ही उस रईस के घर में गहने। मालाओं से सजी, पान खाने में तत्पर, दर्पण देखनेवाली, राजमार्ग पर निगाह डालने वाली, उससे अलग उसकी घरनी रानी जैसा घमंड करने लगी।

१४४-१४५ : हार का मुझे बोझ लगता है, सोने का कनफूल (ताटंक) मुझे प्रिय नहीं, नैनी के योग्य मोटी सोने की करधनी (कमर सूत्रिका) को धिक्कार, केवल सुंदर एकावली ही मेरी प्रिय है, उसकी इस अभिमान भरी बात से किसे विस्मय नहीं हुआ।

१४६-१५८ : वाह रे काम में सफलता देने वाली भगवती स्याही ! अहो बलवान लक्ष्मी का आश्रयभूत कलम ! जो टूटे और जुड़े हुए पत्थर के बरतन में कभी मांगी हुई कच्ची शराब पीती थी, वही आज चांदी के प्याले में कस्तूरिका मधु पीती है। महल पर बैठी उस कायस्थ सुंदरी को नीचे से देखकर पड़ोसियों की लड़कियों ने उसे कुलीन समझा।

प्रथम परिहास समाप्त

द्वितीय परिहास

परस्त्रीगामी

१-४ : जवानी के मद में चूर वह मृगशावकनयनी अभिमान से फटती हुई जमीन की ओर ताकती भी नहीं थी। अपने सास ससुर की विरोधिनी वह जवान पड़ोसियों वाली, हंसी मजाक करने वाली और गाने बजाने की रसिया थी। शरीर में अच्छे इत्र (चारु सौरभ) लगानेवाली, सिर की चादर आधी हटाकर (अर्धस्त्रस्त शिरोंशुका) अपने स्तनों को दिखलाते हुए, उसने कंचुक नहीं पहरा, जंभाई लेती हुई, आंखें टेढ़ी करके नचाती हुई, लहरदार त्रिवली वाली, उसने घूम कर लोगों को देखा।

५-८ : उस सुंदर नेत्रों वाली और बिना यत्न के फंसने वाली को देखकर विट बिना कामकाज के ही उसके दरवाजे का चक्कर काटने लगे। उसको पाने के उत्सुक, अच्छे नकाशीदार (चित्रवस्त्र) कपड़े पहन कर अतर, तेल, पान और धूप आदि में माल खरचने लगे। नियोगी के धन पर आंख गड़ाए, स्त्रीरत्न को पाने के उत्सुक, मुस्करा कर आंखें मारने इत्यादि सैकड़ों तरह की भाव-भंगियाँ दिखलाने लगे। जानते हुए भी अनजाने छिद्र खोजने वाले वे विट उन सांपों की तरह थे जो रंग-बिरंगे कपड़ों की झोली में रखे हुए, सुगंधि, तेल, पान धूपादि पूजा सामग्री में व्यय कराने वाले नियोगी के धन पर कुंडली मार कर बैठने के लिए आशा लगाए, सुंदर स्त्री से लिपटने के लिए उत्सुक, आंखों से जहर उगल कर विकार उत्पन्न करने वाले, छिपी जगहों में रहने वाले, बिल तलाश करने वाले, डसने के लिए तैयार, टेढ़े चलने वाले हैं।

९ : दूसरे की स्त्रियों के वे प्रसिद्ध प्रेमी, दो-तीन पड़ोसी सूने मंदिर में इकट्ठे होकर उसके मिलने का उपाय सोचने लगे।

१०-१३ : एक विट ने कहा—इसमें शक नहीं कि उसका पाना आसान है। भला वह गंजे, तोंदइल, बूढ़े, हमेशा बाहर रहने वाले, लोभी, ईर्ष्यालु, सुरत में लटे हुए, बकरे की तरह गंधानेवाले, बहुत थूकने वाले, शठ पति को कैसे सह सकती है? इस बांझ को न तो लड़के हुए हैं, न उसकी उम्र ढली है, न वह दुखी है, न वह प्रेम से प्रताड़ित है। इन सब बातों से छिनाल स्त्रियां भी बस में नहीं आती।

१४-१९ : दूसरे ने कहा—तूने ठीक सोचा, किंतु पड़ोसी होने के बहाने उससे परिचय बढ़ाने की कोशिश करनी चाहिए। विवाह, यज्ञ, तीर्थ, देवयात्रा और उत्सवों के बिना दूसरे की स्त्रियों से जान पहचान नहीं हो सकती। देर तक देखना, अपना त्याग

दिखाना, भोग सौभाग्य और यश में अपनी प्रसिद्धि प्रतिपादन करना, मौज में धीरे-धीरे बात करना, आदरपूर्वक उसकी बातें सुनना, उसके चेहरे पर आंख गड़ाना, उसके बच्चे को चूमना, भेंटना, उसे मनचाहे वस्त्राभूषण की कारीगरी दिखलाना चाहिए। परिचय प्राप्त होने पर उसे माला पान इत्यादि भेंट देना, भीत से लगकर उसके साथ धक्का-धुक्की करना, अकेले में चूमना, गुह्य स्पर्श और रति-ये सब शील बिगाड़ने की जुगते हैं। इनमें से कौन सी बात है जो मैंने दुःशीला, हमेशा जाने पर तैयार, नियोगी की स्त्री को पाने के लिए नहीं की।

जीवन दिविर

२०-२८ : तीसरे ने कहा—ये सब बातें ठीक हैं पर भाग्य विमुख होने से यहां विघ्न दिखलाई देता है। यह पैनी आंखों वाला चित्रगुप्त की नकल करनेवाला, सब जीवों का घातक बदमाशों का काल है। उसने बोझा लादकर, हथकड़ी-बेड़ी डाल कर, सरसरी सजा के हुक्मनामों (खंड लेख्य) इत्यादि युक्तियों से बदमाशों को ग्वाला बना दिया। यदि काल इसका नाम नहीं है तो वह फिर मनुष्यों की जान क्यों लेता है? अगर लकवा रोग नहीं है तो फिर एक अंग क्यों बेकार हो जाता है? 'आज कहां कितने मरे?' बार बार यह पूछता हुआ, मरे हुओं की वृत्ति अपहरण करने वाला, वह मुर्दा खाने वाले कुत्ते की तरह, मरने वालों की संख्या पूछने वाले कापालिक की तरह है। साधुओं की वृत्ति भी वह हथिया लेता है। उसका आचरण देखकर तो हम दोषी नरक के भय को भी तिलांजलि दे देते हैं। यद्यपि यह अपनी पतोहू चाहने वाला, कल्यपाल कुल का प्रकाश है फिर भी वह दूसरों की नुक्ताचीनी करने में सर्वज्ञ बनता है। अथवा शक्तिशाली राजा का साला मेरा दोस्त है, वह कहने भर से ही सब की जान जरूर बचा सकेगा। घर फूंकने वाले, गाय, स्त्री-बच्चों और ब्राह्मणों को मारने वाले, केवल इधर-उधर की खबर पहुंचाने वाले बहुतों को उसने बचाया है।

श्रमणिका

२९-३२ : नियोगी के घर में हमेशा बेखटके घुसने वाली, वज्रयोगिनी भिक्षुणी सदा कुटनी का काम करती है। वह वशीकरणों की माता, जारों की अचूक दूती है तथा जारों को वशीभूत करने के व्रत में उसे स्त्रियां देवता करके पूजती हैं। वह अपनी लीला से अरुंधती (जैसी पतिव्रता) को भी जल्दी से ठगती है। वह पुरानी छिनाल गंगा को भी तिनके की तरह मानती है। वह हमारी मनचाही बात जरूर पूरी करेगी—यह कहकर वे धूर्त बूढ़ी-भिक्षुणी के घर गये।

दारकोपाध्याय

३३-३६ : एक समय उस मृगनयनी को महल में सत्र के भोजन से गठे शरीर वाले, फिर से लौटी जवानीवाले, सफेद चन्दन का लम्बा तिलक लगाए, मोटा जूड़ा (जूट) बांधे, मोर की शक्ल के जूते (मायूरोपान) की धीमी चरमराहट से गर्वित, बगल में कपड़ा दबाये, ब्राह्मणों को भी न छूने वाले, 'अरे दासी के बच्चे' इत्यादि गालियां देकर गुस्से से लोगों की भर्त्सना करते हुए, गुदना (मलपत्र) गुदाए, उस पाठशमला के विदेशी विद्यार्थी (मठ दैशिक) ने सहसा काम से आकर उसे देखा।

३७-४१ : नियोगी के घर वह बच्चों का उपाध्याय बन कर रोज अक्षराभ्यास कराने के लिए मासिक वेतन पर नियुक्त हुआ। उसके घर प्रवेश पाकर वह धूर्त ध्यान-पूर्वक पढ़ाने लगा। पूरी लिपि न जानते हुए भी वह केवल (पट्टी पर) ओंम ओंम ही लिखने लगा। कौतुकवश घर की स्त्रियां उसके चारों ओर जमा हो गयी, तब वह उनको एकटक घूरने लगा। उपाध्याय बनकर वह अपने मन में दीनारों की कमाई का हिसाब लगाने लगा। अष्टावतार स्तोत्र पढ़कर ही वह अपने को सर्वज्ञ होने का दावा करने लगा। 'मैं बाहरी विद्यार्थी को पढ़ाता हूं' ऐसा कहकर वह और उद्धत बन गया। भगवान बुद्ध के चरण जो नीच व्यक्तियों को तारने वाले, परलोक से छुड़ाने, अष्टांगिक मार्ग-(गमन) में कुशल करनेवाले हैं, हमारी रक्षा करे—जैसे यशयुक्त स्त्रियों के चरण, जो जघनस्थल के कामीजनों के प्यारे, परलोक से छुड़ाने वाले और स्त्री-गमन में कल्याणकारी है, हमारी रक्षा करे।

४२-४३ : भाभूतो कुंकुमाद्रौ रइनइसदृशौ (?)
मुसिमुसि लक्षणौ फेनपार्वो (?)
मणिकनकधरौ द्विव्यगन्धानुलिप्तौ
संग्रामेण प्रविष्टो पलुप (?) · · ·नौ लभ्यतां राज्यलक्ष्मीः ।।
गंगा यमुनयोर्विल्व वृषभं कूर्णकुंभयोः
पंचचंद्र. . .ली पट्टबंध भविष्यति ! (?)

४४ : वह ऐसे ही श्लोक बालकों को नित्य पाटियों (सुफलक) पर लिखवाकर बेधड़क मासिक वेतन गिनवाता हुआ वर्ष भर जमा रहा।

४५-४६ : कातना, लिखना, कसीदा काढ़ना अथवा नकाशी बुनना (सूचीपट्टि कावान), औषधियों को देना इत्यादि में फंसा हुआ वह सामने बैठे कुमारों को देखता नहीं था। 'उपाध्याय' ऐसा कहते ही गुस्से से जलते हुए वह निठुर कहता था—'क्या तुम्हारा मैं गवैया या मोची हूँ।'

मठ दैशिक

४७-५४ : मुसकराते हुए, मुसकराकर बात करते हुए, बार-बार लड़ मिलाते हुए, उस दैशिक को देखती हुई उस नियोगी की स्त्री टस से मस नहीं हुई। वह स्त्रियों की भाषा जानते हुए भी बार बार भौंहें नचाकर पूछता था––'आप क्या कहती हैं?' वह उन मतवालियों की दिल्लगियों, ठहाके-हंसी और मतलबभरी, तानाकशियों से थक कर हंसने लगा। 'ये महाभाग, कुछ जानते बूझते नहीं', इसलिए स्त्रियां नंगी होकर भी उससे शरम नहीं करने लगीं। ऋष्यश्रृंग का व्रत लेकर––उस गोष्ठी रस के रसिए ने उनके स्तनों पर हाथ फेर दिया। उस जवान ने अंडू घोड़े (बीजाश्व) की तरह घोड़ियों के झुंड में छूट कर बाहर गए नियोगी की सब स्त्रियों का भोग किया। भौजाई, बहन उसकी मृगनयनी स्त्री तथा दूसरियों का भी वह दैशिक बराबर मजा लेता रहा। वे, खूबसूरत औरतें अपने जार गुरु से दीक्षित होकर, भैरवी चक्र की तरह अपने पराए का भेद छोड़ कर (निर्विकल्प व्रत) सर्वगामिनी हो गई।

सभतृका

५५ : उसके बाद उस श्रमणदूती की कोशिश से इन धूर्तों ने भी उस स्वतंत्र बनी छिनाल का उपभोग किया।

५६-६२ : झूठमूठ प्रबंध के बहाने गांव लूटकर कपड़े से भरा-पूरा वह अधिकारी अपनी तरुणी प्रिया के बारे में उत्कंठापूर्वक सोचता हुआ जल्दी से वहां पहुंचा। डर से बोझियों और धनियों द्वारा उसकी सेवा के लिए लाए गए घी और शहद से शहर पट गया। बहुतों का मजा लिए हुए उस छिनाल ने बहुत दिनों बाद उस लौटते हुए मुस्टंडे को मानो जलंधर के रोगी की तरह देखा। उसकी स्त्री मेढ़े, घी, छेना, किराट (संभवतः कर्डी का तेल) और मधु के अंबार देखकर, एक आंख से रोई और दूसरे से हंसी। 'ये सुंदर कपड़े और ये खरीदे गहने तेरे हैं', उसके कहने पर भी उस नकचढ़ी ने उसकी बात अनसुनी कर दी। उसने सिरदर्द के बहाने लेप की पट्टी माथे पर चढ़ा ली, और जोर-जोर से रोती हुई वह अपने पति के बगल में नहीं सोई। इसके बाद ग्रामदासों से भरे उसके घर में शोरगुल के साथ जलसा हुआ।

६३-६७ : शाम को बहुत-सा भात खाकर तथा बहुत-सी लाल शराब पीकर बेहोश नियोगी सेज पर कुंभकरण की तरह विराजने लगा। मुश्किल से दिन बिताकर रात खतम होने पर वह स्त्री मुंह फिराकर आलिगन से उचटने और चुंबन से मुंह फेरने लगी। उसने जघनस्थल का स्पर्श रोक दिया, जंघों को एक दूसरे पर चढ़ाकर निवारण करती हुई मानों घर के काम-काज से थकी हुई की तरह वह झूठमूठ सो गई।

सबेरा होने पर बरतन-भांड़े कागज़-पत्र इत्यादि निकालने पर, 'सारे शरीर में बड़ा दर्द है' यह कह कर उसने तकलीफ दिखलाई। परिजनों द्वारा मद्यमांस प्रिय वैद्य के बुलाने पर यह सोच कर कि भाग्यवश खजाना हाथ लगा है, वह आया।

वैद्य

६८: लंठ, नीच, बहुतों को मारनेवाले, सर्प की तरह बहुतों की मृत्यु का कारण, वैद्य को नमस्कार।

६९-७८ : जल्दी में सैकड़ों घर घूमने वाला, बोझ से लदे मजदूर की तरह हांफते हुए, बारबार हाथ से ललाट पर का पसीना पोंछते हुए, माया औषधियों के संकेत नाम और संयोग का खर्रा (चारिका) लिए हुए, कालरूपी अधिकारी का गोग्रास खाकर मानों उपवास करने वालों की तरह वह आ पहुंचा। त्रिशूलधारी शिव की तरह, वह मनुष्यों को जन्म भर शूल बनकर गड़ता रहता था। वह वैद्य कालकूट विष, सर्प अथवा वेताल है जो काफी मांस से फौरन अनुकूल हो जाते हैं। क्रोधी, वायु, आयु को क्षय करने वाला, हाथ के स्पर्श से कफ, वायु और पित्त के दोष दूर करने वाला, तथा इंद्रियों को नाश करने वाला वही वैद्य है। आदमियों को कष्टों से मुश्किल से छुड़ानेवालों को प्राणाचार्य क्यों कहते हैं? शिकायत करनेवालों से वैद्य कहता है—'तुमने खाया नहीं, तुमने पीया नहीं, तुम ठीक से नहीं रहे।' रोगियों पर जीने वाला वैद्य वही है जो रोग को यत्नपूर्वक कायम रखता है और यह पूछता रहता है। नगरोत्सव, यात्रा, तथा विवाह में खूब डट कर खाने से जब जनता बीमार पड़ती है तो वह वैद्य के कुंडली में पड़े सनीचर का फल है। स्त्रियों का गुह्यांग छूने वाला, खूब खाने वाला, लोगों की जान लेने वाला, मनुष्यों में त्रिदोष पैदा करने वाला वास्तव में वैद्य है ज्वर नहीं। मूर्ख वैद्य, शक्तिशाली कायस्थ और दुराचारी गुरु—ये सब प्रजा के क्षय के कारण हैं।

७८-८० : उस खल ने पास जाकर उसके उभरे, कठिन, हमेशा छूए जानेवाले, मानों उससे भी बदमाश स्तनों को छूआ। यह फांके नहीं सह सकती, दर्द में ताकत की दवा भी ठीक नहीं, मैं सोचता हूं उसे मेरे साथ कुछ खाना चाहिए। इसकी बुद्धि जड़ हो गई है, धातु बिगड़ गए हैं, इसलिए पहले स्निग्ध दही शक्कर मिलाकर इसे खाना चाहिए।'

गणक

८२-८७ : ज्योतिष शास्त्र जानने वाले उस उस ज्ञानचक्षु को नमस्कार जो गांठ की अकल खोकर मछुये से पूछा करता है कि वर्षा होगी या सूखा पड़ेगा। उसने ग्रहनक्षत्र

और तारों की गणना में तो कोई परिश्रम नहीं किया पर अतीत और अनागत के ज्ञान का पाखंड जमाने के लिए स्याही और पत्रों का पुलिन्दा बांधे फिरता है। 'अगले तीन वर्षों में तुम्हारा कुछ खर्च होना चाहिए। एकाएक ज्वर, नेत्र पीड़ा और ऐसा लाभ होना चाहिए, जो तुमने सोचा भी नहीं है।' कोई तुम्हारी की हुई भलाई नहीं मानता, लोग तुमसे दुश्मनी मानते हैं, उनसे तुम्हें भय है। पर शरीर रक्षा में बाधा न होगी।' 'भाई तुम दुबले दीख पड़ते हो। अखनी क्यों नहीं सेवन करते।' 'लगता है तुम अवश्य कामला से पीड़ित हो। उसे मैं फौरन मंत्र से दूर कर दूंगा।' इस तरह साधारण मन्त्र और वैद्यक मिश्रित ज्योतिष शास्त्र का विचार करता हुआ वह मूर्खों को ठगता है।

८८-९१ : पहले से ही लोगों से सुनकर नियोगी की स्त्री का हाल जानते हुए भी उस धूर्त ने व्यर्थ ही धूलि-पटल पर राशिचक्र बनाया। उस पर नियोगी द्वारा दीनार और पुष्प चढ़ाए जाने पर वह पाखंडी अपनी अंगुलियों से गणना करता हुआ बहुत देर तक बैठा रहा। इसके बाद बार-बार भौहें चढ़ाकर वह धीमे-धीमे बोला—'यह पीले चेहरेवाली काम वासना से पीड़ित है। स्त्रियों की कामवासना पैदा करनेवाला पिशाच बड़ा कठिन है, फिर अकेले घर में नंगी होकर स्नान करने पर यक्ष ने उसे पकड़ा, ऐसा मैं राशिचक्र में शुक्र के समागम से देखता हूं।'

खवाशपति या तृण-रक्षक

९२-९३ : शुक्र पूजा का उपदेश देकर गणक के जाने के बाद पुआल की पूली लिये हुए, धूल से सने पैरों वाला, कमर में रस्सी बांधे, फटा कंबल ओढ़े, एक देहाती ने उसके सहायक द्वारा भेजा गया लेख नियोगी को दिया।

९४-९९ : 'भेड़ों के बहाने दस गायों को सिपाहियों ने पकड़ लिया। उनमें से पांच खलिहान में बांध दी गयी हैं। उनको छुड़ाने के लिए सहायक लोगों के जल्दी आने पर भी तीन दिन लग जायेंगे। उनके न आने पर भी आपका लाभ है क्योंकि तब गांव पर दंड लगेगा। घी के कुप्पे (नाड़ी) के लिए जो ब्राह्मण जेल में बंद था वह भी फांकाकशी से चल बसा। उसके लूट का ब्योरा (प्रधनपत्र) मैंने श्रीचरणों में भेजा है। उसकी स्त्री को बांधकर मैंने उसके सारे घर पर मुहर लगा दी है। फौज के लिए जो रसद सामान परिपालक ने महीनेवारी की तरह दिया वह मैंने उसी के घर में रख दिया है। खूब अन्न है। आप यहां जल्दी आइये। श्रीमान् सब समाचार जानें। ज्येष्ठ, रविवार।'

गुरु

१००-११३ : उस लेख को पढ़कर खुशी से भरे उस नियोगी ने अपने सहायक की कार्यपटुता की तारीफ की। वह पहले पहल बौद्ध था, बाद में ढोंग से वैष्णव और अपनी स्त्री की रक्षा के लिए शाक्त हो गया। उसने गर्व, दंभ तथा लोभ के घर, समय और मंडल जानने वाले, मायावियों, ठगों, और लालचियों के गुरु को न्योता। धन और स्त्री के लुटेरू, बिगड़े दिल, सर्वभक्षी, रात्रिभोजी यक्ष की तरह गुरुनाथ को नमस्कार। आधे तालू तक सिंदूर पौते, फूलपत्ती का गुच्छा लिये, बिन्दुओं और उपबिंदुओं से हमेशा गीले ललाट और सिर वाले, केवल कानों की जड़ तक आने वाली हलकी जूड़ी (जूटिका) बांधे, कान की लुरियों में केसर लगाए, शीशे की तरह आंखें लिये, बड़ी ठुड्डी वाले, गंजे खसखसी दाढ़ी वाले, लंबे वाक्यों में जरा तुतलाने वाले, वृद्ध महिषी जैसे मुखवाले गुरु थे। जो क्षणभर में घटघटाकर शराब का घड़ा खाली कर दे, उसके कंठनाली की मुटाई की उपमा किससे दी जा सकती है। मद्य-मांस की बदबू से गंदा बना, योगपट्ट से पूरी छाती ढांके वह राक्षस की तरह लगता था। सिंदूर से भरी उसकी गहरी नाभि थी तथा उसका बड़ा पेट लोबिया (लोपिका), पूए और मछलियों के मेल से भरा था। शराब तथा मांस खाने के अनपच से दुःसह बदबू पैदा करता हुआ वह बफारा छोड़ते और डकारते हुए गड़गड़ाते बादल की तरह मालूम पड़ता था। गहरी मूर्खता तथा निंदनीय शराब के नशे से विकृत बुद्धि वाले उस गुरु ने मानो स्वयं अहंकार की तरह आकर अपनी शक्ल दिखलाई। डील से भारी, बोली से भारी, आलस्य और मूर्खता से भारी, दीर्घलिंगी, गलफरे, दाढ़ी, पेट और एड़ियों से भारी, वेश्या, कामी तथा नियोगियों को ठगने वाला, सद्वृत्ति-शून्य वह गुरु—अजीब बात है कि वह सबका गुरु तो है पर शिव की कही महाशिक्षाओं में वह हमेशा बड़ा लघु है। पृथ्वी पर ऐसा पवित्रात्मा कौन है जो बुराइयों के घर गुरुओं की सेवा नहीं करता।

११४-११६ : अपने पैरों पर सबके गिरने पर उसने अहंकार से अपने सिर से भूकंप में लुढ़कते हुए घड़े का अंदाज दिया। स्त्री की रक्षा तथा संपत्ति को बढ़ाने के लिए भगवान् गुरु ने नियोगी को यज्ञ करने की विधि बतलाई। जल्दी से केसर से फुटकर सामान की बही (चारिका) में लिखकर वह प्रसन्नवदन यह कह कर कि 'सबेरे सब कुछ आ जायगा' अपने अनुचरों के साथ चला गया।

आस्थानदिविर

११७-१३१ : यज्ञ में नियोगी द्वारा जोरदार न्योता पाकर उसका धर्माधिकरण का पापी मुंशी ससुर आया। नगर के मुड्ढ लोगों में बड़े, उस भोगी को प्रणाम, जिसके

हाथ में पहाड़, बन तथा कानन सहित भूमि स्थित है। उस कायस्थ ने पहले तो आवभगत की, फिर मीठी बातचीत की, पर बूढ़े बकरे के सींग की तरह उसने अपना टेढ़ापन नहीं छोड़ा। कान पर चढ़ी कलम तथा हाथ में भोजपत्र पकड़े इस आस्थानदिविर द्वारा भगवती पृथ्वी ग्रस ली गयी। महावराह नें दैत्यों के प्रति झूठा आडंबर दिखलाया, अगर उन्होंने आस्थान दिविरों से ग्रसित इस पृथ्वी को नहीं उबारा। धन का कामी, शराब के नशे में चूर, दिविर सबेरे वेश्या की सेज से उठकर मंगलमुख देखने की प्रतीक्षा करता रहा। रात में तो दिविर सदा मौज उड़ाता है, पर वह सबेरे-सबेरे मिट्टी से कैसे अपना चेहरा मलता है। दिविर नहा कर मिट्टी दर्भ और तिल का सहारा लेता है, देर तक तप करता है, पर साथ ही साथ कूट संकेत, पगड़ी और पात्रों की चिंता करता है। सामने आए ब्राह्मण पर थूक कर जल्दी से घर में घुसकर फिर वह अपने नुकसान की चिंता करता हुआ बाहर निकलता है। वह लक्ष्मी का इच्छुक गोबर के धोखे से रास्ते में कुत्ते का मल पूजता है तथा काम में सिद्धि चाहनेवाला सिर पर दौरी लिए हुई सामने आई चांडाली की पूजा करता है। सबेरे आए हुए अपने चट्टों-बट्टों से घिरा वह कबाब शराब खा-पीकर अदालत (आस्थान मंडप) जाता है। भोजपत्र की रगड़ से दुखी रोशनाईदान अपनी बदबू से मानों भावी नरक-प्राप्ति की सूचना दे रहा है। स्याही रूपी विष से गीली कलम रूपी दांत से साधुओं को मारता हुआ अदालत (आस्थान) रूपी समुद्र के भीतर दिविर मगर की तरह लगता है। उसकी कलम से झरी स्याही की बूँदें लुटी पृथ्वी की काजल मिली हुई आंसू की बूंद जैसी दीख पड़ती हैं। जो कायस्थ का अन्न खाता है उसके विमान से नीचे गिरते हुए पितर आकाश में रोते कलपते हैं।

१३२ : अपने रईस दामाद का घर देखकर उसने हंसी-खुशी से सोचा कि ऐसी सांठ-गांठ भाग्यवश कभी-कभी ही लगती है।

अधिकरणभटट् या सात्रिक

१३३-१४५ : उसके साथी भयंकर भूर्जपट्ट दिखलाई दिये जो उसके घर में बड़ी गड़बड़ी मचाने लगे। ये सर्वदा सब स्थावर और जंगम वस्तुओं का सफाया करते हैं। ऐसे प्रलयकारी भट्टों को हमारा नमस्कार। सांटी (शटी) और पाश के बल, भय से खींचकर अदालत में लाया गया साधु भट्टों द्वारा मछलियाँ जैसे पानी में चारा निगलती हैं, निगल लिया जाता है। सांटी में पड़ा हुआ आदमी रक्त से मतवाले कुत्तों की तरह भट्टों और कायस्थों से नुचकर हड्डी पसली समेत गायब हो जाता है। राम ने ब्रह्म राक्षसों को नहीं मारा, असल ब्रह्म भोजी तो ये आस्थान भट्ट हैं जो हमेशा मनुष्यों

को खाते हैं। जिन्होंने जीतने वालों को हरा दिया तथा हारने वाले को जिता दिया उन झूठों की बात से कौन जी सकता है। अंत समय में नरकपालों से घिर कर जो भूत बनाए गए, सांटी और घंटा अपने हृदय में रखकर, ये यम की तरह भट्ट किसके हैं? देखते हुए भी अंधा, बोलते हुए भी गूंगा, सुनते हुए भी बहरा, अधम और शठ भट्ट बिना घूस के हमेशा सोता रहता है। घूसखोरी, बुराई की सीख, भलेमानस की मरम्मत, सांठ-गांठ फैलाना, जालसाजी की रक्षा—ये सब भट्ट के लक्षण हैं। चमार नर्तकी का भाई साथ से नचनिया हो गया। वही सर्प विद्या का जानकार सस्यपाल हो गया। वह अधम फिर ग्रामगणेश के मंदिर का पुजारी हो गया और बाद में संधिविग्रह कायस्थ की टोली का सेवक बन बैठा। द्रंग देश में आने जाने से वह दूत भट्ट हो गया और उसके पुत्र पौत्र सब अधिकरण के ब्राह्मण बन बैठे। इन चर्मकारों की, जिनकी कांख में बड़ी झोली (भस्त्रा) और शंटि तथा दीनार का पात्र है, बात दूसरी कैसे हो सकती है।

द्वितीय परिहास समाप्त

तृतीय परिहास

गुरु के चेला-चांटी

१-९ : उस यज्ञ में कायस्थ के रिस्तेदार और गहने कपड़े से सजी स्त्रियाँ आईं। खड़िया, सोने की करधनी, पारा, रत्न की टोकरी (भूटिका), सिंदूरादि रंग, पंचरंगा सूत, चौरैठा. सफेद छाता, श्वेत वस्त्र, चंदवा (वितानक), नाराचवाण, छुरी, सूत्र, दर्पण, बीरकर्तरी, पताका, पंखा, कूंची, सोलह लाख फूल, तांबे के दो पानी के कलसे, तिल, तैल, मृगछाला, स्रुकस्रुवा, समिध, लावा, कसोरे (सिद्धार्थक), घी, बेल, सुपारी, अखरोट, जायफल, जौ, अक्षत, धूप, कुंकुम, कपूर, कौतुक-औषधि, चंदन पादुका, पीठ (चौकी), पलंग, घंटी, घड़ा, कुंडा, मद्य-मांस, सुरा, पुए, प्याज, मछली, भात, पिसा-कुटा मजेदार लड्डू, चटिका (चटनी) से भरे बर्तन, खीर, खिचड़ी, दही, दस सफेद और दस काले बकरे, चौदह मेढ़े, भस्त्रा-इत्यादि बही में लिखा हुआ सामान नियोगी के सचिवों और यार-दोस्तों ने फौरन हाजिर कर दिया।

१०-२० : इसके बाद शिष्य ने सिंदूर से और लिंग से विभूषित मंडल बना दिया। इसके बाद आराम से दंभ भरी निश्चल आंख बंद किए हुए गुरु को दो शिष्य दाएं-बाएं हाथ से पकड़ कर लाये। अपने केवल सौ चेले-चपाटियों के साथ धीरे-धीरे आया गुरु ऐसा लगता था कि उग्र नगराधिप मानों लूटने के लिए खुद आ पहुंचा हो। चमार, कसाई, चक्री, धीवर, हाट का साधु, वृद्ध वेश्या, कलवार, मद्य भट्ट, बूढ़ा विट, पांच रोगी नारंगक,

तीन टांकार (टनटन करने वाले), रसोइया, गोभक्षी भैरवाचार्य, बुनकर (वायक), चूलिक का रुद्राक्ष बनाए बंहकटा घटिल, महाव्रती भगमुख शैवाचार्य, त्रिघंटिक, नग्न वेलाव्रती, मौनी, स्तोत्र रचयिता जानुघंटिक, कुत्तों से घिरी हुई दो-तीन पागल औरतें, मैले से सना उन्मत्त मंत्रवादी, रसायनी, इन्द्रजालिक, लतावेशी, विज्ञानी, काम-शास्त्री तथा गुरु के पान-भोजन के धूर्त सेवक गमगमाते नैवेद्य की गंध से आकुल वहां पहुंचे। इसके बाद कच्चे पक्के मांस को सफाचट करने वाले, सब कुछ लूटनेवाले गुरु के मतवाले सेवकों ने तिल धूप और घी की सफाई शुरू कर दी। एक, दो और बाद में बहुत से लोग भस्त्रा में भरकर चौरेठा, जौ, अखरोट, अर्घ, घी और चंदन लाये।

रांड़

२१-४५ : इसके बाद नियोगी ने अपनी व्रतशालिनी भगिनी को गुरु की याग परिचर्या विधि में लगाया। पूर्ण चन्द्र के मंडल की शोभा चुरानेवाली कमलमुखी, जवान रांड की जय हो। मदभरे, उद्दंड, मुख को बिना जोर से रगड़े रांड की तबियत नहीं भरती। बड़े नितंबों वाली, बढ़े हुए कुचों वाली, हिरनी को हराने वाले नेत्रोंवाली, रांड नेत्र का रसायन अंजन है। दोनों कंधों पर बाल फहराकर रांड ऐसी शोभा पाती है मानों नेत्र और मुखरूपी कमल में व्याप्त भौरों वाली पद्मिनी हो। बिना सूत्र के उसका गला है। सोने की तरह दमकता उसका भग है। रांड के कर्णपाश बिना आभरण के ही सुंदर हैं। पुष्प ताम्बूल रहित बिना गहनों की रांड को मानों ब्रह्मा ने काफी मात्रा में लावण्य से निखार दिया हो। पतली कमर वाली को हार से क्या मतलब, सुकेशी को फूलों से क्या मतलब, बड़ी आखों वाली को काजल से क्या मतलब, रांड को शृंगार से क्या मतलब ? वह धर्म क्या जहां रांड नहीं। रांड बिना सुख को धिक्कार है। बिना रांड वालों को मोक्ष कहां—प्रौढ़ विटों ने ऐसा कहा है। अतृप्त रांड जगत को देखकर भौहें चढ़ाती है। उसके गले लगने की सोच कर वह मन से उसे खींचती है। पीवर उरु और स्तनों वाली सदा उत्सुक रांड रति सुख को सोचती हुई हमेशा रात में. . .है। तरुण और सुंदर युवकों को तिरछी निगाह से देखकर वह भगवती रांड प्रचुर रेत छोड़ती है, जैसे गाय दूध। रांड का गौर पीवर और. . .मेरु पर सूर्य के घोड़ों द्वारा खाई जाने वाली घास के सुनहलेपन का भ्रम देता है। घोड़े से मांगे हुए, स्तब्ध और बड़े. . .वाला आदमी जो रति में शक्त हैं, वह भी रांड़ को संतोष दे सके या नहीं। रसीली रांड़ श्राद्धों में भाग्यवान् भोले-भाले ब्राह्मणों, यतियों, और तपस्वियों के बश में होती है। बालों में फूल खोंसनेवाली तथा कानों में पवित्रक लगाने वाला जवान रंडाप्रिय ब्राह्मण कंदर्प का मुकाबला करता है। दृढ़ और बड़े दण्ड वाले

ब्राह्मण को रंडा सदा श्रद्धा से श्राद्ध भोजन कराती है। तीर्थयात्राओं में वह हमेशा उसके पीछे खंगपात्र से बलि के धूप की पेटी (समुद्रिका) लिए हुए चलती है।... रांड और ब्रह्मचारी परस्पर प्रार्थना से रात में भूकम्प पैदा करते हैं। दिन में दंभ का खजाना बने हुए रात में रंडा की रति से मस्त तीर्थसेवी ब्रह्मचारी को नमस्कार। रांड जटाधारी और गौड़ और लाट के तपस्वियों के डर से प्रीतपूर्वक पैदा किये हुए...देती है। रांड पति के श्राद्ध के दिन गुरु के घर जाकर निर्दय सुरत से अपनी कमर सहलाती है। मृतक के उद्धार के लिए दीक्षादि व्रत करने वाली रांड रात में निःशंक तपस्वियों को कामसत्र देती है। शिवलिंग की पूजा के बहाने घर में ताला लगाकर रांड...से अपनी खुजली मिटाती है। उस मृगाक्षी द्वारा पूजित आकुल गुरु और शिष्य उसको आंख से उसी तरह पीने लगे जैसे भूखे खीर को पीते हैं।

गुरुकृत्य-महत्तम

४६-५३ : इसके बाद दीक्षा के समय आदमी अपनी आंख मूंद कर मानों झूठे मोह से अन्धे बने भीतर घुसे। हाट के तपस्वी ने हाथ जोड़ कर जमीन पर घुटने टेक कर नियोगी के श्रद्धनीय गुरु की प्रार्थना की। 'नाथ, आप के बहुत देर तक कार्य में व्यग्र रहने पर यज्ञोत्सव में उत्सुक दूसरे बाट जोह रहे हैं। लोक में गृहकृत्य के लिए विख्यात यह महत्तम यज्ञ आरंभ करके आपकी बाट जोह रहा है। ब्रह्महत्यादि असंख्य पाप जो उसने किये हैं वे आपने घंटा के एक ही टनक से दूर कर दिये। आपने जो उसके सिर पर पांच फनों वाला हाथ रख दिया उससे वह सबके मारने के पाप को तिनके की तरह मानता है। वह शैव आपके प्रसाद से सब दशाओं को पार करके शिव के मंदिर में भी सब को मारता है। सर्वस्व हरण, धर्म सत्कार्य, ब्राह्मणों की लूट—ये सब बातें जो उस निर्विकल्प की हैं वे सब आपका ही प्रसाद है।

वेश्या

५४-५८ : 'नाथ यह गणिका आपको निमंत्रण देने आई है। हे शिष्यवत्सल, उसके घर पर आप कलश स्थापना कीजिये। आपसे लिए गए वशीकरण चूर्णों से उसने उन धनी कामुकों को पूरी तरह से चूस डाला। मृत्यु और धन की शपथों से क्षीण जीभ, हाथ और ओठों वाली, यारों से कपट करने वाली, वह आपकी ही रक्षा से बची हुई है। वेश्या के तेल मले चेहरे पर चिकनाहट है आंखों में नहीं, गरीबों से संकोच है अछूतों से नहीं। यदि वेश्या मुरव्वती है, यदि काल कृपालु है, यदि कायस्थ चोर नहीं है तो वेश्या भी प्यार कर सकती है।'

चक्षु वैद्य

५९-६० : सबका साथी, तपस्वी, आंख का वैद्य (चक्षुवैद्य), जिसने किशारू की वर्तिकाओं से सारे संसार को अंधा कर दिया, आया। गर्मी में आंखों की बीमारी बढ़ने से उसके लिए मानों जाड़े में फल लगा हो। उसने कहा--'आप पांडुवल्ली वाले यज्ञ पूर्ण कीजिये।'

शल्यहर्ता

६१-६३ : यह जर्राह (शल्यवैद्य) नाई है। उस कमासुत ने अपने खराब लेपों से आदमियों के अंडों की तरह फोड़े भारी थाली की तरह बढ़ा दिये। भांडों के लालची, इसने पहले चमुंडा की स्थापना की थी। उसके वर्ष-दिन पर वह आपसे यज्ञ कराना चाहता है। यह चतुर गहरी फीस पर नाक जोड़ने के लिए अपनी स्त्री के भग से भी मांसपेटी काट कर दे देता है।

बूढ़ा बनिया

६४-७४ : यह जवान स्त्री वाला बड़ा धनी बूढ़ा बनिया है। मैथुन में अशक्त होने से वह बाजीकरण औषधि चाहता है। बहती हुई लार और आंखों वाले, हांफते-खखारते तथा झूलते शिश्न वाले बूढ़े से भला तरुणी कैसे रम सकती है? रति में यत्न-पूर्वक नीचा शिश्न उन्नत करके सवारी करके भी बूढ़ा ऋण की चिंता करते हुए गरीब की तरह नहीं सोता, रति के लिए उत्सुक बूढ़ा आंख और शिश्न कस कर दबाता हुआ भग पर हाथ रख कर उसकी खजाने की तरह रक्षा करता है। बूढ़ा रति के लिए मांस, दूध और घी खाकर रात में या तो कै कर देता है या उसे हैजा हो जाता है। भीड़ में मधुपर्क देते समय सूखे चमड़े जैसे बूढ़े पति को देखकर लज्जा से भरी तरुणी पताल में धंस जाती है। बूढ़े विटों द्वारा बताए गए द्रव्यों से यह बूढ़ा तिला लगाकर हमेशा अपनी पत्नी को जलाता है। यह वही बनिया है जो बहुतों की जमा-जत्था डकार कर उत्सव मनाता है। घर का चोर यह बनिया द्रव्य, सामान और खेत लूटता है। महामारी के समय वह कुटिल कलयुग का सांप अज्ञात घास और लकड़ी बेचनेवाला धन के नाम से नाचता है। निश्चल आंखों वाला बूढ़ा, जवान को चाहनेवाली प्यारी को देखता हुआ ऐसा लगता है जैसे गरीब दूर से मीठे भोजन को देखता है। इसलिए माली को लाकर मंत्र प्रयोग करना चाहिए जिससे शक्ति पाने वाले की गृहणी प्यार करने वाली हो जाय।

७५-८६ : इस तरह शिष्य की सब बातचीत सुनकर भौहें नचानेवाले गुरु ने कहा--'मैं सब काम करता हूं।' इसके बाद संध्या समय बड़ी भारी शिव कुंडिका बनाकर गुरु

के साथ उन शिष्यों ने खाने के बाद खूब डटकर शराब पी। नियोगी की सब स्त्रियों और उसके मित्रों और रिश्तेदारों ने कपालों में उसकी जूठी बची शराब की पूजा करके खूब शराब पी। नशे में कोई गाने लगा, कोई भुक्कार मार कर रोने लगा। कोई इधर उधर घूमने लगा और कोई सिसकारियाँ भर कर कूदने लगा। कोई अत्यन्त भक्ति की विभोरता की नकल करने लगा, कोई बेहोश होकर मुर्दे की तरह पड़ा रहा। कोई मतवाला हिलती डुलती माला पहन कर आदमियों के गले भेंटता था, अथवा स्त्रियों को चूमता था। इसके बाद नशे में बेहोश कोच्छिका वाद्य वाले गुरु देशी भाषा में बनाया अपना कोई काव्य बीन और बांसुरी के भयंकर सुर में गाने लगे। आनंद से एक भुजा नीची करके, एक हाथ के सहारे धीरे-धीरे आसन से उठकर गुरु दोनों हाथों से नाचने लगे। इसके बाद ठहाके मारते हुए, औरतों को भेंटते हुए, कमर से हटे कपड़े वाले शिष्य उठ खड़े हुए। आधी रात बीत जाने के बाद दीपकों के बुझ जाने पर उनका एक दिलसे रतिचंद्र महोत्सव हुआ। सबेरे कलश देने वाले गुरु जल्दी से उठकर दूसरे शिष्यों द्वारा निमंत्रित होकर तैयार हो गए। ज्वरादि के समय वैद्यों की, सरदी में नियोगियों की, फूल के मौसिम में गुरुओं की भूमि स्वर्णमयी हो जाती है।

८७-९१ : इसी बीच में हांफता, कांपता, मानो फूटता हुआ, बगल झांकता, बहुत घबड़ाया एक नियोगी का दूत आया। उसने कहा––आज आधीरात में गृहकृत्यमहत्तम राजा की गहरी रकम लेकर साथियों के साथ चंपित हो गया। बिना कहे ही उसके रिश्तेदारों के घर-घर में किसी तरह उसके भागने की बात फैल गयी। चपेटों से मुंह फोड़कर, लेंड़ निकलते हुए तुम्हारे स्वामी परिपालक को आगे करके सिपाही कारागार में ले गये। इसके पहले कि वह तुम्हारी दाढ़ी नोचकर और तुम्हें बांध ले जांय, तुम इस भयंकर राजभय के समय अपनी नीति स्थिर करो।

९२-१०० : उस मित्र के ऐसा कहने पर गुरु फौरन अपने शिष्यों के साथ नौ दो-ग्यारह हो गये। इस पर दुखी नियोगी ने सांस भर कर कहा––आह, समय के फेर से कलजुग की भयंकरता कितनी विकट है। साधू पूरे बरबाद हो गये और धर्म डूब गया, यह कहकर जब तक अपने साथी के साथ भागने की तैयारी करे कि उतने में ही भट्टों ने आकर उसे घेर लिया और भय से उसका पेशाब निकल गया। राजा ने उसका सब-कुछ जब्त करके उस दुखी को बहुत दिनों तक जेल में बंद रखा। बाद में वेश्या ने उसे धन से छुड़ाकर निकाला। बाद में वह धनहीन जापी, स्वप्न निरीक्षक, सबसे प्रणत, खुशामदी और मिठबोला हो गया। अपने जमाने में जो नियोगी लिंग की तरह सीधा खड़ा रहता था, वही अधिकार से छूटते ही बूढ़े वृषण की तरह हो गया। अधिकार में मदांध और गुस्से भरी आंखों वालों के लिए बंधन ही नेत्रों को निर्मल करनेवाले

महाअंजन की तरह है। जो पैरों पर गिरे हुए गरीब दुखियों और पूजनीयों का अपमान करता था वह अधिकार च्युत होकर गू लगे पैरों को पूजता है। आह, क्षण भर में ही क्या का क्या हो जाता है। कायस्थ का धन पुआल की ज्वाला की तरह क्षणिक है।

१०१-११२ : अपनी स्त्री के चले जाने पर वह दरिद्री, लालच का घर, खाना मांगने के लिए अपने बंधुओं के घर घूमने लगा। रूखा, दुबला, अत्यंत गंदा, फटा-सिला कपड़ा पहने हुए वह कुछ ही दिनों में पिशाच की तरह न देखने लायक हो गया। भूसी की आग की कूंड़ी के ताप से जली एंड़ी, अंडकोष और उदरवाला, गठिए का दर्द मिटाने के लिए उसने रस्सी से अपना घुटना बांध लिया। देव, ब्राह्मणों का धन, गांव में अन्न के कोठे लूटने वाला, भूखा, प्यासा, सूखे मुंह वाला, घूमते हुए पाखाने में गिर पड़ा। कुत्ते से पैर और घुटना काटे जाने पर लहू-लुहान, दयालुओं द्वारा दिए गए जूठे भात के गोलों पर जीने वाला, जली-फटी आधी लंगोटी (कर्पटी) से बाल समेत अंडकोष ढकने वाला, भस्म पुते सिर, कंधों, छाती और बगल वाला, निर्लज्ज, उस कांजी चाहने वाले को किसी ने मांड़ा दे दिया। प्रपा की रखवारिन ने उसे डोम समझ कर पानी नहीं पिलाया। बरफीले मौसिम में रजस्वला के पुआल से अपना शरीर ढांककर भिख-मंगे लड़कों के साथ कसोरे और खपड़ियों के लिए वह लड़ता था। अग्निपात्र के प्रहार से दाढ़ी, भौं और आंखें जल गयीं, मुर्दा जलाते समय चंडालों ने उसे लाठियों से मारा। कीचड़ में लोटता हुआ वह सत्र और तीर्थों के रास्तों में चिल्लाया और पाखाने के पनाले में मुंह के बल जा गिरा। उस नराधम ने ऊंची कमर करके प्राण त्याग दिये और दुर्गति से वह शीघ्र ही ठठरी रूप में बच गया। वह नरकंटक स्वयं सशरीर नरक में पहुंचा।

११३ : इस प्रकार धीरे-धीरे नियोगी और कायस्थों की आग बुझने पर आदमी संताप रहित होकर संतोषपूर्वक आनंद मनाने लगे।

११४ : कायस्थों और नियोगियों तथा बदमाशों की बदमाशियों की चर्चा, यह नर्ममाला सुजनों के विनोद और हंसी के लिए बनाई गई। वह सब लोगों को फलदायक उपदेश देती है।

तृतीय परिहास समाप्त।

नर्ममाला समाप्त